ओ३म्

अनुभूमिका (३)[१]

जो यह **'बाइबल'**[२] का मत है, वह केवल **'ईसाइयों'** का है सो नहीं, किन्तु **इससे यहूदी आदि भी गृहीत होते हैं।** जो यहाँ (१३) तेरहवें समुल्लास में ईसाई मत के विषय में लिखा है, इसका यही अभिप्राय है कि आजकल **'बाइबल'**[३] के मत में **'ईसाई'** मुख्य हो रहे हैं और **'यहूदी'** आदि गौण हैं। मुख्य के ग्रहण से गौण का ग्रहण हो जाता है, **इससे यहूदियों का भी ग्रहण समझ लीजिये।**

इनका जो विषय यहां लिखा है सो केवल **'बाइबल'**[४] में से [है] कि जिसको ईसाई और यहूदी आदि सब मानते हैं और इसी पुस्तक को अपने धर्म का मूलकारण समझते हैं। **इस पुस्तक के भाषान्तर बहुत-से हुए हैं, जो कि इनके मत में बड़े-बड़े पादरी हैं, उन्हीं ने किये हैं। उनमें से देवनागरी वा संस्कृत भाषान्तर**[५] **देखकर मुझको 'बाइबल'**[६] **में बहुत-सी शङ्कायें**[७] **हुई हैं, उनमें से कुछ थोड़ी-सी इस १३**

---

१. **अनुभूमिका लेखन**—मूल-हस्तलेख लिखाते समय यह अनुभूमिका नहीं लिखाई गई थी, अत: मूलहस्त० में नहीं है। मुद्रण हस्त० तैयार करने के बाद यह लिखाई गई है। मूलप्रति सं० में इसको मुद्रणहस्त० और द्विप्र० से ग्रहण किया गया है।

२-४,६. **अव्यवस्थित वर्तनी**—**''बाइबल''** (Bible) नाम की वर्तनी के सम्बन्ध में ग्रन्थ में लिपिकरों की अयोग्यता और प्रमाद से घोर अव्यवस्था है। यद्यपि ग्रन्थकार एक ही शब्द बोलते थे तथापि लिपिकर उसको अपने ढंग से लिखते थे। देखिए—

(क) द्वितीय संस्करण (प्रथमावृत्ति, सन् १८८४) में इस नाम की बारह वर्तनियां मिलती हैं—

१. वायबल—पृ० ७, **२. बायबिल**—पृ० ७, ५१८, ५२७ **३. वायबिल**—पृ० ७, २७६,
४. बाईबल—पृ० ५१८, **५. बायइबिल**—पृ० ३७७, **६. बाइबल**—पृ० २०३, ४६२, ४६४, ४६५,
७. वाइबल—पृ० ४६४, ४७५, **८. बाइवल**—पृ० ४६९। **९. बाइबिल**—पृ० ५२२, ५६९,
१०. वायविल—पृ० २७६, ५२६, **११. वाईवल**—पृ० ४७०, **१२. बायबल**—पृ० ४८६

अत्यन्त खेदजनक स्थिति देखिए कि एक ही पृष्ठ ७, ४६४, ५१८ पर दो-दो वर्तनियां हैं।

(ख) इसी प्रकार वर्तमान द्वितीय संस्करण में चार प्रकार की वर्तनियां मिलती है—

१. बायबिल—पृ० ५ (दो बार), १८९। **३. बाइबल**—पृ० ३२०, ३२१, ३२४, ३२९, ३५९ आदि।
२. बाइबिल—पृ० ३५३। **४. बाईबिल**—पृ० २६१।

(ग) स्वामी वेदानन्द जी सरस्वती द्वारा सम्पादित संस्करण में तो यह अव्यवस्था और बढ़ गई है। उसमें निम्नलिखित पांच प्रकार की वर्तनियां मिलती हैं। पाठक उलझन में पड़ जाता है कि किस वर्तनी को ग्राह्य और प्रामाणिक मानें—

१. बायबिल—पृ० ५ (दो बार), २३९। **२. बाइबिल**—पृ० ३४६। **३.बाइबल**—पृ० ४५१, ४५२, ४५७, ४५९, ५०२, ५१० आदि। **४. बाईबल**—पृ० ४५०,४५३ (टिप्पणी में अनेक बार)।
५. बायबल—पृ० ४५३ (टिप्पणी में)।

(घ) पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक ने अपने संस्करण में कहीं संशोधन कर दिया, कहीं नहीं किया। इस प्रकार संशोधन की अव्यवस्था है। द्वितीय सं० में जहां अन्य वर्तनी है, तो वहां इनके सं० में अन्य है। इनके सं० में चार वर्तनियां पाई जाती हैं—

१. बाइबल—पृ० ३१६, ७४१, ७४३, ७४५, ७५३, ७५४, ८२३, ८३७, ८४५, ९२४ आदि।
२. बाइबिल—पृ० ५९६। **३. बायबल**—पृ० ११, १२, ४३३। **४. बाईबल**—पृ० ८३० (टि०में)

(ङ) मूलप्रति सं० में इस नाम की चार वर्तनियां मिलती हैं—

१. बायबिल—पृ० 'क', ५६८, ५७२, ५८६, ५८९, ६४० आदि। **३. बाइबिल**—पृ० 'ख'
२. बाइबल—५९२, ५९६, ५९९, ६५१। **४. बाईबिल**—४५६।

तेरहवें समुल्लास में सबके विचारार्थ लिखी हैं। यह लेख केवल सत्य की वृद्धि और असत्य के ह्रास होने के लिये है, न कि किसी को दु:ख देने वा हानि करने अथवा मिथ्या दोष लगाने के अर्थ है।[८] इसका अभिप्राय उत्तर-लेख में सब कोई समझ लेंगे कि यह पुस्तक कैसा है और इनका मत भी कैसा है?

इस लेख से यही प्रयोजन है कि सब मनुष्यमात्र को देखना, सुनना, लिखना आदि करना सहज होगा और पक्षी-प्रतिपक्षी होके विचारकर ईसाई मत का आन्दोलन[९] सब कोई कर सकेंगे। **इससे एक यह प्रयोजन सिद्ध होगा कि मनुष्यों को धर्मविषयक ज्ञान बढ़कर यथायोग्य सत्यासत्य मत और कर्त्तव्याकर्त्तव्य कर्मसम्बन्धी विषय विदित होकर सत्य और कर्त्तव्य कर्म का स्वीकार, असत्य और अकर्त्तव्य कर्म का परित्याग करना सहजता से हो सकेगा।**

सब मनुष्यों को उचित है कि सबके मतविषयक पुस्तकों को देख-समझकर कुछ सम्मति वा असम्मति देवें वा लिखें, नहीं तो सुना करें; **क्योंकि जैसे पढ़ने से 'पण्डित' होता है, वैसे सुनने से 'बहुश्रुत' होता है।** यदि श्रोता दूसरे को नहीं समझा सके, तथापि आप स्वयं तो समझ ही जाता है। **जो कोई पक्षपातरूप यानारूढ़ होके देखते हैं, उनको न अपने, न पराये गुण-दोष विदित हो सकते हैं।**

मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य का यथायोग्य[१०] **निर्णय करने का सामर्थ्य रखता है।** जितना अपना

(च) कथित दशविद्वानों द्वारा सम्पादित उदयपुर संस्करण में कहीं तो अपने मन से वर्तनी में परिवर्तन कर दिया, कहीं नहीं किया। इसमें भी संशोधन में अव्यवस्था है। उसमें प्रकार की वर्तनियां उपलब्ध हैं—

१. बायबिल—पृ० ७, २७६, ३७७, **२. बायबल**—पृ० ७

३. बाइबल—पृ० ४६२, ४६४, ४६५, ५०९, ५१८। **४. बाइबिल**—पृ० ५२२

इस संस्करण में भी खेदजनक स्थिति यह है कि पृष्ठ ७ और ५२२ पर दो-दो वर्तनियां हैं।

यही अव्यवस्था पं० भगवद्दत्त जी, पं० जगदेवसिंह जी सिद्धान्ती तथा अन्य सभी के संस्करणों में है। विस्तारभय से उसको प्रदर्शित नहीं किया जा रहा है। द्विप्र० में यहां, और अधिकांश स्थलों पर मुद्रणहस्त० की वर्तनियों को मुद्रण-समय में बदला गया है। प्रस्तुत स्थल पर भी मुद्रणहस्त० में "**बायबिल**" वर्तनी है किन्तु प्रकाशित द्वि० सं० में "**बाइबल**" पाठ कर दिया है। वर्तनी सम्बन्धी उक्त अव्यवस्था दो कारणों से हुई है—एक, महर्षि दयानन्द बोलते जाते थे, तो वे बोलते तो एक ही शब्द थे किन्तु भिन्न-भिन्न लिपिकर उस शब्द को अपने भाषा-ज्ञान के अनुसार भिन्न-भिन्न वर्तनी में लिखते थे। दूसरा, जिस लिपिकर की भाषात्मक योग्यता परिपक्व नहीं थी वह लिखते समय जैसी वर्तनी ध्यान में आती थी वैसी ही लिख देता था। ऐसे ही प्रमादी शोधक और **आदि-सम्पादक ज्वालादत्त शर्मा** तथा **भीमसेन शर्मा** थे। उन्होंने अशुद्धि शोधन पर ध्यान नहीं दिया। इस लेखन-अव्यवस्था से ग्रन्थकार का कोई लेना-देना नहीं है। **हाँ, आर्य सम्पादकों द्वारा सवा-सौ वर्षों से अधिक समय बीत जाने पर भी अब तक इस भाषागत अव्यवस्था को ठीक न करना खेदजनक है, क्योंकि उससे इस अव्यवस्था और अशुद्धियों का उत्तरदायित्व व्यर्थ ही महर्षि पर पड़ रहा है।** इस अव्यवस्था से इस ग्रन्थ की भाषात्मक एकरूपता, व्यवस्था, प्रामाणिकता, शुद्धता और मानकता नष्ट हो रही है, अत: भाषा को व्यवस्थित रूप देना आवश्यक था, और आज भी है। इस संस्करण में, इनमें से अधिकत: स्वीकृत वर्तनी '**बाइबल**' को सर्वत्र ग्राह्य माना गया है। आगे इस पर टिप्पणी नहीं दी जायेगी।

५. **संस्कृत बाइबल**—नीलक ण्ठ शास्त्री ने ईसाई मत ग्रहण करके बाइबल का संस्कृत भाषा में अनुवाद किया था। (युमी)

७. **अपप्रयोग**—मुद्रणहस्त० और तीनों सं० में यहां '**शङ्का**' एकवचनात्मक प्रयोग है, "**बहुत-सी**" के सम्बन्ध से बहुवचन अपेक्षित है। अन्य सभी सं० तथा उदयपुर सं० में एकवचनात्मक अपप्रयोग है।

८. **अपपरिवर्तन**—मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं० में यहां '**ही**' प्रयोग है। मूलप्रति सं० का प्रयोग "**है**" सही है। '**ही**' अप-अर्थ देता है।

९. **आन्दोलन**=चिन्तन, विचार-मन्थर, विवेचन।

१०. **स्थानभ्रष्ट अपपाठ**—मुद्रणहस्त०, तीनों सं० में '**यथायोग्य**' विशेषण '**सत्यासत्य**' से पूर्व है—"**आत्मा यथायोग्य सत्यासत्य के निर्णय करने का**"। उस स्थिति में यह '**सत्यासत्य**' पद का विशेषण बन जाता है जो अप-अर्थ का संदेह उत्पन्न करता है।

पठित वा श्रुत है, उतना निश्चय कर सकता है। यदि एक मत-वाले दूसरे मत-वालों[१] के विषयों को जानें और अन्य न जानें तो यथावत् संवाद नहीं हो सकता, किन्तु अज्ञानी किसी भ्रमरूप बाड़े में घिर[२] जाते हैं। ऐसा न हो, इसलिए इस ग्रंथ में प्रचरित सब मतों का विषय थोड़ा-थोड़ा लिखा है। इतने से ही शेष विषयों में अनुमान कर सकता है कि वे सच्चे हैं वा झूठे?

जो-जो सर्वमान्य सत्य विषय हैं वे तो सबमें एक-से हैं, झगड़ा झूठे विषयों में होता है। अथवा एक सच्चा और दूसरा झूठा हो, तो भी कुछ थोड़ा-सा विवाद चलता है। यदि वादी-प्रतिवादी सत्यासत्य निश्चय के लिये वाद-प्रतिवाद करें, तो अवश्य निश्चय हो जाय।

अब मैं इस १३वें समुल्लास में[३] ईसाईमत विषयक थोड़ा-सा लिखकर सबके सम्मुख स्थापित करता हूँ, विचारिये कि कैसा है?

अलमतिलेखेन विचक्षणवरेषु॥



यह '**निर्णय**' पद का विशेषण है, उससे पूर्व ही इसका उचित स्थान और उपर्युक्त वाक्य शुद्ध है। इसी से इसका 'आसत्ति' सम्बन्ध है। उदयपुर सं०, वेस, जग, भद, युमी, विस में यह अपपाठ है।

१. **अपप्रयोग**—मुद्रणहस्त० और तीनों सं० में "**दूसरे मतवाले**" अपप्रयोग है। यहां सम्बन्ध कारक में "**मतवालों के**" बहुवचनात्मक प्रयोग अपेक्षित है। सभी सं० में अपप्रयोग है।

२. **मुद्रणलिपिकर द्वारा अपपरिवर्तन**—मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं० में "**घिर**" के स्थान पर "**गिर**" क्रियापद का अपप्रयोग किया है। यह अशुद्ध परिवर्तन है। बाड़े में 'घिरा' या 'घेरा' जाता है 'गिरा' या 'गिराया' नहीं जाता। गिरना तो गर्त या कूप आदि में होता है। ऊपर यहां भी अपने मत तक घिर के अर्थात् सीमित रहने की बात की जा रही है। अत: मूलप्रति सं० का पाठ ग्राह्य है। उदयपुर आदि सभी सं० में अपप्रयोग है।

३. **समु० १३ की रचना का इतिहास और आधारग्रन्थ**—सन् १८७५ में लिखे प्रथम संस्करण में १३ वां समुल्लास कुरान मत समीक्षा-विषयक था और १४ वां ईसाई मत की समीक्षा-विषयक। महर्षि उस संस्करण को प्रकाशनार्थ राजा जयकृष्णदास (काशी के तत्कालीन डिप्टी कलेक्टर) को देकर अपने आगामी यात्रा कार्यक्रम पर चले गये।

राजा जयकृष्णदास क्योंकि अंग्रेज सरकार की सेवा में अधिकारी थे, अत: उन्होंने सरकार का और साथ ही मुसलमानों का रोषभाजन न बनने के विचार से, प्रथम संस्करण के साथ १३, १४ दोनों ही समुल्लास नहीं छपवाये। प्रथम संस्करण में केवल बारह समुल्लास छपे थे।

द्वितीय संस्करण (सन् १८८४) में इनका क्रम बदलकर इन मतों के उद्‌भव-कालक्रमानुसार १३ वां समुल्लास ईसाईमत विषयक और १४ वां समुल्लास कुरानमत विषयक कर दिया। **बाइबल की आयतों का अनुवाद तत्कालीन पादरियों द्वारा रचित बाइबल के हिन्दी-अनुवादों से ग्रहण किया गया है अत: अनुवाद-सम्बन्धी प्रत्येक अशुद्धि का दायित्व उन्ही अनुवादकों का है, ऋषि दयानन्द का नहीं।** उस समय के अनुवादों में और आज के अनुवादों में संशोधन और परिष्कार होकर पर्याप्त परिवर्तन आ चुका है, जैसे—'**आदम**' के स्थान पर '**मनुष्य**' और '**शराब**' के स्थान पर '**दाखरस**' अनुवाद कर लिया है। इस परिवर्तन के मूल में 'सत्यार्थप्रकाश' की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है, अत: सत्यार्थप्रकाश में उद्‌धृत आयत-अनुवादों में अशुद्धि का आधार तत्कालीन अनुवादों को ही मानना चाहिए, महर्षि के उद्‌धरणों या वर्तमान अनुवादों को नहीं।

महर्षि के निर्वाण से एक मास पूर्व १३ वें समुल्लास की प्रेसप्रति (पृ० ३४४ तक) प्रकाशनार्थ प्रेस में भेज दी गई थी, यह जानकारी महर्षि के २९ सितम्बर, १८८३ के एक पत्र से मिलती है। उसी दिन सायंकाल जोधपुर में ऋषि को विष दे दिया गया। इससे आगे का भाग न तो महर्षि शोध सके, न प्रकाशित प्रूफ देख सके। महर्षि के देहान्त के दो मास पूर्व तक द्वितीय संस्करण (१८८४) के ३२० पृष्ठ अर्थात् एकादश समुल्लास के पूर्ण छप जाने का विवरण प्राप्त होता है। अनुमान किया जाता है कि महर्षि के निर्वाण तक १२वें समुल्लास का कुछ भाग छप चुका होगा। मीमांसक जी का अनुमान है कि १३वां समुल्लास पूरा छप चुका

होगा। यह कथन सही प्रतीत नहीं होता। १३, १४ समु० तो पूर्णत: महर्षि के देहान्त के बाद छपे हैं।

समीक्षित आयतों का विवरण—द्वितीय संस्करण (सन् १८८४) में १३० आयतखण्ड ही प्रकाशित हुए थे। तीन आयतखण्ड (३६, ३९, ४०) जो मुद्रणप्रति बनाते समय मुद्रणलिपिकर के प्रमाद से त्रुटित रह गये थे, उस भूल का सुधार करके बाद के सम्पादकों ने उनको परोपकारिणी के संस्करण ३४वें में सम्मिलित कर लिया, जिससे ३४वें द्वितीय संस्करण में कुल आयतखण्ड संख्या बढ़कर १३३ हो गई। अब वही संख्या द्वि०सं० में प्रचलित है। मुद्रणलिपिकर की भूल से जो अन्य पांच आयतखण्ड (६५, ६६, ७१, ७२, ८३) त्रुटित रह गये थे, अभी भी द्वि०सं० में उन आयतखण्डों को सम्मिलित नहीं किया गया है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि द्वि०सं० के पक्षधरों के लिए ग्रन्थकार महर्षि कम महत्त्वपूर्ण और अप्रामाणिक हैं जबकि मुद्रणलिपिकर अधिक महत्त्वपूर्ण और प्रामाणिक है। मूलप्रति संस्करण, जो कि अब परोपकारिणी सभा अजमेर ने मूलहस्तलेख को प्रमुख आधार बनाकर प्रकाशित किया है, उसमें उन सभी महर्षिप्रोक्त आयतों को पुन: सम्मिलित कर लिया है, जो मूलह० व मुद्रणप्रति में थीं और जिन्हें मुद्रणलिपिकर ने त्रुटित छोड़ दिया था। इस संस्करण के अनुसार उनकी संख्या १४२ है। इस संस्करण में सभी १४२ आयतखण्डों को रखा गया है। इन १४२ आयतखण्डों में महर्षि ने बाइबल की कुल ४१६ आयतों की समीक्षा की है, जिसका विवरण इस प्रकार है—

उत्पत्ति पुस्तक से	१३१	राजाओं की पुस्तक	३	मार्क इञ्जील	१	
यात्रा	३८	काल इतिहास	१	लूक इञ्जील	४	
लैव्यव्यवस्था	२०	ऐयूब	७	योहन समाचार	१२	
गिनती	४	उपदेश-पुस्तक	३	योहन प्र० वाक्य	७१	
समूएल की पुस्तक	३	मत्ती इंजील	११९			
	१९६	+	**१३२**	+	८८	=**४१६ कुल**

आयतखण्डों और आयतों की संख्या में अन्तर का कारण—मूलप्रति सं० में बाइबल की कुल आयतखण्ड संख्या १४२ है। द्वितीय सं० (प्रथमावृत्ति, १८८४) में १३० है और बाद के द्वितीय संस्करणों में १३३ है। इस सं० में १४२ है।

द्वितीय सं० (प्रथमावृत्ति १८८४) में आयत खण्ड ३६, ३९, ४० नहीं थे। बाद के द्वि०संस्करणों में सम्पादकों ने इन्हें ग्रहण कर लिया क्योंकि ये भूल से छूटे थे। अत: १३० से बढ़कर उनकी संख्या १३३ हो गई। उदयपुर सं० ने इन आयतों को ग्रहण न करके भूल को 'अक्षुण्ण' बनाये रखा।

मूलप्रति सं० से वर्तमान द्वितीय संस्करणों में ९ आयतखण्ड कम हैं किन्तु यथार्थ में **पांच आयतखण्ड** ही कम हैं— ६४, ६६, ७१, ७२, ८३। शेष आयतखण्ड तो दो-दो, तीन-तीन आयतखण्डों के संयुक्त कर देने से कम हुए हैं, जैसे- ६९ और ७० को, ७८-७९ को और ८०, ८१, ८२ तीनों को संयुक्त करने से चार आयतखण्ड संख्याएं कम हुई हैं। ५+४ मिलाकर कुल जोड़ में ९ आयतखण्ड कम हैं। द्वितीय संस्करण (१८८४) की प्रेसप्रति में लिपिकरों-शोधकों ने उपर्युक्त चार आयतखण्ड-संख्याओं को संयुक्त क्यों किया? इसका कोई युक्तिसंगत कारण नहीं दिया गया है।

द्वितीय सं० के पक्षधरों के समक्ष विचारणीय प्रश्न—इस समुल्लास में आयतखण्ड संख्या के अन्तर का विवाद मुद्रणलिपिकर की भूल स्वेच्छाचारिता से उत्पन्न हुआ है। इस समुल्लास में मुंशी समर्थदान जी ने भी किसी आयत में कांट-छांट नहीं की है। अत: उस भूल में न तो कोई रहस्य खोजना चाहिए और न उस पर अनावश्यक विवाद उत्पन्न करना चाहिए। वस्तुस्थिति यह है कि मूलहस्त० में चार पन्ने फुटकर रूप में जोड़े हुए हैं, जिनमें नौ आयतखण्ड समीक्षा सहित हैं और उन पर ऊपर निर्देश है कि इनको **'यथाक्रम में लिखा जायेगा।'** मुद्रणप्रति करते समय मुद्रणलिपिकर सभी नौ आयतखण्डों को त्रुटित छोड़ गया। इस कारण वे द्वितीय सं० (१८८४) में नहीं छपे। उनमें से तीन आयतखण्डों (३६, ३९, ४०) को बाद के सम्पादकों ने ३४वें द्वि०सं० में ग्रहण करके उस भूल को सुधार लिया। उन पन्नों पर लिखित शेष पांच आयतखण्ड भी महर्षिप्रोक्त और समीक्षा की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं, अत: उनको छोड़ना भी न्यायोचित नहीं माना जा सकता। मुद्रणलिपिकर की भूल को सुधारते हुए उनको भी ग्रहण कर लेना चाहिए। इससे महर्षि का अमूल्यश्रम व्यर्थ नहीं होगा और इस समुल्लास में सभी संस्करणों में एकरूपता बन जायेगी। हमें इस तथ्य पर गम्भीरता से विचार करना चाहिये कि वह लेख महर्षि द्वारा लिखाया गया है, इस कारण उसका अनन्य महत्त्व है, उसको उपेक्षित करके रद्दी में फेंकना क्या महर्षि के श्रम का तिरस्कार नहीं है?

अथ त्रयोदशसमुल्लासारम्भः

अथ कृश्चीनाख्यमतविषयं व्याख्यास्यामः[१]

अब इसके आगे ईसाइयों के मत-विषय में लिखते हैं, जिससे सबको विदित हो जायगा कि इनका मत निर्दोष और इनका **'बाइबल'** पुस्तक ईश्वरकृत है वा नहीं? प्रथम **'बाइबल'** के **'तौरेत'**[२] का विषय लिखा जायगा। उसमें से प्रथम **'उत्पत्ति'**[३] के विषय में कुछ-कुछ विषय दिखलाया जाता है[४]—

---

१. **मुद्रणलिपिकर द्वारा पद निष्कासन अनुचित**—मुद्रणप्रति में **''कृश्चीनाख्यमत''** से **''आख्य''** पद अनुचित हटाया है। 'कृश्चीन' संस्कृत का शब्द न होने के कारण 'आख्य'=प्रसिद्ध पद आवश्यक है। **संशोधन-पुष्टि**—समुल्लास के समाप्ति वाक्य (पृ० ९३५) में भी यह पद प्रयुक्त है। 'कृश्चीन' अंग्रेजी Christian (क्रिश्चियन) का अपभ्रंश है। यह मूलतः christ (क्राइस्ट, ख्रीस्ट) से बना है। इसका अर्थ है—'ईसा मसीह के अनुयायी' या 'मसीही लोग'।

२. **'तौरेत', हजरत मूसा और यहूदी मत का परिचय**—बाइबल के दो भाग हैं। पूर्वार्ध भाग कैथोलिकों के मत से ४५ और प्रोटेस्टैंटों के मत से ३९ पुस्तकों का संग्रह है, जिसको **'तौरेत', 'ओल्ड टेस्टामेंट'** अथवा **'पुराना धर्मनियम'** कहते हैं। दाऊद रचित **'जबूर'** भी इसके अन्तर्गत है। यह यहूदियों की धर्मपुस्तक भी है, उनकी धारणा के अनुसार जो उनके पैगम्बर मूसा की आत्मा में प्रेरित हुई है। इस कारण यहूदी **'तौरेत'** को ईश्वर-प्रेरित पुस्तक मानते हैं। यूरोपीय लेखकों का मानना है कि मूसा ने ओल्ड टेंस्टामेंट (तौरेत) का थोड़ा अंश ही लिखा या बोला था। शेष भाग ९००-१०० ईस्वी पूर्व तक लिखा जाता रहा। यहां तौरेत की जो समीक्षा है वह प्रमुखतः यहूदियों के मत की समीक्षा है। बाइबल के २७ पुस्तकों वाले उत्तरार्ध भाग को **'इंजील'** कहते हैं। वह ईसाइयों की धर्मपुस्तक है। वह ईसाप्रोक्त तो नहीं है, किन्तु उसमें अनुश्रुति के आधार पर ईसा के उपदेश और जीवन-विवरण उनके शिष्यों द्वारा संकलित हैं। अतः वह ईसाइयों के लिए आदरणीय है। यह संकलन भी ईसा की मृत्यु के कई शताब्दी बाद तक हुआ। पहले इस संकलन के कई नाम प्रचलित हुए। चौथी शताब्दी में ख्रीसोष्टम या जेरोम नामक सन्त ने इसका **'बाइबल'** नाम रखा। उसके बाद यही नाम प्रचलित हो गया। अब तक बाइबल विश्व की १००० से अधिक भाषाओं में अनूदित होकर छप चुका है। सन् १६१९ में बाइबल का प्रामाणिक संस्करण तैयार हुआ, जिसे लैंसलॉट ऐंड्रूज की अध्यक्षता में ४७ विद्वानों ने तैयार किया। वही अब प्रचलित है। समय-समय पर इसमें संशोधन होते रहे हैं।

यहूदी, ईसाई और **इस्लाम** ये तीनों मत एक ही परम्परा में उत्पन्न हुए हैं। उत्तरवर्ती सम्प्रदाय में पूर्व सम्प्रदाय के ग्रन्थों, विवरणों, आदम, नूह, मूसा, अब्राहम, दाऊद, सुलेमान आदि पैगम्बरों का सम्मानपूर्वक उल्लेख है और पूर्ण पुस्तक को मान्य भी करते हैं। अतः ये मत अपने से पूर्ववर्ती का प्रत्यक्ष खण्डन नहीं करते हैं, अपितु यह कहकर अपने पैगम्बर को महान् रूप में स्थापित करते हैं कि पूर्व पुस्तक की सही और पूर्ण व्याख्या प्रस्तुत करने के लिए ईश्वर ने उसे धरती पर भेजा है। आदम (वैदिक आदिम=ब्रह्मा) से प्रारम्भ इनकी वंशपरम्परा एक होते हुए भी इनमें घोर विरोध है। यहूदी मत का उद्भवकाल लगभग तीन हजार तीन सौ वर्ष पूर्व का है।

यहूदी मत के संस्थापक हजरत मूसा थे। इसी कारण यहूदी मत को **'मूसाई मत'** भी कहा जाता है। मूसा का अन्य नाम हलीम भी था। इनके पिता का नाम उमरां तथा माता का नाम बीबी खातून था। मूसा का जन्म १३५० ईस्वी पूर्व मिश्र देश में हुआ। उनकी इसराएल (हिब्रू, इबरानी) जाति थी, जो उस समय मिश्र में गुलामी और अत्याचार-पीड़ित दशा में निवास कर रही थी। मिश्र में **तालेस 'फ़िरौन'** (या 'फिरऔन') नामक राजा उस समय राज्य किया करता था जिसने अपने को 'ईश्वर' मानकर पूजा करने तथा उसकी मूर्ति के सामने पशु-पक्षियों की बलि देने का आदेश जारी किया था। इसराएल जाति के लोगों ने, जो मूलतः किनआन, यरुसलम, फिलिस्तीन आदि के निवासी थे, उस आदेश को अस्वीकार कर दिया। जिसका परिणाम इस जाति के पुरुषों के कत्ल के रूप में सामने आया। राजा फ़िरौन का आदेश था कि इबरानी जाति में जो भी लड़का पैदा हो उसका वध कर दिया जाए। राजा तालेस का 'फ़िरौन' (या 'फ़िरऔन') उपनाम प्रसिद्ध हो गया जिसका अर्थ 'नास्तिक' आदि है।

ऐसी परिस्थितियों में मिश्र में मूसा का जन्म हुआ तो माता ने किसी तरह तीन माह तक उसे घर में छिपाये रखा। जब आगे छिपाना सम्भव प्रतीत नहीं हुआ तो उसने सरकंडों की टोकरी बना, उसमें बालक को रख, नदी किनारे के झुंडों में उसे छिपा आई। जल का प्रवाह उमड़ा और वह नदी में बह गया। दैवयोग से उसे राजा की पुत्री ने देखा और नदी से निकलवाया तथा उसके बाद संयोग से उसकी धाय भी मूसा की माता खातून नियुक्त हो गई। इस प्रकार जाति-शत्रु के ही राजमहल में उसका पालन-

मूल—१. आरंभ में ईश्वर ने आकाश और पृथिवी को सृजा। १। और पृथिवी बेडौल और सूनी थी और गहिराव पर अंधियारा था[५] और ईश्वर का आत्मा जल पर[६] डोलता था। २। [इलाहाबाद मिशन

पोषण हुआ। पानी से निकाले जाने अथवा 'पुत्र' रूप होने के कारण उसका 'मूसा' नाम मिश्री भाषा में रखा गया।

युवक होने पर एक दिन मूसा ने देखा कि कोई मिश्री उसके एक इबरानी जाति के भाई को पीट रहा है। मूसा से यह सहन न हुआ। उसने मिश्री को ऐसे घूंसे मारे कि वह मर गया। फिर उसको वहीं रेत में दबा दिया। लेकिन कालान्तर में यह भेद बादशाह फ़िरौन के सामने खुल गया। मूसा वध किये जाने के डर के मारे जंगल में भाग गया। इसके आगे मूसा का सारा चरित्र असम्भव चामत्कारिक कथाओं से भरा है। मूसा कुछ वर्ष बाद जब लौटा तो उसने फ़िरौन से अपनी जाति के लोगों को मिश्र से निकाल ले जाने की स्वीकृति देने की प्रार्थना की। मूसा के काफी प्रयासों के बाद और उस समय स्वयं विपत्तियों में फंसे मिश्र-राजा ने इसकी स्वीकृति दे दी। वह अपनी जाति के लोगों को निकालकर '**सिनाई**' पर्वत के पास ले गया वहां उनको नये धर्म अर्थात् मूसाई मत की दीक्षा दी।

वह अपनी जाति के लोगों को लेकर चालीस वर्ष तक जंगलों में भटकता रहा। उनमें से सेना भी तैयार की और अनेक छोटे राजाओं से युद्ध भी किये, किन्तु विशेष सफलता नहीं मिली। अन्तत: फानान प्रान्त की सीमा के पास मुआब की घाटी में १२० वर्ष की आयु में मूसा का देहान्त हो गया।

यहूदी मत—मूसा ने अपनी जाति वालों को यह विश्वास दिलाया था कि परमात्मा '**यहोवा**' है और मैं उसका पैगम्बर हूँ जो तुम्हारे उद्धार के लिए 'यहोवा' का संदेश लेकर इस धरती पर आया हूँ। इस प्रकार वह यहूदियों का पैगम्बर बन गया। वैदिक परम्परा के अनुसार '**यहोवा**' वैदिक '**यह्वः**' का अपभ्रंश है। दोनों का अर्थ है—'महान् ईश्वर'। उसने तत्कालीन बहुदेववादी लोगों को एकेश्वरवाद का संदेश दिया। मूसा के समय इसराएल जाति तथा मिश्र जाति में अन्धविश्वासों, पाखण्डों, जादू-टोनों, मूर्तिपूजा तथा घोर एवं घृणित अनाचारों का बोलबाला था। मूसा ने उनका निषेध किया। उसने प्रचार किया कि महान् ईश्वर 'यहोवा' पर ईमान लाओ, मुझे पैगम्बर (ईश्वर दूत) मानो, '**तौरेत**' को ईश्वरीय पुस्तक मानो, तभी तुम्हारी मुक्ति हो सकती है, अन्यथा नहीं। मूसा की मृत्यु के बाद यशू खलीफा, हज० दाऊद, हज० सुलेमान (जिसके महल में ७०० स्त्रियां और ३०० बाँदियां थीं) ने इस मत को आगे बढ़ाया और इसके प्रसार के लिए अनेक युद्ध किये।

यहूदी और ईसाई अपनी उत्पत्ति का सम्बन्ध आदम और नूह (वैदिक आदिम=ब्रह्मा और मनु) से जोड़ते हैं। मुसलमान आदम (आदिम=ब्रह्मा) को अपना पहला पैगम्बर और बाबा मानते हैं (द्र० पृष्ठ ९४९) वे आदम का काल ७५०० वर्ष पूर्व मानते हैं। इसराएल जाति को नूह की वंशज और ईश्वरीय जाति कहते हैं। फरिश्तों पर विश्वास करते हैं। अपने परिवार में विवाह, तलाकनामा लिखकर दे देने से तलाक होना, रोजा रखना, आठ दिन की आयु में बालक का खतना कराना, पशु बलि देना, अग्नि में मांस की भेंट देने से ईश्वर की प्रसन्नता होना, कयामत (प्रलय) के दिन पाप-पुण्य का हिसाब होना, ईश्वर द्वारा पापों को क्षमा किया जाना आदि बातों में विश्वास करते हैं। यहूदी, ईसा को न तो '**ईश्वर का पुत्र**' मानते हैं ओर न '**रसूल**' मानते हैं। ईसाई मत का आरम्भ और प्रसार होने पर इस प्रकार के सामान्य मतभेदों के कारण ही इनके परस्पर भयंकर युद्ध होते रहे हैं तथा खूब रक्त बहा है। हिटलर ने लगभग पचास लाख यहूदियों को जर्मनी से बाहर कर दिया था और उनमें से लाखों का कत्ल किया था। उसके बाद इनको सन् १९४८ में 'इजरायल' में बसाया गया, जो आज एक छोटा-सा स्वतन्त्र देश है। इनकी प्राचीन मूलभूमि फिलिस्तीन है। आज भी वहां इनका मुसलमानों से भयंकर संघर्ष चलता रहता है। वैसे ये लोग समस्त यूरोप में फैले हैं और व्यापार आदि में अग्रणी हैं।

महर्षि ने १३वें समुल्लास में पहले यहूदियों के धर्मग्रन्थ '**तौरेत**' (ओल्ड टेस्टामेंट) की समीक्षा की है। इस समय ईसाई मत प्रबल होने से मुख्य नाम वही दिया है। **(ईसा और ईसाई मत का परिचय पृष्ठ ८८९ पर देखिए)**

३. **बाइबल में 'उत्पत्ति'** नामक पुस्तक का अंग्रेजी नाम 'GENESIS' है।

४. **मुद्रणलिपिकर द्वारा अनुचित पाठ-परिवर्तन**—मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं० में इस अन्तिम वाक्य को हटाकर पहले वाक्य की क्रिया को बदलकर यह पाठ बनाया है—"**प्रथम बाइबल के तौरेत का विषय लिखा जाता है—**"। यह परिवर्तन अनुचित है, क्योंकि '**तौरेत**' तो ४५ या ३९ पुस्तकों के संग्रह का नाम है। केवल यहीं पर वाक्य समाप्त कर देने से यह स्पष्ट नहीं हो पा रहा है कि '**तौरत**' के अन्तर्गत किस पुस्तक की समीक्षा की जायेगी। आगे पढ़ेंगे कि महर्षि ने किसी भी नयी पुस्तक की समीक्षा आरम्भ करने से पूर्व उसका नाम शीर्षक के रूप में लिखा है। यहां भी हटा दिये गये वाक्य में '**उत्पत्ति**' (Genesis) नामक पुस्तक का विषय दर्शाने का कथन है। इस वाक्य को हटाने से यह हानि हुई है कि आगे प्रत्येक आयत के साथ पर्व और आयत संख्या तो उल्लिखित है किन्तु किस पुस्तक से वह है, उसका नाम ही नहीं है। सभी सं० में यही अपपाठ है।

५. **वैदिक परम्परा की छाया**—यहूदी, ईसाई, मुसलमान आदि मूलरूप से आर्यों के वंश, आर्यों के आदिनिवास, आर्यों की वैदिक

प्रेस से सन् १८६६ में मुद्रित, पुराने नियम का पहला भाग अर्थात् तौरेत की पुस्तक 'उत्पत्ति']

[उत्पत्ति], पर्व १। आयत १।२॥[१]

समीक्षक—आरम्भ किसको कहते हो?

ईसाई—सृष्टि की प्रथमोत्पत्ति[२] को।

समीक्षक—क्या यही सृष्टि प्रथम हुई, इसके पूर्व कभी नहीं हुई थी?[३]

ईसाई—हम नहीं जानते हुई थी[४] वा नहीं, ईश्वर जाने।

समीक्षक—जब नहीं जानते तो तुमने[५] इस पुस्तक पर विश्वास क्यों किया कि जिससे सन्देह का निवारण नहीं हो सकता?[६] और इसी के भरोसे लोगों को उपदेश कर इस सन्देह से भरे हुये[७] मत में क्यों फसाते हो? और जो निःसन्देह सर्वशङ्कानिवारक वेदमत का स्वीकार क्यों नहीं करते? **जब तुम ईश्वर की सृष्टि का हाल नहीं जानते, तो ईश्वर को कैसे जानते होगे?** आकाश किसको मानते हो?

ईसाई—पोल और ऊपर को।

समीक्षक—पोल की उत्पत्ति किस प्रकार हुई? क्योंकि यह पदार्थ विभु और अति सूक्ष्म है[८] और

भाषा और ज्ञान-परम्परा से जुड़े हैं, इसकी पुष्टि स्वयं बाइबल, कुरान और विश्व का अन्य साहित्य भी करता है (द्रष्टव्य पृ० ८५०, ८५९, ८६० आदि पर टिप्पणी)। दीर्घकाल तक आर्यों से बिछुड़े रहने, दूरस्थ क्षेत्रों में निवास हो जाने आदि कारणों से इनकी परम्परा छूट गई, किन्तु फिर भी अनुश्रुति में कुछ बातें सुरक्षित हैं, जो इनको वैदिक-परम्परा से जोड़ती हैं। देखिए—

(क) सृष्टि-उत्पत्ति सम्बन्धी प्रथम आयत में कहा है कि प्रलयकाल में नीचे पृथिवी पर अन्धकार था। वेद भी यही कहता है—

''तम आसीत् तमसा गूढमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम्।'' (ऋग्वेद १०.१२९.३)

अर्थात्-सृष्टि के पहले सब जगत् अन्धकार से आवृत था। यह सब सलित=जलरूप अर्थात् आकाशरूप था और व्यापक परमश्वेर उसमें व्याप्त था। मनुस्मृति में भी यही कहा है—**''आसीदिदं तमोभूतम्''** (१.५)=यह सब तम=अन्धकार रूप था।

अन्तर यह आ गया कि यहूदी-परम्परा में 'सलिल' का अभिधात्मक और व्यावहारिक अर्थ 'जल' ग्रहण कर लिया जिससे मूल अर्थ दूर चला गया। इसी प्रकार 'ईश्वर उसमें व्यापक था' का तथ्य छूटकर विकृत कथन में प्रस्तुत हो गया। फिर भी कुछ अंश जैसे—आदि सृष्टि से पूर्व जगत् का तमोभूत रूप, ईश्वर का अस्तित्व, ईश्वर के द्वारा आकाश, पृथ्वी आदि का सृजन करना आदि तथ्य अनुश्रुति में सुरक्षित रह गये। सर्वप्रथम ये सिद्धान्त वैदिक शास्त्रों ने ही दिये थे।

६. **मुद्रणलिपिकर द्वारा अनावश्यक पाठान्तर**—मुद्रणलिपिकर ने यहां **''जल पर''** पाठ के स्थान पर व्यर्थ ही **''जल के ऊपर''** पाठ-परिवर्तन किया है। **संशोधन-पुष्टि**—पाठक देखें कि दोनों सं० में समीक्षा में तीन स्थान पर मूल पाठ **''जल पर''** अब भी सुरक्षित है। लिपिकरों ने यों ही व्यर्थ पाठान्तर ग्रन्थ में किये हैं। वे सब उपेक्षणीय हैं।

१. **आयत-संख्याओं का मिलान तथा रिक्त स्थान चिह्न**—तेरहवें समुल्लास में उद्धृत बाइबल की आयतों और उनकी संख्याओं का मिलान **'बाइबल'**= 'धर्मशास्त्र अर्थात् पुराना और नया धर्मनियम' (Holy Bible' in Hindi) प्रकाशक—भारत-लंका बाइबल-समिति, ए/२, महात्मा गांधी मार्ग, बंगलौर-१, सन् १९८३ संस्करण से किया गया है। जो आयत आदि, मध्य या अन्त, जहां से अपूर्ण उद्धृत है वहां रिक्तस्थान बोधक चिह्न (......) दे दिया है। वैदिक शास्त्रों के उद्धरणों के समान बाइबल मूलपाठ के अनुसार आयतों की संख्या भी दे दी है। इससे पृथक्-पृथक् आयत की पहचान हो सकेगी और बाइबल में प्रमाण ढूंढने में भी सुविधा रहेगी, आयतों का परस्पर घाल-मेल न होकर स्पष्टतः समझने में सरलता होगी। पाठक इस परिश्रम का लाभ उठायें।

२. **अपपाठ**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में **''सृष्टि के प्रथमोत्पत्ति''** अपप्रयोग है। **'उत्पत्ति'** स्त्रीलिंग के साथ **'की'** स्त्रीलिंग कारक आयेगा। मूलप्रति सं० में संशोधित है। वेस, भद, जग, युमी, विस, जस, उदयपुर सं० में अपपाठ है।

३. **ऋषि-हस्तलेख**—मूलहस्त० में ***''इसके.......हुई थी''*** पाठ ऋषि-हस्तलेख में परिवर्धित है।

४. **उचित संशोधन**—मूलप्रति सं० में **'हुई'** क्रिया त्रुटित है। द्वि० सं० में इसको परिवर्धित कर दिया है, जो उचित एवं ग्राह्य है।

५. **त्रुटित पद**—द्वि० सं० में **'तुमने'** पद त्रुटित है। मूलप्रति सं० में है, जो ग्राह्य है।

६. **उचित संशोधन**—मूलह०, मूलप्रति सं० में ये दो पृथक् वाक्य हैं—**''विश्वास क्यों किया? क्योंकि इससे सन्देह का निवारण**

ऊपर-नीचे एक-सा है। जब आकाश नहीं सृजा था तब पोल और अवकाश था वा नहीं? जो नहीं था तो ईश्वर, जगत् का कारण और जीव कहाँ रहते थे? विना अवकाश के कोई पदार्थ स्थित नहीं हो सकता, इसलिये तुम्हारी **'बाइबल'** का कथन युक्त नहीं। ईश्वर बेडौल [और] उसके ज्ञान, कर्म=कार्य **'बेडौल'** होते हैं वा सब डौलवाले?[१]

ईसाई—सब डौलवाले होते है।[२]

समीक्षक—तो यहाँ ईश्वर की बनाई पृथिवी **''बेडौल थी''**, ऐसा क्यों लिखा?

ईसाई—'बेडौल' का अर्थ यह है कि ऊँची-नीची थी, बराबर नहीं थी।

समीक्षक—फिर बराबर किसने की? और क्या अब भी ऊँची-नीची नहीं है? इसलिये ईश्वर का काम बेडौल कभी नहीं हो सकता, क्योंकि वह सर्वज्ञ है। उसके काम में भूल-चूक कभी नहीं होती है।[३] और **'बाइबल'** में ईश्वर की सृष्टि बेडौल लिखी [है],[४] इसलिये यह पुस्तक ईश्वरकृत नहीं हो सकता।

प्रश्न—'ईश्वर का आत्मा' क्या पदार्थ है?

ईसाई—चेतन।

समीक्षक—वह साकार है वा निराकार तथा व्यापक है वा एकदेशी?

ईसाई—निराकार, चेतन और व्यापक है, परन्तु किसी एक **'सनाई पर्वत'**,[५] **'चौथा आसमान'** आदि स्थानों में विशेष करके रहता है।

समीक्षक—जो निराकार है तो उसको किसने देखा? और व्यापक का जल पर डोलना कभी नहीं हो सकता। भला, जब ईश्वर का आत्मा जल पर डोलता था, तब ईश्वर कहाँ था? इससे यही सिद्ध

नहीं हो सकता।'' मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं० में दोनों को मिलाकर मिश्रवाक्य की रचना की है, जो अधिक उपयुक्त है। वही उपयुक्त वाक्य-रचना ग्राह्य है क्योंकि बाद वाला यह आश्रित वाक्य है।

७. **अपप्रयोग**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में **''सन्देह के भरे हुए''** अपप्रयोग है यहां **'से'** विभक्ति-प्रत्यय अपेक्षित है।

८. **स्थानभ्रष्ट अपपाठ**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में यह क्रमरहित वाक्य है—**''यह विभु पदार्थ और अतिसूक्ष्म है।''** यहां **''विभु''** पद अस्थान में होने से अपपाठ हो गया है। पदार्थ की दो विशेषताएं बताई हैं **''विभु और अतिसूक्ष्म''**, **''और''** उनका विभाजक है। अत: उपर्युक्त संशोधित पाठ ग्राह्य है। वेस, जग, भद, युमी, विस, उदयपुर सं० आदि में अपपाठ है।

१-२. **अपपाठ की कहानी**—प्रश्नोत्तर का यह पाठ उत्तरोत्तर बिगड़ता गया है। मूलहस्त० में यह अर्धशुद्ध था—**''उसका ज्ञान कर्म कार्य बेडोल होता है वा सब डौलवाले?'' ''ईसाई—डौलवाले होते हैं।''** मुद्रण-लिपिकर ने लिखते समय इसको अधिक अशुद्ध बना दिया—**''उसका ज्ञान कर्म कार्य बेडौल होता है वा सब डौल वाला?'' ''ईसाई- डौलवाला होता है।''** मुद्रण-काल में किसी शोधक ने **''कार्य''** पद हटा दिया। इस प्रकार जिस वाक्यांश को शुद्ध किया जाना चाहिए था उसको तो किया नहीं, जो शुद्ध था उसको भी अशुद्ध बना दिया। वस्तुत: यहां दोनों वाक्यों में बहुवचन होना चाहिए था, क्योंकि एक से अधिक उद्देश्यों में तथा **'सब'** पद के साथ बहुवचन अपेक्षित होता है। द्वि० सं० का पाठ तो मुद्रण-प्रति के आधार पर अशुद्ध बन गया और मूलप्रति सं० ने द्वि०सं० का पाठ ग्रहण करके अपना पाठ स्वयं और अधिक इस प्रकार बिगाड़ लिया—**''ईश्वर बेडौल, उसका ज्ञान-कर्म बेडौल होता है वा सब डौलवाला? ईसाई-डौलवाले होते हैं।''** एक ही पद में एक स्थान पर एकवचन है, और दूसरे स्थान पर बहुवचन। इसका शुद्ध रूप ऊपर दिया गया है। वही पाठ व्याकरणानुसार ग्राह्य है। चर्चित अपपाठ ही वेस, जग, भद, युमी, विस, जस, उदयपुर सं० आदि में है।

३,४. **मुद्रणलिपिकर द्वारा अपपरिवर्तन**—मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं० में यह अपपाठ इस प्रकार है—**''उसके काम में न भूल, न चूक कभी हो सकती है।'' ''भूल-चूक''** युग्म पद है। इनके बीच में अन्य पद नहीं आते। वेस, जग, भद, युमी, विस, उदयपुर सं० में अपपाठ है। मूलप्रति सं० का पाठ ग्राह्य है। दोनों सं० में यहां **''है''** क्रिया अपेक्षित है।

५. **सनाई पर्वत**—बाइबल में इस पर्वत का नाम Zion है,जिसका हिन्दी उच्चारण **''सियोन''** मिलता है (योहन के प्रकाशित १४.१

होता है कि ईश्वर का शरीर कहीं अन्यत्र स्थित होगा अथवा अपने आत्मा के कुछ-एक टुकड़े को[१] जल पर डोलाया होगा। जो ऐसा है तो विभु और सर्वज्ञ कभी नहीं हो सकता। जो विभु नहीं तो जगत् की रचना, धारण, पालन और जीवों के कर्मों की व्यवस्था वा प्रलय कभी नहीं कर सकता; क्योंकि **जिस पदार्थ का स्वरूप एकदेशी है उसके गुण, कर्म, स्वभाव भी एकदेशी होते हैं, जो ऐसा है, तो वह ईश्वर नहीं हो सकता; क्योंकि ईश्वर सर्वव्यापक, अनन्त गुण-कर्म-स्वभावयुक्त, सच्चिदानन्दस्वरूप, नित्य-शुद्ध-बुद्ध-मुक्त-स्वभाव, अनादि, अनन्तादि लक्षणयुक्त वेदों में कहा है, उसी को मानो तभी तुम्हारा कल्याण होगा, अन्यथा नहीं॥ १॥**

२. और ईश्वर ने कहा कि उजियाला[२] होवे और उजियाला[३] हो गया। ३। और ईश्वर ने उजियाले[४] को देखा कि अच्छा है....। ४।[५] [तौरेत, उत्पत्ति], पर्व १। आ० ३।४॥

समीक्षक—क्या ईश्वर की बात जड़स्वरूप उजियाले[६] ने सुन ली? जो सुनी हो, तो इस समय भी सूर्य और दीप-अग्नि का प्रकाश हमारी-तुम्हारी[७] बात क्यों नहीं सुनता? प्रकाश जड़ होता है, वह कभी किसी की बात नहीं सुन सकता। क्या जब ईश्वर ने उजियाले[८] को देखा तभी जाना कि उजियाला[९]

और आयतखण्ड संख्या १६ की समीक्षा तथा १३० में भी द्रष्टव्य है)। उसी का अन्य प्रचलित उच्चारण '**सनाई**' है। यह पर्वत ईसाईयों के स्वर्ग का एक कल्पित पर्वत है जिस पर स्वर्गगत हजरत ईसा मसीह और स्वर्ग के अधिकारी अन्य ईसाई रहते हैं।

१. **स्थानभ्रष्ट अपवाक्य**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में '**कुछ**' और '**एक**' पद पृथक्-पृथक् स्थान पर पठित होने से यह अपवाक्य बन गया है—''**अपने कुछ आत्मा के एक टुकड़े को**''। यह क्या वाक्य हुआ? इसको संशोधित करके ऊपर दे दिया है। यही अपपाठ वेस, जग, भद, युमी, विस, उदयपुर सं० आदि में है।

२-४, ६, ८,९. **अयोग्य मुद्रणलिपिकर-शोधक द्वारा अव्यवस्थित वर्तनी**—संख्यांक २-४ पर मूलहस्त० में शुद्ध वर्तनी है। मुद्रणलिपिकर और मुद्रणकालीन-शोधक ने ऊपर बिन्दु लगाकर तीनों को ''**उंजियाला**'' अशुद्ध लिख दिया। लकीर के फकीर आदि-शोधक-सम्पादक द्वितीय संस्करणों में वही छापते रहे मूलप्रति सं० में भी यही अशुद्धि है। यह भी नहीं देखा कि इसकी ही समीक्षा में तीन बार शुद्ध वर्तनी है। ऐसे लिपिकरों और सम्पादकों से यह आशा कैसे की जा सकती थी कि वे आगे आयतखण्ड संख्या १०४ (द्वितीय सं० में संख्या ९५) के मूलपाठ और समीक्षा में पठित ''**उजियाला**'' शुद्ध वर्तनी को देखकर यहां की वर्तनी शुद्ध कर लेते? द्विप्र० में पांच बार ''**उंजियाला**'' तो एक बार ''**उजियाला**'' वर्तनी है। द्वि०सं० में संशोधित है।

उदयपुर सं० का मक्खीमार सम्पादन—मक्कार व अयोग्य लिपिकरों-शोधकों ने तो सत्यार्थप्रकाश की दशा बिगाड़ी ही है किन्तु हम अपने विद्वानों को क्या कहें? सभी सम्पादकों ने इस अशुद्ध और अव्यवस्थित वर्तनी को शुद्ध कर लिया है किन्तु उदयपुर सं० के कथित दश सम्पादकों ने फिर 'मक्खी पर मक्खी मार' सम्पादन कर दिया। एक ही स्थल पर चार बार शुद्ध वर्तनी है तो दो बार अशुद्ध। **महर्षिलेख**—मूलहस्त० में प्रथम शुद्ध वर्तनी ऋषि-लिखित है।

५. **रिक्तस्थान बोधक चिह्न से अभिप्राय**—सभी आयतों के मूलपाठ में कहीं पहले, कहीं मध्य में, कहीं अन्त में रिक्त स्थान बोधक चिह्न (....) दिये गये हैं। ये इस बात के संकेत हैं कि ग्रन्थकार ने बाइबल का पाठ वहां-वहां से ग्रहण नहीं किया है अर्थात् आयत का कुछ पाठ वहां से छोड़ा है, आवश्यक ले लिया है। जहां दो पूर्णविरामों के मध्य संख्या है वहां आयत पूर्ण हो जाती है।

७. **अपवर्तनी और भ्रान्ति**—दोनों हस्तलेखों, द्विप्र० में अधिकांश स्थानों पर '**तुम्हारी, तुम्हारा, तुम्हारे**' पदों की '**तुह्मारी, तुह्मारा, तुह्मारे**' वर्तनी है। यह अशुद्ध है और लिपिकरों की अयोग्यता का फल है। अन्य सैंकड़ों अशुद्धियों के समान इस वर्तनी को भी लिपिकरों ने अज्ञानतावश अशुद्ध लिखा है। जैसे '**हम**' सर्वनाम से '**हमारी, हमारा, हमारे**' पद बनते हैं वैसे ही '**तुम**' मूल सर्वनाम है, उससे '**तुम्हारी, तुम्हारा, तुम्हारे**' आदि पद बनते हैं। लिपिकरों ने अयोग्यता और प्रमाद से इन पदों की तीन प्रकार की वर्तनियां लिखी हैं—१. **तुम्हारा, तुम्हारी, तुम्हारे**; २. **तुमारा, तुमारी, तुमारे**; ३. **तुह्मारा, तुह्मारी, तुह्मारे** (क्रमशः पृ० द्विप्र० ३२, ८२, ८८; ४७६, ३१८; आदि)। इनमें पहली वर्तनियां शुद्ध हिन्दी की है, दूसरी गुजराती की हैं, तीसरी अशुद्ध हैं। जो विद्वान् अशुद्ध वर्तनियों को गुजराती वर्तनी कहकर ग्रहण करते हैं, वे भ्रान्ति में हैं। लिपिकरों ने यही अशुद्धि इन शब्दों में भी की है—कुम्हार=कुह्मार (द्विप्र० पृ० ३७३), जम्हा=जह्मा (द्विप्र० पृ० ४३८)। अतः अशुद्धि का पक्ष लेना अनुचित है।

मीमांसक जी का पाठचिन्त्य—पं० युधिष्ठिर मीमांसक जैसे विद्वान् भी लिपिकर-लिखित अशुद्ध पदों को शुद्ध मानकर

अच्छा है? पहले नहीं जानता था? जो जानता होता, तो देखकर अच्छा क्यों कहता? जो नहीं जानता था, तो वह ईश्वर ही नहीं। इसीलिये तुम्हारी 'बाइबल' ईश्वरोक्त और उसमें कहा हुआ ईश्वर सर्वज्ञ नहीं है॥ २॥

३. और ईश्वर ने कहा कि पानियों के मध्य में आकाश होवे और पानियों को पानियों से विभाग करे। ६। तब ईश्वर ने आकाश को बनाया और आकाश के नीचे के पानियों को आकाश के[1] ऊपर के पानियों से विभाग किया और ऐसा हो गया। ७। और ईश्वर ने आकाश को स्वर्ग कहा और सांझ और बिहान दूसरा दिन हुआ। ८। [तौरेत, उत्पत्ति], पर्व १। आ० ६।७।८॥

समीक्षक—क्या आकाश और जल ने भी ईश्वर की बात सुन ली? और जो जल के बीच में आकाश न होता तो जल रहता ही कहाँ? प्रथम आयत में "आकाश को सृजा था", [यह लिखा है][2], पुनः आकाश का बनाना व्यर्थ हुआ। **जो आकाश को स्वर्ग कहा, तो वह सर्वव्यापक है, इसलिये सर्वत्र स्वर्ग हुआ। फिर ऊपर को स्वर्ग है, यह कहना व्यर्थ है।** जब सूर्य उत्पन्न ही नहीं हुआ था, तो पुनः दिन और रात कहां से हो गये[3]? ऐसी ही असम्भव बातें आगे की आयतों में भरी हैं॥ ३॥

४. तब ईश्वर ने कहा कि हम आदम[4] को अपने स्वरूप में अपने समान बनावें....। २६। तब ईश्वर ने आदम को अपने स्वरूप में उत्पन्न किया, उसने उसे ईश्वर के स्वरूप में उत्पन्न किया, उसने

यथावत् लिखने की धारणा बना बैठे और '**तुह्मारा**' आदि अशुद्ध वर्तनियों को इस प्रकार ग्रहण किया है जैसे यह कोई महत्त्वपूर्ण धरोहर हो और। सम्पादकों ने शुद्धरूप देकर जो गत दर्जनों संस्करणों में अब तक शुद्ध वर्तनी ग्रहण की थी, पं० जी ने उसको उपेक्षित कर अशुद्ध वर्तनी ग्रहण करके सत्यार्थप्रकाश की भाषा को पीछे 'रफ़-युग' में ला खड़ा किया। देखिए, लिपिकरों-शोधकों का जादू विद्वानों के सिर चढ़ भी बोल रहा है!! मीमांसक जी को छोड़ सभी ने इनको शुद्ध कर लिया है।

१. **मुद्रणलिपिकर द्वारा त्रुटित पाठ और ऋषिहस्तलेख**—मुद्रणलिपिकर ने "**नीचे के पानियों को आकाश के**" पाठ त्रुटित छोड़ दिया। इसे ऋषि के स्वहस्तलेख में पूर्ण किया है। **वैदिक छाया**—बाइबल में नीचे-ऊपर के दो पानियों अर्थात् दो समुद्रों की चर्चा वेदों के समान है। वेदों में 'उत्तर और अधर समुद्रों' का अनेकत्र उल्लेख है।

२. **त्रुटित आवश्यक पाठ**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में यहां यह वाक्य है—"**प्रथम आयत में आकाश को सृजा।**" यह अपूर्ण अपवाक्य है। आयत में सृजा नहीं है अपितु सृजन का कथन है। उचित वाक्यरचना के लिए बृहत् कोष्ठकान्तर्गत पाठ का परिवर्धन अपेक्षित है। यही अपूर्ण पाठ वेस, जग, भद, युमी, विस, उदयपुर सं० सहित अन्य सं० में है।

३. **अपवाक्य**—दोनों हस्त०, तीनों सं० में "**दिन और रात कहां से हो गई**" अपवाक्य है। बहुवचन चाहिये—"**हो गये**"।

४. **आदिपुरुष आदम (Adam)**—मानव जाति अथवा यहूदियों की इस्राइल जाति का आदिपुरुष। यहूदी, ईसाई, मुसलमान आदम से अपना आरम्भ मानते हैं। वह वंशपरम्परा इस प्रकार है—आदम→नूह→इब्राहीम→मूसा→ईसा। शेष मुहम्मद आदि सभी लोग नूह की वंश-परम्परा की सन्तानों में से ही माने जाते हैं। द्र० समु० १४ में आयत खण्ड संख्या ११, ७७।

'**आदम**', नाम वैदिक '**आदिम**'=ब्रह्मा का अपभ्रंश है और '**नूह**' मनु का, जो अन्तिम ब्रह्मा का पुत्र था। वैदिक परम्परा में भी ब्रह्मा को आदिपुरुष माना है और सभी मानव मनु के वंशज माने जाते हैं। नूह (मनु वैवस्वत) के समय की जल प्रलय की घटना बाइबल और कुरान दोनों में आती है। इन लोगों के प्राचीन काल में बिछुड़ जाने और शिक्षाविहीन हो जाने के बाद भी कुछ वैदिक शब्द तीनों मतों की भाषाओं व परम्पराओं में अब भी मिलते हैं। ये बातें इन्हें वैदिक परम्परा और मूल से जोड़ती हैं। बाइबल ने तो स्पष्ट शब्दों में स्वीकार किया है कि—"**और सारी पृथ्वी की एक ही बोली, और एक ही भाषा थी।**" (उत्पत्ति, पर्व ११, आ० १ और सत्यार्थप्रकाश १३ समु० में आयतखण्ड संख्या १६) संसार की एक भाषा ऋग्वैदिक ही थी।

नया अनुवाद—जैसी कि ईसाई लेखकों की पुरानी प्रवृत्ति रही है कि वे भारत की किसी वस्तु, व्यक्ति आदि को प्राचीन और गौरवस्थानीय नहीं मानना चाहते, वही प्रवृत्ति बाइबल के नये अनुवादों में भी उजागर कर दी है। बाइबल के नये अनुवादों में '**आदम**' के स्थान पर '**मनुष्य**' अनुवाद करना आरम्भ कर दिया है जिससे भारतीय उनके पूर्वज और प्राचीन सिद्ध न हों। (द्रष्टव्य है पृष्ठ ८५१ की टिप्पणी भी)

उन्हें नर और नारी बनाया। २७। और ईश्वर[१] ने उन्हें आशीष दिया....। २८।

[तौरेत, उत्पत्ति], पर्व० १। आ० २६। २७। २८॥

समीक्षक—यदि आदम को ईश्वर ने अपने स्वरूप में बनाया तो[२] ईश्वर का स्वरूप पवित्र, ज्ञानस्वरूप, आनन्दमय आदि लक्षणयुक्त है, उसके सदृश आदम क्यों नहीं हुआ? जो नहीं हुआ, तो उसके स्वरूप में नहीं बना। और आदम को उत्पन्न किया तो ईश्वर ने अपने स्वरूप को ही उत्पत्तिवाला किया, पुनः वह अनित्य क्यों नहीं? और आदम को उत्पन्न कहाँ से किया?

ईसाई—मिट्टी से बनाया।

समीक्षक—मिट्टी कहां से बनाई?

ईसाई—अपनी कुदरत अर्थात् सामर्थ्य से।

समीक्षक—ईश्वर का सामर्थ्य अनादि है वा नवीन?

ईसाई—अनादि है।

समीक्षक—जब अनादि है तो जगत् का कारण सनातन हुआ, फिर अभाव से भाव क्यों मानते हो?

ईसाई—सृष्टि के पूर्व ईश्वर के विना कोई वस्तु नहीं था।

समीक्षक—जो नहीं था तो यह जगत् कहाँ से बना? और ईश्वर का सामर्थ्य द्रव्य है वा गुण? जो द्रव्य है तो ईश्वर से भिन्न दूसरा पदार्थ था, और गुण है तो गुण से द्रव्य कभी नहीं बन सकता, जैसे रूप से अग्नि और रस से जल नहीं बन सकता। और जो ईश्वर से जगत् बना होता तो ईश्वर के सदृश गुण-कर्म-स्वभाववाला होता। उसके गुण-कर्म-स्वभाव के सदृश न होने से यही निश्चय है कि ईश्वर से नहीं बना, किन्तु 'जगत् के कारण' अर्थात् 'परमाणु' आदि नामवाले जड़ से बना है।

जैसी[३] जगत् की उत्पत्ति वेदादि शास्त्रों में लिखी है, वैसी ही मान लो, जिससे ईश्वर जगत् को बनाता है। जो **आदम** के[४] भीतर का स्वरूप जीव और बाहर का मनुष्य के सदृश है तो वैसा ईश्वर का स्वरूप क्यों नहीं? क्योंकि **जब आदम ईश्वर के सदृश बना तो ईश्वर आदम के सदृश अवश्य होना चाहिये॥ ४॥**

५. तब परमेश्वर ईश्वर ने भूमि की धूली से आदम[५] को बनाया और उसके नथुनों में जीवन का

---

१. **यहोवा (Yahveh)**—बाइबल के '**तौरेत**' भाग में परमेश्वर को '**यहोवा**' नाम से स्मरण किया गया है। यह वैदिक '**यह्वः**' का अपभ्रंश है। इसका अर्थ है 'महान् ईश्वर'। ईसाई मत में भी ईसा ईश्वर-पुत्र है, उसका पिता परमेश्वर है। वह सबसे महान् और सृष्टिकर्त्ता है। वही '**यहोवा**' अर्थात् '**यह्वः**' है। इसको 'Lord God' भी कहा गया है। यह पं० भगवद्दत्त जी की खोज है।

२. **ऋषिहस्तलेख**—मुद्रणप्रति में "**यदि आदम.........बनाया तो**" मूलप्रति में "**किया तो......उत्पन्न**", पाठ ऋषि-लिखित है।

३. **अनावश्यक पद**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में यहां "**कि**" अनावश्यक पद है।

४. **उचित संशोधन**—मूलह०, मूलप्रति सं० में यहां क्रमशः "**आदम का**" पाठ है, मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं० में संशोधित है।

५. **बाइबल के नये अनुवादों में अशुद्ध अनुवाद**—बाइबल के नये अनुवादों में यहां "**आदम वा मनुष्य**" सोची-समझी नीति के अन्तर्गत अनुवाद किया है, जो अशुद्ध है। यहां सर्वसामान्य मनुष्य की उत्पत्ति का वर्णन नहीं है अपितु उस व्यक्ति-विशेष का उल्लेख है जो सबके पूर्वज के रूप में वर्णित हुआ है। यह अनुवाद इस कारण भी अशुद्ध है क्योंकि आगे पर्व ४-५ में इस व्यक्ति या पैगम्बर-विशेष की वंशावली वर्णित है अतः 'सर्वसामान्य मनुष्य' इसका अर्थ नहीं हो सकता। यह पूर्वज वही '**आदम**' है जिसको भारतीय इतिहास में '**आदिम**'=ब्रह्मा नामक पूर्वपुरुष के रूप में वर्णित किया है। आयतखण्ड ६,७ में स्पष्ट लिखा है कि

श्वास फूंका और आदम जीवता प्राणी[१] हुआ। ७। और परमेश्वर ईश्वर ने अदन* में पूर्व की ओर एक बाड़ी लगाई और उस आदम को जिसे उसने पहले बनाया था, उसमें रक्खा। ८। और उस बाड़ी के मध्य में जीवन का पेड़ और भले-बुरे के ज्ञान का पेड़ भूमि से उगाया। ९।

तौरेत, उत्पत्ति की पुस्तक, पर्व २। आ० ७।८।९॥

समीक्षक—जब ईश्वर ने अदन में बाड़ी बनाकर उसमें आदम को रक्खा तब ईश्वर नहीं जानता था कि इसको वहां से[२] पुनः निकालना पड़ेगा? और जब ईश्वर ने आदम को धूली से बनाया तो ईश्वर का स्वरूप नहीं हुआ,[३] और जो है तो ईश्वर भी धूली से बना होगा? जब उसके नथुनों में ईश्वर ने श्वास फूंका तो वह श्वास ईश्वर का स्वरूप था वा भिन्न? जो भिन्न था, तो आदम ईश्वर के स्वरूप में नहीं बना। जो एक है, तो आदम और ईश्वर एक-से हुए। और जो एक-से हैं, तो आदम के सदृश जन्म-मरण, वृद्धि-क्षय, क्षुधा[४]-तृषा आदि दोष ईश्वर में आये; फिर वह ईश्वर क्योंकर हो सकता है? इसलिये यह '**तौरेत**' की बात ठीक नहीं विदित होती, और यह पुस्तक भी ईश्वरकृत नहीं है॥५॥

६. और परमेश्वर ईश्वर ने आदम को बड़ी नींद में डाला और वह सो गया। तब उसने उसकी पसलियों में से एक पसली[५] निकाली और उसकी संति[६] मांस भर दिया। २१। और परमेश्वर ईश्वर ने आदम की[७] उस पसली से एक नारी बनाई और उसे आदम पास लाया। २२।

[तौरेत उत्पत्ति] पर्व २। आ० २१।२२॥

समीक्षक—जो ईश्वर ने आदम को धूली से बनाया तो उसकी स्त्री को धूली से क्यों नहीं बनाया? और जो नारी को हड्डी से बनाया तो आदम को हड्डी से क्यों नहीं बनाया? और जैसे नर से निकलने से नारी नाम हुआ तो नारी से निकलकर नर भी होना चाहिये। और उनमें परस्पर प्रेम भी रहै, **जैसे स्त्री के साथ पुरुष प्रेम करे वैसे ही स्त्री भी पुरुष के साथ प्रेम करे।**

देखो विद्वान् लोगो! ईश्वर की कैसी **पदार्थविद्या** अर्थात् '**फिलासफ़ी**' चलकती है! जो आदम की

उसकी पत्नी का नाम '**हव्वा**' था और वह सब मनुष्यों की आदिमाता थी। इस मान्यता के विषय में वैदिक, पौराणिक, जैन, बौद्ध, यहूदी, ईसाई, मुसलमान आदि प्रायः सभी के धर्मशास्त्रों अथवा इतिहासों में समान मान्यता मिलती है। इससे यह सिद्ध होता है कि ये सभी लोग एक वंश से सम्बद्ध हैं और कभी पूर्वकाल में एक परिवार के समान रहते थे और सभी एक भाषाभाषी थे। इन दोनों कथनों की पुष्टि बाइबल की आयतखण्ड संख्या १६ से भी भलीभांति हो जाती है।

१. **अपपाठ**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में यहां यह अपपाठ मिलता है—"**आदम जीवता प्राण हुआ**"। जीवित तो प्राणी होता है, प्राण न जीवित होता है, न मृत। अतः यहां उपर्युक्त संशोधन अभीष्ट है। वही संगत पाठ बाइबल में मिलता है। यही यहां प्रसंग है कि प्राण फूंकने के बाद आदम जीवित प्राणी हो गया। प्रतीत होता है लिखते समय लिपिकर से ई की मात्रा त्रुटित रह गई। उसके कारण यह अटपटा पाठ चला आ रहा है। वेस, भद, जग, युमी, विस, उदयपुर सं० में अपपाठ ही मिलता है।

* **अदन**—इस विषयक मत है कि '**अदन**' संस्कृत '**उद्यान**' का अपभ्रंश है। दोनों का भाव एक है और ध्वनिसाम्य भी है।

२,३. **उचित संशोधन**—मूलसं० में "**वहां से**" शुद्ध है क्योंकि ऊपर की पंक्ति में "**उसमें**" सर्वनाम है। द्वि०सं० में "**यहां**" अपपाठ है। मूलप्रति सं० में "**ईश्वर के स्वरूप नहीं हुआ**" अपपाठ है। द्वि०सं० का उपर्युक्त संशोधन ग्राह्य है।

४-५. **उचित संशोधन**—मूलह०, मूलप्रति सं० में क्रमशः "**क्षुधा**" और "**पसली**" पद त्रुटित हैं। इनका पाठ में होना आवश्यक है क्योंकि इनके बिना वाक्य पूर्ण नहीं बनता। द्वि०सं० में गृहीत हैं।

६. **संति का अर्थ**—बदले में, स्थान में, अर्थात् पसली निकालकर उसके स्थान पर मांस भर दिया।

७. **उचित संशोधन**—मूलह०, मूलप्रति सं० में "**आदम की**" पद त्रुटित हैं। बाइबल के मूल पाठ में भी हैं।

एक पसली निकालकर नारी बनाई तो सब मनुष्यों की एक पसली कम क्यों नहीं होती? और स्त्री के शरीर में एक ही पसली[१] होनी चाहिये, क्योंकि वह एक पसली से बनी है। क्या जिस सामग्री से सब जगत् बनाया, उस सामग्री से स्त्री का शरीर नहीं बन सकता था? इसलिये यह **'बाइबल' का सृष्टिक्रम सृष्टिविद्या से विरुद्ध है**॥ ६ ॥

७. अब सर्प भूमि के हर एक पशु से, जिसे परमेश्वर ईश्वर ने बनाया था, धूर्त था। और उसने स्त्री से कहा, ''क्या निश्चय ईश्वर ने कहा है कि तुम इस बाड़ी के हर एक पेड़ से न खाना?। १।'' और स्त्री ने सर्प से कहा कि ''हम तो इस बाड़ी के पेड़ों का फल खाते हैं। २।[२] परन्तु उस पेड़ का फल जो बाड़ी के बीच में है, ईश्वर ने कहा है कि तुम उससे[३] न खाना और न छूना, न हो कि मर जाओ। ३।'' तब सर्प ने स्त्री से कहा कि ''तुम निश्चय न मरोगे। ४। क्योंकि ईश्वर जानता है कि जिस दिन तुम उससे[४] खाओगे, तुम्हारी आँखें खुल जायेंगी और तुम भले और बुरे की पहचान में ईश्वर के समान हो जाओगे। ५।'' और जब स्त्री ने देखा वह पेड़ खाने में सुस्वाद और दृष्टि में सुन्दर और बुद्धि देने के योग्य है तो उसके फल में से लिया और खाया और अपने पति[५] को भी दिया और उसने खाया। ६। तब उन दोनों की आँखें खुल गईं और वे जान गये कि हम नंगे हैं। सो उन्होंने गूलर के पत्तों को मिलाके सीआ[६] और अपने लिये ओढ़ना बनाया। ७।

तब परमेश्वर ईश्वर ने सर्प से कहा कि ''जो तूने यह किया है,[७] इस कारण तू सारे ढोर और हर एक वन के पशुन से अधिक शापित[८] होगा, तू अपने पेट के बल चलेगा और अपने जीवनभर धूल खाया करेगा। १४। और मैं तुझमें और स्त्री में और तेरे वंश और उसके वंश में बैर डालूंगा। वह तेरे शिर[९] को कुचलेगा और तू उसकी एड़ी को काटेगा। १५।'' और उसने स्त्री को कहा कि ''मैं तेरी पीड़ा और गर्भधारण को बहुत बढ़ाऊँगा। तू पीड़ा से बालक जनेगी और तेरी इच्छा तेरे पति[१०] पर होगी और वह तुझपर प्रभुता करेगा। १६।'' और उसने आदम से कहा कि ''तूने जो अपनी पत्नी का शब्द माना है और जिस पेड़ का फल[११] मैंने तुझे खाने से वर्जा था, तूने खाया है; इस कारण भूमि

---

१. **त्रुटित पद**—द्वि० सं० में ''**एक ही पसली**'' वाक्यांश में ''**ही**'' पद त्रुटित है। मूलप्रति में है और ग्राह्य है।

२. **यहूदियों और ईसाइयों के लिए शाकाहार का ईश्वरीय आदिम आदेश**—यहूदी और ईसाई 'बाइबल' को अपनी धर्मपुस्तक और ईश्वरीय पुस्तक मानते हैं। बाइबल की इस आयत में स्पष्ट वर्णन और निर्देश है कि मनुष्य को ईश्वर ने कहीं समुद्र के किनारे या जंगल में उत्पन्न नहीं किया कि वह मछलियों और पशु-पक्षियों को खाये अपितु **फलदार बाग में उत्पन्न किया है और फल खाने का निर्देश दिया है।** यहां कहीं यह नहीं कहा कि 'तुम मांस-मछली खाना।' उनके धर्मग्रन्थ के अनुसार, इस प्रकार मनुष्य के लिए ईश्वर का प्रथम और मूल आदेश शाकाहार का है। इससे यह भी ज्ञात होता है कि मांसाहार के निर्देश उनके पैगम्बरों, नबियों या अन्य धर्मशास्त्रकारों ने बाद में विहित किये हैं। अत: उनके वे कथन इस ईश्वरीय आदेश के समक्ष मान्य नहीं हैं।

३-४, १३. **संशोधित वर्तनी**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में यहां ''**उस्से**'' अपवर्तनी है, ''**उसे**'' ग्राह्य है। द्वि० सं० में कहीं यह शुद्ध कर दी है कहीं पुरानी विद्यमान है। जैसे-१२ संख्यांक पर संशोधित ''**उससे**'' है। ''**उस्से**'' अशुद्ध लेखन है।

५,६,८,९-१२. **अपवर्तनी**—मुद्रणह०, द्विप्र० में ''**पती**'', दोनों हस्त० और तीनों सं० में क्रमश: ''**सिआ, स्रापित**'' अपवर्तनियां हैं जो हिन्दी व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध हैं। बाइबल मूलपाठ में कहीं शुद्ध ''**शापित**'' है तो कहीं ''**स्रापित**'' है। शुद्ध रूप ''**शापित**'' ग्राह्य है द्र० पृ० ८५६ पर टि०। ''**स्राप**'' और ''**स्रापित**'' कोई शब्द नहीं होता। इसी प्रकार ''**शिर**'' और ''**सिर**'' दो वर्तनियां हैं। इनमें से सर्वत्र ''**शिर**'' ग्राह्य है। महर्षि की भाषा में यही मूलत: प्रयुक्त है। द्वि० सं० में ''**सिर**'' अशुद्ध परिवर्तन है। संख्यांक १० पर भी, मुद्रणह०, द्विप्र० में ''**पती**'' अपवर्तनी है। वर्तनियों में यही अव्यवस्था उदयपुर सं० में है।

७. **मुद्रणलिपिकर द्वारा त्रुटित पाठ**—मुद्रणप्रति में ''**तब......किया है**'' त्रुटित पाठ को शोधक ने पूर्ण किया है।

तेरे लिये शापित[१२] है। अपने जीवनभर तू उससे[१३] पीड़ा के साथ खायेगा। १७। और वह काँटे और ऊँटकटारे[१] तेरे लिये उगायेगी और तू खेत का साग-पात खायेगा। १८।''

तौरेत, उत्पत्ति, पर्व० ३। आ० १। २। ३। ४। ५। ६। ७। १४। १५। १६। १७। १८॥

समीक्षक—जो ईसाइयों का ईश्वर सर्वज्ञ होता तो इस **'धूर्त सर्प'** अर्थात् **'शैतान'** को क्यों बनाता? और जो बनाया, तो वही ईश्वर अपराध का भागी है, क्योंकि जो वह उसको दुष्ट न बनाता तो वह दुष्टता क्यों करता? और वह पूर्वजन्म नहीं मानता, तो विना अपराध उसको पापी क्यों बनाया? और सच पूछो तो वह सर्प नहीं था किन्तु मनुष्य था; क्योंकि जो मनुष्य न होता; तो मनुष्य की भाषा क्योंकर बोल सकता?

और जो आप झूठा [हो][२] और दूसरे को झूठ में चलावे, उसको[३] **'शैतान'** कहना चाहिये। सो यहां शैतान सत्यवादी [है],[४] इससे कि उसने उस स्त्री को नहीं बहकाया किन्तु सच कहा। और ईश्वर ने **आदम** और **हव्वा** से झूठ कहा कि इसके खाने से तुम मर जाओगे। जब वह पेड़ ज्ञानदाता और अमर करनेवाला था, तो उसके फल खाने से क्यों वर्जा? और जो वर्जा तो वह ईश्वर झूठा और बहकानेवाला ठहरा, क्योंकि उस वृक्ष के फल मनुष्यों को ज्ञान और सुख-कारक थे, अज्ञान और मृत्यु-कारक नहीं।

जब ईश्वर ने फल खाने से वर्जा तो उस वृक्ष की उत्पत्ति किसलिये की थी? जो अपने लिये की, तो क्या आप अज्ञानी और मृत्युधर्मवाला था? और जो दूसरों के लिये बनाया तो फल खाने में अपराध कुछ भी न हुआ। और आजकल कोई भी वृक्ष ज्ञानकारक और मृत्युनिवारक देखने में नहीं आता, क्या ईश्वर ने उसका बीज भी नष्ट कर दिया? ऐसी बातों से मनुष्य छली-कपटी होता है, तो ईश्वर वैसा क्यों नहीं हुआ? क्योंकि जो कोई दूसरे से छल-कपट करेगा, वह [स्वयं][५] छली-कपटी क्यों न होगा? और जो इन तीनों को शाप दिया, वह विना अपराध के[६] है, पुनः वह ईश्वर अन्यायकारी भी हुआ। और **यह शाप ईश्वर को होना चाहिये, क्योंकि उसने झूठ बोला[७] और उनको बहकाया।**

यह **'फिलासफी'** देखो! क्या विना पीड़ा के गर्भधारण और बालक का जन्म हो सकता था? और विना श्रम के कोई अपनी जीविका कर सकता है? क्या प्रथम काँटे आदि के वृक्ष न थे? **और जब शाक-पात खाना सब मनुष्यों को ईश्वर के कहने से उचित हुआ, तो जो उत्तर में मांस का खाना 'बाइबल' में लिखा, वह झूठा क्यों नहीं? और जो वह सच्चा हो, तो यह झूठा है।**

जब **आदम** का कुछ भी अपराध सिद्ध नहीं होता तो ईसाई लोग सब मनुष्यों को आदम के अपराध

---

११. **मुद्रणलिपिकर के प्रमाद से त्रुटित पद**—मुद्रणलिपिकर ने प्रमादवश मुद्रणप्रति में **''फल''** पद छोड़ दिया है। वही त्रुटित पाठ द्विप्र० में छपा है। अन्य सभी सं० में परिवर्धित है।

१. **ऊंटकटारे**—यह एक कंटीला झाड़ीदार पौधा होता है जिसे **''ऊटकटाई''** भी बोलते हैं।

२-५. **त्रुटित आवश्यक पद**—संख्यांक २, ४ क्रियापद **'हो', 'है'** दोनों सं० में त्रुटित हैं। वाक्यपूर्ति के लिए जरूरी हैं। संख्यांक ३ पर द्वि० सं० का **''उसको''** पद ग्राह्य है। संख्यांक ५, बृहत् कोष्ठकान्तर्गत पाठ ग्राह्य है।

६. **अपप्रयोग**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में **''अपराध से''** अपप्रयोग है, **''के''** शुद्ध है। अन्यत्र भी **''के''** प्रयोग है।

७. **अपवाक्य**— दोनों हस्त० और तीनों सं० में **''वह झूठ बोला''** व्याकरणानुसार अपवाक्य है। **''उसने झूठ बोला''** शुद्ध प्रयोग है। प्रतीत होता है कि लिपिकर ने लिखते समय अपनी बोली में इस वाक्य को लिख दिया क्योंकि अन्यत्र महर्षि की भाषा शैली तो हिन्दी व्याकरण के अनुसार है, बोली के अनुसार नहीं। यही वाक्य उदयपुर सं० में है।

से सन्तान होने पर अपराधी क्यों कहते हैं? भला, ऐसा पुस्तक और ऐसा ईश्वर कभी बुद्धिमानों के मानने योग्य हो सकता है?॥७॥

८. और परमेश्वर ईश्वर ने कहा कि देखो, आदम भले-बुरे के जानने में हममें से एक की नाईं हुआ और अब ऐसा न होवे कि वह अपना हाथ डाले और जीवन के पेड़ में से भी लेकर खावे, और अमर हो जाय। २२। सो उसने आदम को निकाल दिया और अदन की बाड़ी[१] की पूर्व ओर करोबीम[२] ठहराये[३]। चमकते हुए खड्ग को, जो चारों ओर घूमता था, जिसतें जीवन के पेड़ के मार्ग की रखवाली करें। २४॥ [तौरेत, उत्पत्ति], पर्व ३। आ० २२। २४॥

समीक्षक—भला, ईश्वर को ऐसी ईर्ष्या और भ्रम क्यों हुआ कि ज्ञान में [आदम][४] हमारे तुल्य हुआ? क्या यह बुरी बात हुई? यह शङ्का ही क्यों पड़ी? क्योंकि ईश्वर के तुल्य कभी कोई नहीं हो सकता। परन्तु **इस लेख से यह भी सिद्ध होता[५] है कि वह ईश्वर नहीं था किन्तु एक मनुष्यविशेष था। 'बाइबल' में जहाँ कहीं ईश्वर की बात आती है वहां मनुष्य के तुल्य ही लिखी आती है।**

अब देखो, **आदम** के ज्ञान की बढ़ती में ईश्वर कितना दुःखी हुआ और फिर '**अमर-वृक्ष**' के फल खाने में कितनी ईर्ष्या की! और प्रथम जब उसको बारी में रक्खा तब उसको भविष्य का ज्ञान नहीं था कि इसको पुनः निकालना पड़ेगा? इसलिये ईसाइयों[६] का ईश्वर सर्वज्ञ नहीं था। और चमकते खड्ग का पहरा रक्खा यह भी मनुष्य का काम है, ईश्वर का नहीं। हमको बड़ा आश्चर्य होता है कि ऐसे गुणवाले को ईसाई लोग ईश्वर क्यों मानते हैं, क्योंकि ये सब[७] बातें मनुष्य के स्वभाव में घट सकती हैं, ईश्वर में नहीं[८]॥८॥

९. और कितने दिनों के पीछे यों हुआ कि काइन[९] भूमि के फलों में से परमेश्वर के लिये भेंट लाया॥ और हाबिल[१०] भी अपने [भेड़-बकरियों के][११] झुण्ड में से पहलौठी और मोटी-मोटी[१२]

१. Garden of Eden (अदन का बाग) वह बाग जहाँ आदम-हव्वा को ईश्वर ने उत्पन्न किया था, अर्थात् उद्यान।

२. Cherubim=करूब समुदाय।

३. **इंग्लिश वर्तनी देने का कारण**—बाइबल में आये नामों और शब्दों की इंग्लिश वर्तनी देने का कारण यह है कि इनकी वर्तनी और उच्चारण में दिन-रात का अन्तर है। प्राचीन अनुवादों और नये हिन्दी अनुवादों की वर्तनी में भी अन्तर आ गया है। इस प्रकार हिन्दी नाम से उनको बाइबल में ढूंढना कठिन पड़ता है। अंग्रेजी वर्तनी उपलब्ध होने पर, पाठकों को बाइबल से मिलान करने या अन्य कुछ जानकारी प्राप्त करने में असुविधा नहीं होगी।

४. **त्रुटित आवश्यक पद**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में कर्त्ता-पद "**आदम**" त्रुटित है। इसके बिना यह स्पष्ट नहीं होता कि तुल्य कौन हुआ, अतः वाक्य की पूर्णता के लिए कोष्ठकान्तर्गत पद ग्राह्य है।

५. **अपपाठ**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में यहां "**हो सकता है**" सम्भावनार्थक प्रयोग पूर्वापर भाषा से मेल नहीं खाता। यहां अन्य स्थलों के समान "**होता है**" निश्चयात्मक क्रिया उपयुक्त है।

६. **मुद्रणलिपिकरकृत अपवर्तनी**—मुद्रणह०, द्विप्र० में "**ईसायियों**" अपवर्तनी है। अन्य सभी सं० में संशोधित है।

७-८. **मुद्रणलिपिकर के प्रमाद से त्रुटित पाठ**—"**हमको बड़ा......ईश्वर में नहीं**" तक पाठ मुद्रण-लिपिकर के प्रमाद से त्रुटित रह गया है। यह पाठ मूलहस्त० व मूलप्रति सं० में विद्यमान है, वेस, जग, भद, युमी, विस, जस, उदयपुर सं० में यह पाठ त्रुटित है। इस वाक्य में '**सब**' विशेषण "**मनुष्य**" से पूर्व लिखा मिलता है, यह "**बातें**" पद से पूर्व होना चाहिए।

९,१३. **अव्यवस्थित-अशुद्ध वर्तनी—Cain (कैन)** बाइबल के वर्तमान अनुवादों में '**काइन**' के स्थान पर '**कैन**' हिन्दी वर्तनी मिलती है। द्विप्र० में एक ही आयत में क्रमशः "**काइन**" और "**काईन**" दो अव्यवस्थित अपवर्तनियां हैं। अन्य सभी में संशोधित है किन्तु उदयपुर सं० और मूलसं० ने पांच नयी गलतियां इस प्रकार कर दीं कि सबमें 'का' के नीचे नुक्ता लगा दिया जिससे अर्थ गलत हो गया।

लाया और परमेश्वर ने हाबिल का और उसकी भेंट का आदर किया। ४। परन्तु काइन का और उसकी भेंट का आदर न किया, इसलिये काइन अति कुपित हुआ और अपना मुंह फुलाया। ५। तब परमेश्वर ने काइन[१३] से कहा कि ''तू क्यों क्रुद्ध है? और तेरा मुंह क्यों फूल गया?''। ६।

तौरेत, [उत्पत्ति], पर्व ४। आ० ३।४।५।६॥

समीक्षक—यदि ईश्वर मांसाहारी न होता तो भेड़ की भेंट और हाबिल का सत्कार, और काइन तथा उसकी भेंट का तिरस्कार क्यों करता? और ऐसा झगड़ा लगाने और हाबिल के मत्यु का कारण भी ईश्वर ही हुआ। और जैसी[१] आपस में मनुष्य लोग एक दूसरे से बातें करते हैं, वैसी ही ईसाइयों के ईश्वर की बातें हैं। बगीचे में आना-जाना, उसका बनाना भी मनुष्यों का कर्म है। इससे विदित होता है कि यह 'बाइबल' मनुष्यों की बनाई है, ईश्वर की नहीं॥ ९॥

१०.[२] तब परमेश्वर ने काइन से कहा—''तेरा भाई हाबिल कहाँ है?'' और वह बोला, ''मैं नहीं जानता, क्या मैं अपने भाई का रखवाला हूँ?''। ९। तब उसने कहा—''तूने क्या किया?'' तेरे भाई के लोहू का शब्द भूमि से मुझे पुकारता है। १०। .....और अब तू पृथिवी से शापित[३] है....। ११।

तौरेत, [उत्पत्ति], पर्व ४। आ० ९।१०।११॥

---

१०. Abel (हाबिल) की अव्यवस्थित वर्तनी—दोनों हस्त० और तीनों सं० में इस आयत में और इसकी समीक्षा में चार और अगली आयत में दो बार '**हाबिल**' नाम का प्रयोग हुआ। अयोग्य लिपिकरों ने साथ के दो अनुच्छेदों में तीन बार '**हाबिल**', तो तीन बार '**हाबील**' लिखा है। एक ही स्थान पर यह अव्यवस्था हास्यास्पद है। इसकी शुद्ध वर्तनी ''**हाबिल**'' ग्राह्य है। बाइबल में यही स्वीकृत है। इससे यह भी ज्ञात होता है कि आदि सम्पादक-संशोधक **ज्वालादत्त शर्मा** और **भीमसेन शर्मा** कितने लापरवाह थे जो अपने कर्त्तव्य का गम्भीरता से पालन नहीं करते थे। क्या उनकी आँखों पर पट्टी बंधी थी जो साथ-साथ की दो आयतों (९-१०) में छह बार प्रयुक्त एक ही नाम की वर्तनी में भिन्नता दिखाई नहीं दी। ऐसे अयोग्य लोगों से शुद्ध भाषा लिखने की और शुद्ध-सम्पादन की आशा कैसे की जा सकती है? हमारे विद्वान् सम्पादकों पर भी खेद है कि उन्होंने इतने वर्षों तक इस अशुद्ध और हास्यास्पद अव्यवस्था का सुधार नहीं किया। वर्तनी की यही अव्यवस्था उदयपुर सं० में है। कथित 'दश सम्पादकों' ने भी इस पर ध्यान नहीं दिया। क्या यह सम्पादकीय प्रमाद नहीं है? और क्या इसका नाम '**मानकता**' है?

११. त्रुटित आवश्यक पाठ—दोनों हस्त० और तीनों सं० में ''**भेड़ बकरियों**'' पाठ त्रुटित है। बाइबल के मूलपाठ में है। जो ग्राह्य है। पूर्ण अर्थ प्रकट करने के लिए, यह पूर्व आयत की अनुवृत्ति से ग्राह्य पाठ है। मूलसं० में बृहत् कोष्ठक में दिया है।

१२. अपपरिवर्धन—दोनों हस्त० और तीनों सं० में यहां ''**मोटी-मोटी लाया**'' पाठ है। द्वि०सं० के अन्य कुछ संशोधकों **स्वामी वेदानन्द जी, पं० सिद्धान्ती जी, पं० मीमांसक जी, स्वामी विद्यानन्द जी, स्वामी जगदीश्वरानन्द जी** और **उदयपुर सं०** ने यहां ''**भेड़**'' पद बढ़ाया है। यह संगत नहीं है। बाइबल में आयत दो में 'शीप' (Sheep) पद है जिसका अर्थ 'भेड़' होता है किन्तु बाइबल में परम्परा और महावरे के रूप में इसका अर्थ ''**भेड़-बकरियों**'' दिया गया है। उसके अनुसार इस आयतखण्ड में या तो दोनों स्थलों पर ''**भेड़-बकरियां**'' प्रयोग होना चाहिए अथवा ''**मोटी-मोटी लाया**'' पाठ ही पर्याप्त है, जिसका पूर्व आयत की अनुवृत्ति से पाठ स्पष्ट हो जाता है। मूल बाइबल में यहां इसका वाचक कोई पद नहीं है और न '**भेड़**' का वाचक है। अत: ''**भेड़**'' पाठ अनावश्यक एवं अपूर्ण परिवर्धन है।

१. **अपप्रयोग**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में यहां ''**जैसे**'' अप पद है। वाक्य में आगे उक्त ''**वैसी**'' विशेषण के सम्बन्ध से यहां ''**जैसी**'' विशेषण अपेक्षित है, उदाहरणार्थक ''**जैसे**'' पद नहीं।

२. **मुद्रणलिपिकर के प्रमाद से संख्या की भूल**—मुद्रणप्रति बनाते समय लिपिकर प्रमादवश इस आयतखण्ड पर १० संख्या लिखना भूलकर ११ लिख गया। यही अशुद्ध संख्या द्विप्र० में छपी है। शोधकों की मक्कारी देखिए कि उन्हें अशुद्ध क्रमसंख्या भी दिखाई नहीं पड़ी। सभी सं० ने इसको शुद्ध कर लिया है। कुलयोग में अन्तर इस कारण नहीं आया कि आगे संख्या ४८ दो बार डाली हुई थी। वहां तक अशुद्ध संख्या चलती रही। उसको शुद्ध कर देने से क्रम संख्या शुद्ध हो गई।

३. अव्यवस्थित एवं भ्रष्ट वर्तनी 'शाप' की—दोनों हस्त० और तीनों सं० में '**शाप**' पद की वर्तनी अव्यवस्थित मिलती है—

१. **शाप** (मूलसं०, पृ० ३३०, ३३५, ३९६; द्वि०सं०, पृ० १९०, १९२, २२७, ३३५, २४६)।

समीक्षक—क्या ईश्वर काइन से पूछे विना हाबिल का हाल नहीं जानता था? और लोहू का शब्द भूमि से किसी को कभी पुकार सकता है? ये सब बातें अविद्वानों की हैं। इसीलिये यह पुस्तक न ईश्वर और न विद्वान् का बनाया हो सकता है॥ १०॥

११. और हनूक[१] मतूसिलह[२] की उत्पत्ति के पीछे तीन-सौ वर्ष लों ईश्वर के साथ-साथ चलता था....। २२। तौरेत, [उत्पत्ति], पर्व ५। आ० २२॥

समीक्षक—भला, ईसाइयों का ईश्वर मनुष्य न होता, तो हनूक के साथ-साथ क्यों चलता? इससे जो वेदोक्त निराकार, व्यापक[३] ईश्वर है, उसी को ईसाई लोग मानें, तो उनका कल्याण होवे॥ ११॥

१२. (और यों हुआ कि) जब आदमी पृथिवी पर बढ़ने लगे[४] और उनसे बेटियाँ उत्पन्न हुईं। १। तो ईश्वर के पुत्रों ने आदमी की पुत्रियों को देखा कि वे सुन्दरी हैं और उनमें से जिन्हें उन्होंने चाहा उन्हें ब्याहा। २। और उन दिनों में पृथिवी पर दानव थे और उसके पीछे भी जब ईश्वर के पुत्र आदमी की पुत्रियों से मिले तो उनसे बालक उत्पन्न हुए, जो बलवान् हुए, जो आगे से नामी थे। ४। और ईश्वर ने देखा कि आदमियों[५] की[६] दुष्टता पृथिवी पर बहुत हुई और उनके मन की चिन्ता और भावना प्रतिदिन केवल बुरी होती है। ५। तब आदमी को पृथिवी पर उत्पन्न करने से परमेश्वर

---

२. **श्राप** (मूलसं०, पृ० ३९६, ६३९; द्वि०सं०, पृ० ३५८ आदि)।

३. **स्राप-स्रापित** (मूलसं०, पृ० ५७५, ५७८, ५८०, ५९५, ६१६, ६१७; द्वि०सं०, पृ० ३२४, ३२६, ३४६)।

वर्तनी की यही अव्यवस्थित स्थिति **स्वामी वेदानन्द जी सरस्वती, पं० सिद्धान्ती जी, पं० भगवद्दत्त, पं० युधिष्ठिर मीमांसक, उदयपुर** के संस्करणों में है। मानकता और एकरूपता की दृष्टि से '**शाप**' तथा '**शापित**' ही शुद्ध तथा सर्वत्र ग्राह्य हैं। **ऋषिहस्तलेख**—इस पृष्ठ पर ''**इसीलिये.......सकता है**'', ''**जो वेदोक्त.......होवे**'' पाठ ऋषि-लिखित है।

१. Henoch. (हनोक) २. Mathusala. (मतूसेलह)

३. **मुद्रणलिपिकर के प्रमाद से त्रुटित पद**—मुद्रणह० में मुद्रणलिपिकर के प्रमाद से ''**व्यापक**'' पद त्रुटित है। त्रुटित पाठ ही द्विप्र० में छपा है। बाद में प्रायः सभी ने ग्रहण कर लिया है किन्तु **स्वामी वेदानन्द, सिद्धान्ती जी सं०** में नहीं है। यह आश्चर्य है कि **पं० मीमांसक जी** ने टिप्पणी में दिया है। इस समीक्षा में सर्वाधिक महत्त्व ''**व्यापक**'' विशेषण का ही है।

४. **मुद्रणलिपिकर द्वारा त्रुटित वाक्य**—मूलह०, मूलसं०, द्वि०सं० में यह वाक्य है। यह मुद्रणलिपिकर के प्रमाद से मुद्रणप्रति और द्विप्र० में त्रुटित है। अनुवादक ने आयत की संगति लगाने के लिए ''**और यों हुआ कि**'' वाक्यांश का अध्याहार किया है तथा ''**जब आदमी पृथिवी पर बढ़ने लगे**'' पाठ बाइबल के मूलपाठ में है। बिना इस वाक्यांश के अग्रिम वाक्य की संगति ही नहीं लगती। **स्वामी वेदानन्द जी, सिद्धान्ती जी,** और **पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक** ने इस पूरे वाक्य को हटाया है जो अनुचित है। उदयपुर सं० ने इसको ग्रहण करके उचित किया है।

५. **अप-अनुवाद**—दोनों हस्त०, तीनों सं० में यहां ''**आदम की दुष्टता**'' अप-अनुवाद है। यह तत्कालीन किसी पादरी अनुवादक की भूल है। वर्तमान बाइबल के अनुसार यहाँ ''**आदमियों की दुष्टता**'' पाठ होना चाहिए। ध्यान दीजिए, पहली और पांचवीं पंक्ति में भी ''**आदमी**'' प्रयोग है। इस आयतखण्ड में सर्वत्र ''**आदम**'' के स्थान पर '**आदमी**' प्रयोग उपयुक्त है। देखिए, समीक्षा में इसके पर्याय के रूप में ''**मनुष्य**'' प्रयोग है। बाइबल के वर्णन क्रम और इतिहास पर दृष्टिपात करने से भी ज्ञात होता है कि यह घटना 'आदम' के समय की नहीं है अपितु आदम के देहावसान के पश्चात् ११वीं पीढ़ी में उत्पन्न '**नूह**' के समय की है। तब आदमियों की संख्या बढ़ गई थी। आदम-हव्वा तो अकेले उत्पन्न हुए थे। यह मूलतः वही घटना है जो **शतपथ ब्राह्मण** में वैवस्वत मनु के समय जलप्रलय की घटना आती है। यह परिवर्तित रूप में विश्व के आधे देशों के साहित्य में मिलती है। वैदिक **मनुः** (मनुह्) ही अपभ्रंश होकर अरबी में '**नूह**' नाम बना है। यह भाषा वैज्ञानिक सम्बन्ध यहूदियों-ईसाइयों को भारतीय मूल वंश और साहित्य से जोड़ता है। **पं० मीमांसक जी** ने यहां ''**आदमी**'' को अशुद्ध तथा ''**आदम**'' को शुद्ध पाठ माना है। यह असंगत पाठ है। '**आदम**' जब उस समय जीवित ही नहीं था तो उसकी दुष्टता कैसे बढ़ती?

६. **मुद्रणलिपिकर द्वारा त्रुटित पाठ**—मुद्रणप्रति में लिपिकर ने प्रमाद से ''**पुत्रियों से.......आदमियों की**'' पाठ त्रुटित छोड़ दिया। बाद में शोधक पं० भीमसेन ने किनारे पर लिखकर इसको पूर्ण किया है।

पछताया और उसे अति शोक हुआ। ६। तब परमेश्वर ने कहा कि आदमी को, जिसे मैंने उत्पन्न किया, आदमी से लेके पशुन लों और रेंगवैयों को और आकाश के पक्षियों को पृथिवी पर से नष्ट करूँगा क्योंकि[१] उन्हें बनाने से मैं पछताता हूँ। ७। तौरेत, [उत्पत्ति], पर्व ६। आ० १।२।४।५।६।७॥[२]

समीक्षक—ईसाइयों से पूछना चाहिये कि ईश्वर के बेटे कौन हैं? और ईश्वर की स्त्री, सास, ससुर, साला[३] और सम्बन्धी कौन हैं? क्योंकि अब तो आदमी की बेटियों के साथ विवाह होने से ईश्वर इनका सम्बन्धी हुआ, और जो उनसे उत्पन्न होते हैं, वे पुत्र और प्रपौत्र हुए। क्या ऐसी बात ईश्वर और ईश्वर के पुस्तक की हो सकती है? किन्तु यह सिद्ध होता है कि उन जंगली मनुष्यों ने यह पुस्तक बनाया है।

वह ईश्वर ही नहीं, क्योंकि जो सर्वज्ञ न हो, और न भविष्यत् की बात जाने; वह तो जीव है। क्या जब सृष्टि की थी तब 'आगे मनुष्य दुष्ट होंगे' ऐसा नहीं जानता था? और पछताना, अति-शोकादि होना, भूल से काम करके पीछे पश्चात्ताप करना आदि ईसाइयों के ईश्वर में घट सकता है, वेदोक्त ईश्वर में नहीं। और इससे यह भी सिद्ध होता है[४] कि **ईसाइयों का ईश्वर पूर्ण विद्वान्, योगी भी नहीं था, नहीं तो शान्ति और विज्ञान से अति-शोकादि से पृथक् हो सकता था।**

भला, पशु-पक्षी भी दुष्ट हो गये! यदि वह ईश्वर सर्वज्ञ होता तो ऐसा विषादी क्यों होता? इसलिये न वह ईश्वर और न यह ईश्वरकृत पुस्तक हो सकता है।[५] जैसे वेदोक्त परमेश्वर सब पाप, क्लेश, दुःख, शोकादि से रहित 'सच्चिदानन्दस्वरूप' है, उसको ईसाई लोग [पहले से] मानते, वा अब भी मानें, तो अपने मनुष्यजन्म को सफल कर सकें॥ १२॥

१३. ....उस नाव की लम्बाई तीन-सौ हाथ और चौड़ाई पचास हाथ और ऊँचाई तीस हाथ की होवे....। १५। ....तू नाव में जाना, तू और तेरे बेटे और तेरी पत्नी और तेरे बेटों की पत्नियाँ तेरे साथ। १८। और सारे शरीरों में से जीवते जन्तु[६] दो-दो अपने साथ नाव में लेना, जिससे वे तेरे साथ जीते रहें, वे नर और नारी होंवे। १९। पंछियों[७] में से उसके भाँति-भाँति के और ढोरों[८] में से उसके भाँति-भाँति के और पृथिवी के हर एक रेंगवैयों[९] में से भाँति-भाँति के, हर एक में से दो-दो तुझ पास आवें, जिसतें जीते रहें। २०। और तू अपने खाने को सब सामग्री अपने पास इकट्ठा कर। वह तुम्हारे

---

१. **ऋषिहस्तलेख**—मुद्रणप्रति में ''**आदमी से......क्योंकि**'' पाठ ऋषि-लिखित है। इसको मुद्रणलिपिकर ने छोड़ दिया था।

२. **अशुद्ध उद्धरण संख्या**—मूलप्रति सं०, स्वामी वेदानन्द सं० और पं० युधिष्ठिर मीमांसक सं० में इस आयत खण्ड की उद्धरण संख्या अशुद्ध है। मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं०, उदयपुर सं० में संशोधित है। वह संख्या है—'पर्व ६। आ० १।२।४।७॥' वेस में '३' भी अशुद्ध है।

३. **अपवर्तनी**—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र० में ''**शाला**'' अपवर्तनी है। सभी सं० ने इसको संशोधित कर लिया है। ग्रन्थ में अन्यत्र शुद्ध वर्तनी है द्र० पृ०......। हिन्दी में '**शाला**' घर का वाचक है, जैसे—पाठशाला, अतिथिशाला आदि।

४. **मुद्रणलिपिकर के प्रमाद से त्रुटित पाठ**—मूलह०, मूलसं० में यह पूर्ण पाठ है। प्रमादी मुद्रणलिपिकर यहां इस पाठ को छोड़ गया—''**वेदोक्त ईश्वर में नहीं। और इससे यह भी सिद्ध होता है**''। द्विप्र० में भी त्रुटित है। वेस, जग में त्रुटित है। भद, युमी ने कोष्ठक में ग्रहण किया है। द्वि०सं०, उदयपुर सं० ने मूल में ग्रहण करके पाठ पूर्ण कर लिया है।

५. **ऋषिहस्तलेख**—संशोधन के समय मुद्रणप्रति में ''**भला पशु.........हो सकता है**'' पाठ ऋषि द्वारा परिवर्धित है।

६-९. **अपप्रयोग**—दोनों सं० में क्रमशः ''**जीवता जन्तु**'', ''**पंछी**'' ''**ढोर**'', ''**रेंगवैये**'' अपप्रयोग हैं। प्रथम स्थान पर ''**जीवते जन्तु**'' बहुवचन तथा शेष सब में सप्तमी बहुवचनान्त प्रयोग अपेक्षित है।

और उनके लिये भोजन होगा। २१। सो ईश्वर की सारी आज्ञा के अनुसार नूह[१] ने किया। २२।
तौरेत, [उत्पत्ति], पर्व ६। आ० १५।१८।१९।२०।२१।२२॥[२]

समीक्षक—भला, कोई भी विद्वान् ऐसी विद्या से विरुद्ध असम्भव बात के वक्ता को ईश्वर मान सकता है? क्योंकि इतनी [कम][३] बड़ी, चौड़ी, ऊँची नाव में हाथी-हथिनी[४], ऊँट-ऊँटनी आदि करोड़ों जन्तु और उनके खाने-पीने की चीजें, वे सब और कुटुम्ब के भी [जन क्या][५] समा सकते हैं? इसलिये यह मनुष्यकृत पुस्तक है। जिसने यह लेख किया है, वह विद्वान् भी नहीं था॥ १३॥

१४. और नूह ने परमेश्वर के लिये एक वेदी बनाई और सारे पवित्र पशु और हर एक पवित्र पंछियों में से लिये, और होम की भेंट उस वेदी पर चढ़ाई। २०।[६] और परमेश्वर ने सुगंध सूंघा और परमेश्वर ने[७] अपने मन में कहा कि 'आदमी के लिये मैं पृथिवी को फिर कभी शाप[८] न दूंगा, इस कारण कि आदमी के मन की भावना उसकी लड़काई से बुरी है, और जिस रीति से मैंने सारे जीवधारियों को मारा, फिर कभी न मारूंगा। २१।' तौरेत, [उत्पत्ति], पर्व ८। आ० २०।२१॥

समीक्षक—वेदी के बनाने, होम करने के लेख से यही सिद्ध होता है कि ये बातें वेदों से 'बाइबल' में गई हैं।

क्या परमेश्वर के नाक भी है कि जिससे उसने[९] सुगन्ध सूंघा? क्या यह ईसाइयों का ईश्वर मनुष्यवत् अल्पज्ञ नहीं है कि कभी शाप[१०] देता है और कभी पछताता है? कभी कहता है शाप[११] न दूंगा। पहले दिया था और फिर भी देगा।[१२] प्रथम सबको मार डाला और अब कहता है कि कभी न मारूंगा।[१३] ये सब बातें लड़केपन की हैं, ईश्वर की नहीं, और न किसी विद्वान् की; क्योंकि **विद्वान् की**

१. **नूह** (Noah), वैदिक कालीन मनुः→मनुह्→नूह, नोवा, इस विकारपरम्परा से 'मनुः' शब्द का अरबी भाषा में अपभ्रंश '**नूह**' बाइबल-कुरान में है। शतपथ ब्राह्मण आदि में सप्तम मनु वैवस्वत-कालीन जलप्रलय की घटना का विस्तृत वर्णन मिलता है (शत० १.८.१.१; काठक संहिता ११.२)। यह घटना बाइबल, कुरान सहित विश्व की लगभग आधी भाषाओं के साहित्य में स्वल्पाधिक परिवर्तन के साथ मिलती है। इससे दो संकेत मिलते हैं—१. विश्व की जिन आधी जातियों या समुदायों के साहित्य में इस घटना के अवशेष मिलते हैं, कभी वे सब लोग एकत्र रहते थे। २. यह जलप्रलय इतना विनाशकारी था कि अपने मूल वंश और स्थान से बिछुड़ने के सहस्रों वर्षों बाद तक भी उन समुदायों में उस घटना की भयानक स्मृतियां परम्परा से प्रचलित रहीं।

२. **अशुद्ध उद्धरण संख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, भद में यहां १५-२२ आयतसंख्या अशुद्ध है।

३-५. **त्रुटित एवं अपप्रयोग**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में क्रमशः "**कम**" पद त्रुटित है, "**हथनी**" के स्थान पर "**हथिनी**" शुद्ध है। "**जन क्या**" त्रुटित है। **ऋषि-लेख**—"**ऐसी.......सकता है**" पाठ मूलह० में ऋषिलिखित है।

६. **होम की परम्परा**—होम की परम्परा वैदिक और भारतीय है, जो ईसाइयों को भारत-मूल से जोड़ती है। बाइबल से इसकी पुष्टि भी हो जाती है—"**सारी पृथिवी पर एक ही बोली और एक ही भाषा थी॥ उस समय लोग पूर्व की ओर से चलकर आये और शिनार देश में एक मैदान पाकर उसमें बस गये।**" (उत्पत्ति पर्व ११, आ० १-२)। यह 'पूर्व देश' प्राचीन और भारतीय क्षेत्र ही है। जब भारत में पौराणिककाल में, होम के नाम पर विकृत प्रथाएं चलीं और यज्ञों में बलि दी जाने लगी तब भी पाश्चात्य देशों का सम्बन्ध भारत से रहा है। होम बलि की विकृत प्रथा का वर्णन इस तथ्य की ओर संकेत करता है।

७. **मुद्रणलिपिकर द्वारा त्रुटित पाठ**—मुद्रणप्रति में "**सुगंध......परमेश्वर ने**" त्रुटित छोड़ा पाठ पं० भीमसेन ने पूर्ण किया है।

८,१०,११. **अपर्वतनी**—सभी सं० में तीनों स्थानों पर "**स्राप**" अपर्वतनी है। द्रष्टव्य है, पृ० ८५६ पर टिप्पणी।

९. **त्रुटित आवश्यक पद**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में '**उसने**' पद त्रुटित रह गया है। इसके बिना वाक्य पूर्ण नहीं बनता।

१२-१३. **ईश्वर द्वारा शाप और क्रूरतापूर्वक जन-विनाश**—बाइबल में आया है (आयतखण्ड संख्या १२) कि ईश्वर ने आदमियों की दुष्टता बढ़ने के कारण नूह और उसके परिजनों को छोड़कर जल-प्रलय के द्वारा सबका विनाश किया था। आगे आयतखण्ड संख्या ४१, ७२ में लिखा है कि ईश्वर ने रात के समय सारे बड़े लड़कों को घरों में ढूंढ-ढूंढकर मारा। आयत ५७ में लिखा है कि

भी बात और प्रतिज्ञा स्थिर होती है॥ १४॥

१५. और ईश्वर ने नूह को और उसके बेटों को आशीष दिया और उन्हें कहा कि....। १। ''हर एक जीता-चलता जन्तु तुम्हारे भोजन के लिये होगा, मैंने हरी तरकारी के समान सारी वस्तु[१] तुम्हें दीं[२]। ३। केवल मांस[३] उसके जीव अर्थात् उसके लोहू समेत मत खाना। ४।''

तौरेत, उत्पत्ति, पर्व ९। आ० १। ३। ४॥

समीक्षक—क्या एक को प्राणकष्ट देवाकर दूसरों को आनन्द कराने से ईसाइयों का ईश्वर दयाहीन नहीं है?[४] जो माता-पिता एक लड़के को मरवाकर दूसरे को खिलावें तो महापापी नहीं हों? इसी प्रकार यह बात है; क्योंकि ईश्वर के लिये सब प्राणी पुत्रवत् हैं। **ऐसा न होने से इनका ईश्वर कसाईवत् काम करता है और सब मनुष्यों को हिंसक भी इसी ने बनाया है[५]। इसलिये ईसाइयों का ईश्वर निर्दय होने से पापी क्यों नहीं?॥ १५॥**[६]

१६. और सारी पृथिवी पर एक ही बोली और एक ही भाषा थी। १।[७] फिर उन्होंने कहा कि आओ हम एक नगर और एक गुम्मट जिसकी चोटी स्वर्ग लों पहुँचे अपने लिये बनावें और अपना नाम करें, न हो कि हम सारी पृथिवी पर छिन्न-भिन्न हो जायें। ४। तब ईश्वर उस नगर और उस गुम्मट को जिसे आदम के सन्तान बनाते थे, देखने को उतरा। ५। तब परमेश्वर ने कहा कि 'देखो! ये लोग एक ही हैं और इन सबकी एक ही बोली है।' अब वे ऐसा-ऐसा कुछ करने लगे सो वे जिस पर मन

ईश्वर ने मिद्यानी समुदाय के सभी लड़कों और विवाहित स्त्रियों को मरवा दिया केवल कुंवारी कन्याओं को जीवित रखा। इतिहास में वर्णन है कि इस युद्ध में मूसा ने मिद्यानी समुदाय की ३२००० कुंवारी कन्याओं को लूटा था। आगे आयतखण्ड संख्या-६० में, इस्राएल पर ''**मरी डालकर**''=विनाश मचाकर सत्तर हजार मनुष्यों को मार डालने का वर्णन है। ग्रन्थकार का इसी प्रकार के भावी शापों के विषय में यह कथन है। यहूदियों-ईसाइयों के ईश्वर और पैगम्बर के ऐसे-ऐसे क्रूर कारनामे हैं।

१-२ अपप्रयोग—दोनों हस्त० और तीनों सं० में ''**वस्तु**'' के स्थान पर '**वस्तुएं**' और ''**दिईं**'' अपप्रयोग के स्थान पर भाषात्मक एकरूपता के लिए ''**दीं**'' प्रयोग अपेक्षित है।

३. **अपवर्तनी**—मूलप्रति सं० में ''**माँस**'' अपवर्तनी है। द्वि०सं० में संशोधित है। द्र० विस्तृत टिप्पणी आयतखण्ड १८, पृ० ८६३ पर।

४. **स्थानभ्रष्ट अपवाक्य**—दोनों सं० में ''**दयाहीन ईसाइयों का ईश्वर नहीं है**'' यह अपवाक्य है। '**दयाहीन**' विशेषण अस्थान में होने से अप-अर्थ प्रकट कर रहा है कि '**ईसाई दयाहीन हैं।**' जबकि ग्रन्थकार उनके ईश्वर को '**दयाहीन**' कहना चाहते हैं। यही अपवाक्य वेस, जग, भद, युमी, विस, उदयपुर सं० आदि में है।

५. **अपवाक्य**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में ''**सब मनुष्यों को हिंसक भी इसी ने बनाये हैं**'' यह व्याकरणात्मक अपवाक्य है। यही अपवाक्य उदयपुर सं० तथा अन्य सं० में भी है।

ऋषि-लेख—मूलहस्त० में ''**क्या एक......क्यों नहीं**'' पाठ ऋषि-लेख में परिवर्धित है।

६. **रामायण और बाइबल में समान इतिहास, सृष्टि के आदि में एकभाषा**—मैक्समूलर आदि यूरोपियन लेखक भी इस तथ्य को स्वीकार करते हैं कि भारतीयों और यूरोपियनों के मूल वंशज एक हैं और कभी वे एक स्थान पर एक परिवार के रूप में रहते थे तथा उनकी एक ही भाषा थी। वह भाषा वैदिक संस्कृत ही थी, क्योंकि वही सबसे प्राचीन भाषा है और विश्व की अधिकांश भाषाएँ उसी परम्परा से निकलकर प्रचलित हुई हैं। यही कारण है कि उन विश्व-भाषाओं में वैदिक संस्कृत के अनेक शब्दों के विकृतरूप में पाये जाते हैं। वाल्मीकीय रामायण में उक्त मत बाइबल की रचना से पूर्व ही व्यक्त किया गया मिलता है—

एकवर्णाः समभाषा एकरूपाश्च सर्वशः।
तासां नास्ति विशेषो हि दर्शने लक्षणेऽपि वा॥ —उत्तर० ३०। २९। २०

अर्थात्—'आदिकाल में एक ही वर्ण था, सब एक भाषा बोलते थे, एक वेश था। उनके देखने में अथवा शारीरिक लक्षणों में कोई अन्तर नहीं था।' बाइबल की उक्त आयत में यही विचार यथावत् हैं। इस आयत में वैदिक इतिहास की परम्परा सुरक्षित है।

लगावेंगे उससे अलग न किये जायेंगे। ६। आओ, हम उतरें और[1] वहाँ उनकी भाषा को गड़बड़ावें, जिससे एक-दूसरे की बोली न समझें। ७। तब परमेश्वर ने उन्हें वहाँ से सारी पृथिवी पर छिन्न-भिन्न किया और वे उस नगर के बनाने से अलग रहे। ८।

तौरेत, [उत्पत्ति], पर्व ११। आ० १।४।५।६।७।८॥

समीक्षक—जब सारी पृथिवी पर एक भाषा और बोली होगी, उस समय सब मनुष्यों को परस्पर अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ होगा। परन्तु क्या किया जाय, ईसाइयों के ईर्ष्यक ईश्वर ने सबकी भाषा गड़बड़ाके यह सबका सत्यानाश किया!! उसने यह बड़ा अपराध किया। क्या यह शैतान के काम से भी बुरा काम नहीं है? और इससे यह भी विदित होता है कि ईसाइयों का ईश्वर '**सनाई पहाड़**'[2] आदि पर रहता था और जीवों की उन्नति भी नहीं चाहता था। यह विना एक अविद्वान् के ईश्वर की बात [क्योंकर हो सकती है?][3] और यह पुस्तक ईश्वरोक्त क्योंकर हो सकता है?॥ १६॥

१७. ....तब उसने अपनी पत्नी सारै[4] से कहा कि देख मैं जानता हूँ कि तू देखने में सुन्दर स्त्री है। ११। इसलिये यों होगा कि जब मिश्री[5] तुझे देखेंगे[6] तब वे कहेंगे कि यह उसकी पत्नी है और

---

१. **उचित परिवर्धन**—मूलप्रति सं० में ''**और**'' योजक पद त्रुटित है। द्वि० सं० में है, जो ग्राह्य है।

२. **सनाई पहाड़**—'**सियोन**' पर्वत का ही एक उच्चारण '**सनाई**' प्रचलित है। विस्तृत टि० द्र० पृ० ८४९ पर।

३. **त्रुटित आवश्यक पाठ**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में इस वाक्य के साथ क्रिया त्रुटित है। अत: बृहत् कोष्ठकान्तर्गत पाठ आवश्यक होने से ग्राह्य है।

४. **सारै (Sarai)** यह 'अब्राम', जिसका कि नाम बदलकर बाद में 'इब्राहीम' रखा गया, की पत्नी थी। परमेश्वर के आदेशानुसार इसका भी नाम बदलकर बाद में Sarah (सर: या सारा) कर दिया गया। (उत्पत्ति १७.१५)। बाइबल में इसको कई वंशों की 'मूलमाता' कहा है और इब्राहीम को मूलपिता।

५. **मिश्र देश के नाम की अव्यवस्थित वर्तनी और स्थापना का इतिहास**—ग्रन्थ में इस देश-नाम की दोनों हस्त० और तीनों सं० में दो प्रकार की वर्तनियां मिलती हैं—

१. मिश्र/मिश्री (मूलसं० २३६, ३२७, ६८१; द्वि०सं०, पृ० ३२७, ३८०)

२. मिस्र/मिस्री (मूलसं०, पृ० ५८२, ५९१, ५९३, ५९४, ६०१, ६०२; द्वि०सं०, पृ० ३३३, ३३४, ३३८, ३३९)।

उपर्युक्त आयत-अनुवाद में उदयपुर सं०, मूलप्रति सं० में ''**मिस्री**'' वर्तनी है। द्विप्र०, द्वि०सं० में संशोधित कर '**मिश्री**' बनाई गई है। भारतीय ऐतिहासिक परम्परा, धारणा और प्रमाणों के अनुसार यह स्थापित मत है कि मिश्र देश सूर्यवंशी आर्यजनों द्वारा बसाया गया था जो अपना पूर्वज 'मनु' को मानते थे। यही कारण है कि मिश्र के पिरामिडों में सर्वत्र सूर्यवंश के प्रतीक के रूप में सूर्य का चिह्न उत्कीर्ण मिलता है। कालक्रमानुसार ये यहूदी बन गये तब भी इनके परमेश्वर का नाम वैदिक नाम ''**यह्वः**'' का विकृत शब्द '**यहोवा**' रहा। इन आधारों पर तथा आगे दिये गये किन्तु कुछ अन्य प्रमाणों से यह मत स्थापित है कि इस देश का मूल नाम संस्कृत का '**मिश्र**' था उससे विकृत होकर '**मिस्र**' प्रचलित हुआ, जो एक सामान्य परिवर्तन है। महर्षि के काल में इन्हीं धारणाओं के आधार पर उसकी '**मिश्र**' वर्तनी अधिक चलती थी। इस कारण इनमें से सर्वत्र '**मिश्र-मिश्री**' वर्तनी ही ग्राह्य है। यद्यपि बाइबल के अनुवाद में कहीं '**मिस्र**' तो कहीं '**मिश्र**' का प्रयोग है किन्तु भाषात्मक एकरूपता और मानकता की दृष्टि से '**मिश्र**' ऋषि की धारणा के अनुसार-वर्तनी वांछनीय है॥ अन्य सभी सं० तथा उदयपुर सं० में भी उक्त अव्यवस्था है।

मिश्र प्राचीन आर्यों द्वारा अधिवसित है, इस विषयक यूरोपियन इतिहासकारों के अन्य प्रमाण ये हैं—

बाइबल और कुरान में वर्णित नूह के दो पुत्र थे—१. हेम (=सूर्य), २. सेम (=सोम=चन्द्र) इनमें हेम के वंशज मिश्र में रहते हैं जो स्वयं को सातवें वैवस्वत मनु की सूर्यवंशी सन्तानें मानते हैं—"The reader will not readily forget the city of the sun 'Helispolis' or 'Menes'. The first Egyptian king of the sun, the 'Menu Voivasowat' or patriarch of the solar race, nor his statue, that of the great 'Menoo', whose voice was said to statue the rising sun." (India in Greece, P.- 174)

मुझे मार डालेंगे, परन्तु तुझे जीती रखेंगे। १२। तू कहियो कि मैं उसकी बहिन हूँ, जिसतें तेरे कारण मेरा भला होय और मेरा प्राण तेरे हेतु से जीता रहे। १३। तौरेत, [उत्पत्ति], पर्व १२। आ० ११। १२। १३॥

समीक्षक—अब देखिये! जो अबिरहाम[१] 'बड़ा पैग़म्बर' ईसाई और मुसलमानों का बजता है और उसके कर्म मिथ्याभाषणादि बुरे हैं। और अपनी स्त्री का पातिव्रत्य धर्म भंग कराके व्यभिचारिणी बनाता है[२]। भला, जिनके ऐसे पैग़म्बर हों, उनको विद्या वा कल्याण का मार्ग कैसे मिल सके?॥ १७॥

१८. और ईश्वर ने इब्राहीम से कहा तू और तेरे पीछे तेरा वंश उनकी पीढ़ियों में मेरे नियम को माने। ९। तुम मेरा नियम जो मुझसे और तुमसे और तेरे पीछे तेरे वंश से है जिसे तुम मानोगे सो यह

अर्थात्—'पाठक सूर्य के नगर (स्थान) 'हेलिस्पोलिस्' अथवा 'मेनस्' को सुगमता से नहीं भुला पायेगा और न ही मिश्र के प्रथम सूर्यवंशी राजा महान् 'मनु वैवस्वत' जो कि सूर्यवंशियों का आदिपुरुष है, और जिस महान् पुरुष मनु की प्रतिमा उगते हुए सूर्य के रूप में उसके नाम को प्रतिबिम्बित कर रही है, उसको भी नहीं भुला पायेगा।'

६. **मुद्रणलिपिकर द्वारा अपप्रयोग**—मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि० सं० में "**देखें**" अपप्रयोग है। वाक्य में प्रयुक्त आगे की क्रियाओं के सम्बन्ध से "**देखेंगे**" क्रिया-प्रयोग उपयुक्त है।

१. **अब्राम और अबिरहाम (Abram,)**—बाइबल की इस आयत तक, अबिरहाम की पत्नी का नाम सारै (Sar'ai) और 'सारै' के पति का मूल नाम '**अबिरहाम**' या '**अब्राम**' था। बाइबल के अनुसार, परमेश्वर ने बाद में सत्रहवें पर्व की आयत १५ में 'सारै' का नाम '**सारा**' (Sarah) और 'अब्राम' का नाम बदलकर **इब्राहीम** (Abraham) कर दिया (उत्पत्ति १७.५)। 'अब्राम' का अर्थ है—**बड़ा पिता** अथवा **पितामह**। 'इब्राहीम' का अर्थ है—'**बहुतों का पिता**'। यह कई समुदायों का मूलपिता माना जाता है। इसका 'सारा' से उत्पन्न पुत्र '**इसहाक**' नियोगज पुत्र था (उत्पत्ति, पर्व १८ द्रष्टव्य)। उत्पत्ति, पर्व १७.५ से लेकर बाइबल में आगे सर्वत्र '**इब्राहीम**' नाम ही शुद्ध है, 'अब्राम' नहीं। अत: पाठ में आगे सर्वत्र 'इब्राहीम' किया गया है। **किसी भी सम्पादक ने इस ऐतिहासिक तथ्य पर ध्यान नहीं दिया।** सभी संस्करणों में इन नामों में अशुद्धि और अव्यवस्था है।

२. **मुद्रणकालीन पाठ-निष्कासन अनुचित**—यह वाक्य "**और अपनी स्त्री का पातिव्रत्य धर्म भंग कराके व्यभिचारिणी बनाता है**" मूलहस्त० तथा मुद्रणहस्त० में है, मुद्रण-काल में किसी शोधक ने गम्भीर चिन्तन किये बिना इसको हटा दिया। शायद, शोधक को यह भ्रान्ति हो गई कि यहां मूल आयत में केवल झूठ बोलने का ही कथन है, पत्नी का पातिव्रत्य धर्म भंग कराने की तो चर्चा ही नहीं है। मुद्रणकालीन शोधक ने न तो प्रसंग को गम्भीरता से समझा और न बाइबल को पढ़ा।

ऋषिकृत समीक्षा सही है, यह मूल प्रसंग को पूर्णत: पढ़ने पर तथा अब्राम के व्यवहार से सिद्ध हो जाता है। पाठक विचार करें कि अब्राम ने झूठ क्यों बोली? क्योंकि वह अपने प्राण बचाना चाहता था और उसको पता था कि झूठ बोलने का परिणाम यह निकलेगा कि उसके प्राण बच जायेंगे। उसको अपनी पत्नी के भविष्य का भी ज्ञान था कि '**बहन**' कहने से बादशाह फ़िरौन के लोग उसको अपनी पत्नी बना लेंगे और अब्राम को छोड़ देंगे अथवा दोनों को छोड़ देंगे। उस समय मिश्र में यह जंगली प्रथा थी कि दूसरी जाति के दम्पती कहीं मिल जाने पर पुरुष को मारकर स्त्री को अपने यहां रख लेते थे। यही काम मिश्र के राजा फ़िरौन ने किया था (आयत संख्या १५), और फिर यही काम बदला लेते समय मूसा ने किया था (आयतखण्ड संख्या ४१, ४२, ५७)। परिणाम में हुआ भी यही, झूठ बोलने के बाद अब्राम को छोड़ दिया और उसकी पत्नी को राजा फ़िरौन ने अपनी पत्नी के रूप में राजमहल में रख लिया। कुछ समय बाद जब राजा को सचाई का पता लगा तो उसने कुछ धन-सम्पत्ति साथ देकर अब्राम की पत्नी उसको लौटा दी (उत्पत्ति, पर्व १२, आ० १५-२०)। दूसरे के घर में पत्नी बनकर जाने से पातिव्रत्य धर्म भंग हुआ या नहीं? फ़िरौन के सैनिकों द्वारा सारै को पकड़कर ले जाये जाते समय भी दोनों पति-पत्नी में से किसी ने सच नहीं बोला। तब तो अब्राहम को पता चल गया था कि फ़िरौन के लोग इसको पत्नी के रूप में रखने के लिए ले जा रहे हैं। अत: ग्रन्थकार की समीक्षा उचित है और उक्त महर्षिप्रोक्त पाठ ग्राह्य है। भूल इसको न समझने वाले की है। यही अब्राम या अब्राहम ईसाइयों का एक बड़ा पैगम्बर माना जाता है।

सभी विद्वानों में अन्धपरम्परा—त्रुटित पाठ की यही अन्धपरम्परा **स्वामी वेदानन्द जी, पं० सिद्धान्ती जी, पं० भगवद्दत्त जी, पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक, स्वामी विद्यानन्द जी, स्वामी जगदीश्वरानन्द जी** आदि के संस्करणों में है। किसी विद्वान् ने इस प्रसंग पर न तो चिन्तन किया और न बाइबल को देखा। मुद्रणह०, मूलह०, मूलप्रति सं० में इस पाठ को ग्रहण किया हुआ है किन्तु उदयपुर सं० के कथित दश सम्पादकों ने उस पाठ पर गम्भीरता से चिन्तन न करके और बाइबल का अध्ययन न करके अन्धपरम्परा के अनुकरण में ही शोध की इतिश्री मान ली। यह अनुकरण संकेत देता है कि विद्वानों ने सम्पादन में श्रम नहीं किया।

है कि तुममें से हर एक पुरुष का खतनः (खतना) किया जाय। १०। और तुम अपने शरीर [के गुप्तांग] की खलड़ी काटो और वह मेरे और तुम्हारे मध्य में नियम का चिह्न होगा। ११। और तुम्हारी[१] पीढ़ियों में हर एक आठ दिन के पुरुष का खतनः किया जाय, जो घर में उत्पन्न होय अथवा जो किसी परदेशी से जो तेरे वंश का न हो, रूपे से मोल लिया जाय॥ १२। जो तेरे घर में उत्पन्न हुआ हो और जो तेरे रूपे से मोल लिया गया हो, अवश्य उसका खतनः किया जाय, और मेरा नियम तुम्हारे मांस[२] [=देह] में सर्वदा नियम के लिये होगा। १३। और जो अखतनः बालक जिसकी खलड़ी का खतनः न हुआ हो, सो प्राणी अपने लोगों से[३] कट जाय कि उसने मेरा नियम तोड़ा है। १४॥

तौरेत, [उत्पत्ति], पर्व १७। आ० ९।१०।११।१२।१३।१४॥

समीक्षक—अब देखिये ईश्वर की अन्यथा आज्ञा कि जो यह खतना[४] करना ईश्वर को इष्ट होता तो उस चमड़े को आदि-सृष्टि में ही नहीं बनाता। और जो यह बनाया गया है वह रक्षार्थ है, जैसा आँख के ऊपर का चमड़ा। क्योंकि वह गुप्तस्थान अति कोमल है, जो उस पर चमड़ा न हो तो एक कीड़ी[५] के भी काटने और थोड़ी-सी चोट लगने से बहुत-सा दुःख होवे; और लघुशंका के पश्चात् कुछ मूत्रांश कपड़ों में न लगे, इत्यादि बातों[६] के लिये इसका काटना बुरा है। और अब ईसाई लोग इस आज्ञा को क्यों नहीं करते? यह आज्ञा सदा के लिये है, इसके न करने से ईसा की गवाही जो कि 'व्यवस्था के पुस्तक का एक बिन्दु भी झूठा नहीं है,'[७] मिथ्या हो गई। इसका सोच-विचार ईसाई कुछ भी नहीं करते[८] ॥ १८॥

१९. तब उससे बात करने से रह गया और इब्राहीम[९] के पास से ईश्वर ऊपर जाता रहा। २२।

तौरेत, [उत्पत्ति], पर्व० १७। आ० २२॥

---

१. **त्रुटित पाठ**—मूलप्रति सं० में "**वह मेरे और**" पाठ त्रुटित है। द्विप्र० में गृहीत है। बृ० कोष्ठक का पाठ स्पष्टार्थ के लिए आवश्यक है। "**वह मेरे......तुम्हारी**" पाठ मूलह० में त्रुटित है। मुद्रणप्रति में पं० भीमसेन ने पूर्ण किया है।

२. **अप-अनुवाद एवं अपवर्तनी**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में यहां "**माँस**" अपवर्तनी है, 'मांस' शुद्ध वर्तनी है। यह अनुवाद भी अशुद्ध है। खतना करने में खाल काटी जाती है, मांस नहीं, अत: '**मांस में नियम होगा**' यह प्रयोग नहीं बन सकता। 'ख़तना' शरीर की निशानी है, मांस की नहीं। नये बाइबलों में इस अनुवाद को शुद्ध कर यहां 'देह' अनुवाद रख दिया है। पुराने अनुवाद में यह भूल 'Flesh' शब्द को देखकर हुई है। उस अनुवादक ने यह ध्यान नहीं दिया कि इसका अर्थ '**शरीर**' भी होता है। उदयपुर सं० तथा वेस, जग, भद, युमी, विस, जस में यही अप-अनुवाद है।

३. **अपपाठ**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में लिपिकर के प्रमाद से "**अपने लोग से कट जाय**" अपपाठ है। यहां बहुवचन अपेक्षित है। यह भी ध्यान देने योग्य है कि बाइबल के अन्य हिन्दी अनुवादों में इसके स्थान पर यह क्रूरतापूर्ण अनुवाद है—"**अपने लोगों में से नाश किया जाए**" अर्थात् उसका वध कर दिया जाये (द्रष्टव्य बाइबल समिति बैंगलोर, संस्करण, १९८३)। किसी प्राचीन पादरी अनुवादक ने हलके शब्दों में अनुवाद किया है। जो गलत है।

४. **खतनः (खतना)**—यहूदियों, ईसाइयों और मुसलमान बालकों और व्यक्तियों को धर्म में दीक्षित करने की वह रस्म जिसमें उनके लिंग के अग्रभाग को आच्छादित करने वाली चमड़ी को काट दिया जाता है। बाइबल में लिखा है कि आठ दिन के लड़के का खतना कर दिया जाये। यह परम्परा इब्राहीम से आरम्भ हुई थी (उत्पत्ति, पर्व० १७, आयत १०-१३)। खतना न कराने वालों के लिए आदेश है कि वे ईश्वर के भक्त नहीं हैं, अत: उनका नाश (=वध) कर दिया जाये (उत्पत्ति १७.१४)।

५. **कीड़ी**—यह गुजराती भाषा का प्रयोग है। ६. **त्रुटित पद**—मूलसं० में "**बातों**" पद त्रुटित है, द्वि०सं० में है। यह ग्राह्य है।

७. **ईसा का दावा**—ईसा का यह दावा आयतखण्ड ७० की आयत १८ में वर्णित है, वहां द्रष्टव्य है।

८. **ऋषिहस्तलेख**—मुद्रणप्रति में "**और अब......नहीं करते**" पाठ ऋषि द्वारा परिवर्धित है।

९. **इब्राहीम शुद्ध नाम है**—जैसा कि पृष्ठ ८६२ पर स्पष्ट किया जा चुका है कि ईश्वर ने अब्राम (Abram) का नाम बदल कर

समीक्षक—इससे यह सिद्ध होता है कि [ईसाइयों का] ईश्वर मनुष्य वा पक्षिवत् था जो ऊपर से नीचे और नीचे से ऊपर आता-जाता रहता था। यह कोई इन्द्रजाली पुरुषवत् विदित होता है॥ १९ ॥

२०. फिर ईश्वर उसे ममरे के बलूतों में दिखाई दिया और वह दिन को घाम के समय में अपने तम्बू के द्वार पर बैठा था। १। और उसने अपनी आँखें उठाईं और देखा कि तीन मनुष्य उसके पास खड़े हैं और उन्हें देखके वह तम्बू के द्वार पर से उनकी भेंट को दौड़ा और भूमि लों दंडवत् किया[१]। २। और कहा—''हे मेरे स्वामी! यदि मैंने अब आपकी दृष्टि में अनुग्रह पाया है तो मैं आपकी विनती करता हूँ कि अपने दास के पास से चले न जाइये। ३। इच्छा होय तो थोड़ा जल लाया जाय और अपने चरण धोइये और पेड़ तले विश्राम कीजिये। ४। और मैं एक कौर रोटी लाऊँ और आप तृप्त हूजिये। उसके पीछे आगे बढ़िये, क्योंकि आप इसीलिये अपने[२] दास के पास आये हैं।'' तब वे बोले कि ''जैसा तूने कहा तैसा कर। ५।'' और इब्राहीम तंबू में सरः[३] पास उतावली से गया और उसे कहा कि ''फुरती कर और तीन नपुआ[४] चोखा पिसान लेके गूंध और उसके फुलके पका। ६।'' और इब्राहीम झुंड की ओर दौड़ा गया और एक अच्छा कोमल बछड़ा लेके दास को दिया। उसने भी उसे सिद्ध करने में चटक किया। ७। और उसने मक्खन और दूध और वह बछड़ा जो पकाया था, लिया और उनके आगे धरा और आप उनके पास पेड़ तले खड़ा रहा और उन्होंने खाया। ८।

तौरेत, [उत्पत्ति], पर्व १८। आ० १।२।३।४।५।६।७।८॥

समीक्षक—अब देखिये सज्जन लोगो! **जिनका ईश्वर बछड़े का मांस खावे, उसके उपासक गाय, बछड़े आदि पशुओं को क्यों छोड़ें? जिसको कुछ दया नहीं, मांस के खाने में आतुर रहे, वह विना हिंसक मनुष्य के, 'ईश्वर' कभी हो सकता है?** और ईश्वर के साथ दो मनुष्य न जाने कौन थे? इससे विदित होता है कि जंगली मनुष्यों की एक मण्डली थी। उनका जो प्रधान मनुष्य था, उसका नाम **'बाइबल'** में **'ईश्वर'** रक्खा होगा। इन्हीं बातों से बुद्धिमान् लोग इनके पुस्तक को ईश्वरकृत नहीं मान सकते और न ऐसे को ईश्वर समझते हैं॥ २० ॥

२१. और परमेश्वर ने इब्राहीम से कहा कि ''सरः[५] क्यों यह कहके मुस्कुराई कि मैं जो बुढ़िया हूँ सचमुच बालक जनूंगी?। १३। क्या परमेश्वर के लिये कोई बात असाध्य है?''.....। १४।

तौरेत, [उत्पत्ति], पर्व १८। आ० १३।१४॥

समीक्षक—अब देखिये कि क्या-क्या ईसाइयों के ईश्वर की लीला है कि जो लड़कों वा स्त्रियों के समान चिड़ता और ताना मारता है!!॥ २१ ॥

'उत्पत्ति' पर्व० १७. आ० ५ में '**इब्राहीम**' (Abraham) रख दिया था, अतः यहां '**इब्राहीम**' नाम ही शुद्ध है। सभी सं० में अशुद्ध नाम प्रचलित है।

१. **अपवाक्य**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में ''**दण्डवत् किई**'' अपवाक्य है, ''**दण्डवत् किया**'' शुद्ध वाक्य है।

२. **त्रुटित पद**—द्वि० सं० में ''**अपने**'' पद त्रुटित है। मूलप्रति सं० में है, यह ग्राह्य है।

३,५. **Sarah (सारा)** बाइबल के अनुसार यहां 'सारै' का ही बदला हुआ 'सारा' या 'सरः' नाम शुद्ध है (उत्पत्ति, पर्व० १७, आ० १५)।

४. **नपुआ**—एक मनुष्य द्वारा खाये जा सकने जितने आटे का माप।

२२. तब परमेश्वर ने सदूम[१] और अमूरः[२] पर गंधक और आग परमेश्वर की ओर से स्वर्ग से वर्षाई। २४।[३] और उन नगरों को, सारे चौगानें[४] को और नगरों के सारे निवासियों को और जो कुछ भूमि पर उगता था, उलट दिया। २५। तौरेत, उत्पत्ति, पर्व १९। आ० २४। २५॥

समीक्षक—अब यह भी लीला 'बाइबल' के ईश्वर की देखिये कि जिसको बालक आदि पर भी कुछ दया न आई! क्या वे सब ही अपराधी थे, जो सबको भूमि उलटाके दबा मारा? यह न्याय, दया और विवेक से विरुद्ध है। **जिनका ईश्वर ऐसा काम करे, उसके[५] उपासक क्यों न करें?**॥ २२॥

२३. आओ, हम अपने पिता को दाख रस[६] पिलावें और हम उनके साथ शयन करें कि हम अपने पिता से वंश जुगावें। ३२। तब उन्होंने उस रात अपने पिता को दाखरस पिलाया और पहलौठी गई और अपने पिता के साथ शयन किया....। ३३। हम उसे आज रात भी दाखरस पिलावें, तू जाके उसके साथ शयन कर....। ३४। सो लूत[७] की दोनों बेटियाँ अपने पिता से गर्भिणी हुईं....। ३६।

तौरेत, उत्पत्ति, पर्व १९। आ० ३२। ३३। ३४। ३६॥

समीक्षक—देखिये! जब पिता-पुत्री भी जिस मद्यपान के नशे में कुकर्म से न बच सके, ऐसे दुष्ट मद्य को जो ईसाई आदि पीते हैं, उनकी बुराई का क्या पारावार है? इसलिये **सज्जन लोगों को मद्य के पीने का नाम भी न लेना चाहिये**॥ २३॥

२४. और अपने कहने के समान परमेश्वर ने सरः[८] से भेंट की और अपने वचन के समान परमेश्वर ने सरः के विषय में किया। १। और सरः गर्भिणी हुई....।[९] २।

तौरेत, उत्पति, पर्व २१। आ० १। २॥

---

१. Sodom (सदोम)   २. Gomorrah (अमोरा)

३. **स्वर्ग से आग बरसाना**—अर्थात् परमेश्वर ने अपनी ओर से आग बरसाई। मूलप्रति में '**वर्षाया**' अपक्रिया है। '**उलट दिया**' बाइबल के अनुवादकों का एक छद्म अनुवाद है। प्रायः सभी संस्करणों में '**नाश कर दिया**' सही अनुवाद होना चाहिए। आग बरसाने से सब कुछ उलटता नहीं है, नष्ट होता है।   ४. **चौगान**—मैदान।

५. **अपप्रयोग**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में यहां ''**उनके**'' बहुवचनान्त अपप्रयोग है, एकवचन चाहिए है। बहुवचन से '**ईश्वर के**' नहीं, जिनका ईश्वर है उन '**ईसाइयों के उपासक**' अर्थ प्रकट हो रहा है। सभी सं० तथा उदयपुर सं० में अपपाठ है।

६. **शराब ही सही अर्थ है**—बाइबल के अंग्रेजी अनुवाद में यहां Wine शब्द है जिसका अर्थ '**शराब**' होता है। '**शराब**' इस निन्दात्मक शब्द से बचने के लिए तत्कालीन पादरियों ने '**दाखरस**' अनुवाद किया हुआ है। कहीं '**दाखमधु**' अनुवाद है। अनुवाद में सभ्य शब्द डालने से आयत में वर्णित घृणित कार्य कभी 'सभ्य' नहीं कहा जा सकता। इनसे उत्पन्न वंशों के नाम इसके ज्वलन्त प्रमाण हैं। शराब के नशे में ही ऐसा घृणित कार्य हो सकता है, दाखरस पीने से नहीं। बड़ी बेटी से जो पुत्र उत्पन्न हुआ उसका नाम रखा '**मोआब**'। इसका अर्थ है—'पिता के वीर्य का अंश'। यह मोआब नामक जाति का मूलपुरुष माना गया है। छोटी पुत्री से उत्पन्न पुत्र का नाम '**बेनम्मी**' रखा गया। इस शब्द का अर्थ है—'अपने ही रक्तसम्बन्धी व्यक्ति से उत्पन्न'। यह अम्मोनवंशियों का मूलपुरुष है। इस घटना से बाइबल की अप संस्कृति-सभ्यता का अनुमान भलीभाँति लगाया जा सकता है। बाइबल में लड़कियों के पिता का नाम लूत (Lot) दिया है। ग्रन्थकार ने बार-बार इनको जंगली लिखा है, जो सुनने में कटु अवश्य है, किन्तु पिता-पुत्रियों के घृणिततम आचरण को देखकर कौन कह सकता है कि यह विशेषण अनुचित है?

७. **लूत का अन्यत्र वर्णन**—पैगम्बर माने गये इस **लूत** का वर्णन समु० १४ में कुरान की आयतखण्ड संख्या १४१ में द्रष्टव्य है। यहूदियों, ईसाइयों के साथ-साथ मुसलमान भी इसको अपना पैगम्बर मानते हैं।

८. **अन्य वर्तनी**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में यहां छः बार ''**सरः**'' वर्तनी है, यह ''**सारा**'' का ही अन्य उच्चारण है।

९. **'सरः' को पुत्रप्राप्ति**—गत आयतखण्ड २१ की आयत १४ में परमेश्वर नाम के व्यक्ति ने वसन्त ऋतु में सरः के पास आने के लिए कहा था। उसी का वर्णन यहां है कि वह परपुरुष आया और उससे सारा को पुत्रप्राप्ति हुई।

समीक्षक—अब विचारिये कि सर: से भेंट कर उसको गर्भवती किया[१], यह काम कैसे हुआ? क्या विना परमेश्वर और सर: के तीसरा कोई गर्भस्थापना का कारण दीखता है? ऐसा विदित होता है कि सर: परमेश्वर की कृपा से[२] गर्भवती हुई[३]॥ २४ ॥

२५. तब इब्राहीम ने बड़े तड़के उठके रोटी और एक पखाल[४] में जल लिया और हाजिर:[५] के कन्धे पर धर दिया और लड़के को भी उसे सौंपके उसे विदा किया....। १४। .....उसने उस लड़के को एक झाड़ी के तले डाल दिया। १५। .....और वह उसके सम्मुख बैठके चिल्ला-चिल्ला रोई। १६। तब ईश्वर ने उस बालक का शब्द सुना......। १७। तौरेत, उत्पत्ति, पर्व २१। आ० १४। १५। १६। १७॥

समीक्षक—अब देखिये ईसाइयों के ईश्वर की लीला कि प्रथम तो सर: का पक्षपात करके हाजिर: वहाँ से निकलवा दी[६], और चिल्ला-चिल्ला रोई हाजिर:, और शब्द सुना लड़के का, यह कैसी अद्भुत बात है? यह ऐसा हुआ होगा कि ईश्वर को भ्रम हुआ होगा कि यह बालक ही रोता है। भला, यह ईश्वर और ईश्वर के पुस्तक[७] की बात कभी हो सकती है, विना साधारण मनुष्य के वचन के? **इस पुस्तक में थोड़ी-सी सत्य बात के अतिरिक्त सब असार भरा है**॥ २५ ॥

२६. और इन बातों के पीछे यों हुआ कि ईश्वर ने इब्राहीम की परीक्षा की और उसे कहा—''हे इब्राहीम....। १। तू अपने बेटे को, अपने इकलौते इज़हाक[८] को जिसे तू प्यार करता है ले....उसे होम की भेंट के लिये चढ़ा। २।''

.....और अपने बेटे इज़हाक को बाँधके उस वेदी में लकड़ियों पर धरा। ९। और इब्राहीम ने छुरी लेके अपने बेटे को घात करने के लिये हाथ बढ़ाया। १०। तब परमेश्वर के दूत ने स्वर्ग पर से उसी को पुकारा कि ''हे इब्राहीम-इब्राहीम!....। ११।....अपना हाथ लड़के पर मत बढ़ा और उसे कुछ मत कर, क्योंकि अब मैं जानता हूं[९] कि तू ईश्वर से डरता है.''...। १२॥

तौरेत, उत्पत्ति, पर्व २२। आ० १। २। ९। १०। ११। १२॥

समीक्षक—अब स्पष्ट हो गया कि यह '**बाइबल**' का ईश्वर अल्पज्ञ है, सर्वज्ञ नहीं। और इब्राहीम

१. **अपवाक्य**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में ''**सर: से भेंट कर गर्भवती की**'' अपवाक्य है। उपर्युक्त पाठ शुद्ध है। यही अपवाक्य वेस, जग, भद, युमी, विस, उदयपुर सं० सहित अन्य सभी संस्करणों में है।

२-३. **सारा का नियोग**—महर्षि ने समीक्षा में व्यंग्य शैली में लिखा है कि ''**विदित होता है कि सारा परमेश्वर की कृपा से गर्भवती हुई।**'' ''कृपा से'' अर्थात् उसके सहवास से। किन्तु यह कथन तो निश्चयात्मक रूप से स्वयं बाइबल ने ही किया है कि परमेश्वर ने सारा को कहा था—''**नियत समय में अर्थात् वसन्त ऋतु में मैं तेरे पास फिर आऊँगा। और सारा के पुत्र उत्पन्न होगा**'' (उत्पत्ति, पर्व० १८। आ० १४)। स्पष्ट है कि सारा से उत्पन्न पुत्र '**इसहाक**' उसके पति का न होकर स्वयं को ईश्वर कहनेवाले किसी व्यक्ति का था। बाइबल में नियोग का अनिवार्य आदेश है, द्र०पृ० २०४ पर टिप्पणी।

४. **पखाल**=पीने का पानी रखने का पात्र।

५. **हाजिर:/हाजिरा (Hagar)**—यह अब्राम या इब्राहीम और सारा की दासी थी, जो मिश्र वंश की थी। इस शब्द की वर्तमान हिन्दी-अनुवादों में '**हाजिरा**' वर्तनी मिलती है। इसको भी '**इस्माएल**' नामक पुत्र हुआ जो इब्राहीम का नियोग से उत्पन्न पुत्र था। इससे भी कई वंश चले। उनका वर्णन आयतखण्ड संख्या २९ में है।

६. **अपपाठ**—दोनों हस्त० और सभी संस्करणों में यहां ''**हाजिरा को वहां से निकलवा दी**'' अपपाठ मिलता है।

७. **शैलीविरुद्ध परिवर्तन**—मूलह० में यहां ''**पुस्तक**'' पुंल्लिंग है, मुद्रणह० में स्त्रीलिंग बना दिया। **ऋषि-लेख**—मूलहस्त० में ''**विना......भरा है**'' पाठ ऋषि द्वारा परिवर्धित है।

८. Isaac. (इसहाक)।

९. **मुद्रणलिपिकर द्वारा त्रुटित पाठ**—मुद्रणप्रति में त्रुटित ''**उसे कुछ.......जानता हूं**'' पाठ को पं० भीमसेन ने पूर्ण किया है।

भी एक भोला मनुष्य था, नहीं तो ऐसी चेष्टा क्यों करता? **'बाइबल'** का ईश्वर सर्वज्ञ होता तो क्यों कराता[१] और उसकी भविष्यत्-श्रद्धा को भी सर्वज्ञता से जान लेता?[२] ॥ २६ ॥

२७. ....सो आप हमारी समाधिन में से चुनके एक में अपने मृतक को गाड़िये....जिसतें आप अपने मृतक को गाड़ें ....॥। ६ । तौरेत, उत्पत्ति, पर्व २३। आ० ६ ॥

समीक्षक—मुर्दों के गाड़ने से संसार की बड़ी हानि होती है, क्योंकि वह सड़के वायु को दुर्गन्धमय कर रोग फैला देता है।

प्रश्न—देखो, जिससे प्रीति हो उसको जलाना अच्छी बात नहीं। और गाड़ना [ऐसा है] जैसा कि उसको सुला देना है। इसलिये गाड़ना अच्छा है।

उत्तर—जो मृतक से प्रीति करते हो तो अपने घर में क्यों नहीं रखते? और गाड़ते भी क्यों हो? जिस जीवात्मा से प्रीति थी वह निकल गया, अब दुर्गन्धमय मिट्टी से क्या प्रीति? और जो प्रीति करते हो तो उसको पृथिवी में क्यों गाड़ते हो? क्योंकि किसी से कोई कहे कि 'तुझको भूमि में गाड़ देवें' तो वह सुनकर प्रसन्न कभी नहीं होता। उसके मुख, आँख, और शरीर पर धूल, पत्थर, ईंट, चूना डालना, छाती पर पत्थर रखना कौन-सा प्रीति का काम है?

और सन्दूक में डालके गाड़ने से बहुत दुर्गन्ध होकर पृथिवी से निकल, वायु को बिगाड़कर दारुण रोगोत्पत्ति करता है।

दूसरा, एक मुर्दे के लिये कम से कम ६ हाथ लम्बी और ४ हाथ चौड़ी भूमि चाहिये। इसी हिसाब से सौ, हजार वा लाख अथवा करोड़ों मनुष्यों के लिये कितनी भूमि व्यर्थ रुक जाती है! न वह खेत, न बग़ीचा और न वसने के काम की रहती है। इसलिये सबसे बुरा गाड़ना है।

उससे कुछ थोड़ा बुरा जल में डालना है, क्योंकि उसको जलजन्तु उसी समय चीर-फाड़के[३] खा लेते हैं परन्तु जो कुछ हाड़ वा मल जल में रहेगा वह सड़कर जगत् को दुःखदायक होगा।

उससे कुछ-एक थोड़ा बुरा जंगल में छोड़ना है, क्योंकि उसको मांसाहारी पशु-पक्षी लूंच खायेंगे, तथापि जो उसके हाड़, हाड़ की मज्जा और मल सड़कर जितना दुर्गन्ध करेगा, उतना जगत् का अनुपकार होगा।

और जो जलाना है वह सर्वोत्तम है, क्योंकि उसके सब पदार्थ अणु होकर वायु में उड़ जायेंगे।[४]

१-२. **मुद्रणलिपिकर द्वारा पुनरुक्तिपूर्ण पाठ-परिवर्धन**—मूलप्रति के इस समीक्षा-पाठ को द्वितीय सं० के मुद्रण प्रतिलिपिकर ने अनावश्यक रूप से परिवर्धित किया है। अन्त में यह पंक्ति जोड़ दी—''**इससे निश्चित होता है कि ईसाइयों का ईश्वर सर्वज्ञ नहीं**'' जबकि ऊपर की पंक्तियों में दो बार यह कथन आ चुका है। यह पुनरुक्तिदोष युक्त पाठ है। संख्यांक १ पर महत्त्वपूर्ण समीक्षा वाक्य छोड़ दिया कि—''**ईश्वर सर्वज्ञ होता तो क्यों कराता?**'' इससे महर्षि यह कहना चाहते हैं कि ईश्वर सर्वज्ञ होता और श्रद्धा को जानता तो बेटे की बलि लेने का घृणित कर्म आरम्भ ही क्यों करवाता। इससे बेटे को कितनी मानसिक पीड़ा से गुजरना पड़ा होगा। लिपिकरों की साधारण शैली और महर्षि की सारगर्भित शैली में यही विशेष अन्तर है।

३. **उचित संशोधन**—मूलह०, मूलप्रति सं० में '**चीर-फाड़ खा लेते हैं**' पाठ है। द्वि० सं० में ''**चीर-फाड़के**'' निरन्तर क्रिया पद है। द्वि० सं० का पाठ पूर्ण एवं ग्राह्य है।

४. **शरीर की अन्तिम क्रिया की प्रथाएं**—वे प्रथाएं इस प्रकार हैं—ईसाई और मुसलमान शव को गाड़ते हैं। कुछ अज्ञानी संन्यासी सम्प्रदाय मृत संन्यासी को जल में छोड़ देते हैं, जिसको उन्होंने भ्रामक नाम 'जल-समाधि' दे रखा है। पारसी लोग जंगल में बनाये गये गुम्बद पर शव को रख देते हैं जिसको पक्षी खा जाते हैं। आर्य-हिन्दू आदि अन्य सभी जन दाहकर्म करते हैं।

प्रश्न—क्या मुर्दे के धुएं से दुर्गन्ध नहीं होता ?[१]

उत्तर—हाँ, जो अविधि से जलावे तो थोड़ा-सा होता है, परन्तु गाड़ने आदि से बहुत कम होता है।

और जो विधिपूर्वक जैसा कि वेद में लिखा है—वेदी, मुर्दे के तीन हाथ गहिरी, साढ़े तीन हाथ चौड़ी, पांच हाथ लम्बी, तले में डेढ़ बीता अर्थात् चढ़ा- उतार खोदकर[२] शरीर के बराबर घी, उसमें एक सेर में रत्तीभर कस्तूरी, मासाभर केशर डाल, न्यून से न्यून आधा मन चन्दन लें, अधिक चाहें जितना लें। अगर, तगर, कपूर आदि और पलाश आदि की लकड़ियों को वेदी में जमा, उस पर मुर्दा रखके पुनः चारों ओर ऊपर वेदी के मुख से एक बीता तक, भरके, उस घी की आहुति[३] देकर जलाना लिखा है। इस प्रकार से दाह करें तो कुछ भी दुर्गन्ध न हो। **इसी का नाम अन्त्येष्टि, नरमेध, पुरुषमेध यज्ञ है।**

और जो दरिद्र हो तो वीस सेर से कम घी चिता में न डाले, चाहे वह भीख मांगने वा जातिवालों[४] के देने[५] अथवा राज्य से मिलने से प्राप्त हो, परन्तु उसी प्रकार दाह करे। और जो घृतादि किसी प्रकार न मिल सके तथापि गाड़ने[६] आदि से केवल लकड़ी से भी मृतक का जलाना उत्तम है, क्योंकि एक बिस्वाभर[७] भूमि में अथवा एक वेदी में लाखों-करोड़ों मृतक जल सकते हैं। भूमि भी गाड़ने के समान

---

१. **मुद्रणलिपिकर के प्रमाद से पाठान्तर**—मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं० में इस प्रश्नवाक्य के पाठ को इस प्रकार बदला है—''**जलाने से भी दुर्गन्ध होता है।**'' इस पाठभेद के होने में कारण-विशेष रहा है। प्रतिलिपि करते समय मुद्रण-लिपिकर उक्त वाक्य को लिखना छोड़ गया। ऋषि ने जब पढ़ा तो उन्होंने मूल को बिना देखे नया वाक्य बनाकर लिख दिया। इस प्रकार यह पाठान्तर हो गया। मूलप्रति सं० का महर्षिप्रोक्त वाक्य अधिक स्पष्टार्थक है। मुद्रणप्रति का पाठ विवशता में निर्मित है।

२. **शव की वेदी के परिमाण में विरोधाभास का उत्तर**—वेदी-रचना के परिमाण के सम्बन्ध में लेखक के वर्णनों में परिभाषा की कुछ भिन्नता पाई जाती है। इसी ग्रन्थ में एक ही पृष्ठ पूर्व पृ० ८६७ पर यह परिमाण है—''**एक मुर्दे के लिये कम से कम ६ हाथ लम्बी और ४ हाथ चौड़ी भूमि चाहिये।**'' कुछ लोग इसमें विरोधाभास देखते हैं किन्तु वह है नहीं।

'संस्कार विधि' में यह परिमाण है—''**उस वेदी का परिमाण पुरुष खड़ा होकर ऊपर को हाथ उठावे, उतनी लम्बी, और दोनों हाथों को लम्बे उत्तर-दक्षिण पार्श्व में करने से जितना परिमाण हो अर्थात् मृतक के साढ़े तीन हाथ अथवा तीन हाथ ऊपर चौड़ी होवे, और छाती के बराबर गहरी होवे।**'' (अन्त्येष्टि प्रकरण)

यहां इनसे कुछ भिन्न परिमाण है। इन भिन्नताओं में कुछ तो तालमेल हो जाता है, जैसे- हाथ उठाकर खड़े प्रत्येक पुरुष का अपना परिमाण पांच हाथ के लगभग होता है, हाथ फैलाने का परिमाण साढ़े तीन हाथ के लगभग और छाती के बराबर परिमाण लगभग तीन हाथ होता है।

तले में डेढ़ बीता चढ़ा-उतार का अभिप्राय यह है कि शव का सिर एक से डेढ़ बीता पैरों से ऊंचा होना चाहिए। अतः सत्यार्थप्रकाश और संस्कारविधि के परिमाण में भिन्नता नहीं है।

वस्तुतः, इसका समाधान यह है कि पृष्ठ ८६७ पर वर्णित परिमाण वह है जो ईसाई-मुसलमानों की लकड़ी की पेटी सहित कब्र बनाने में लगता है और यहां शवदाह के लिए वेदी का परिमाण है। ''**वेदी में......भरके**'' मूलह० में ऋषिलेख है।

३. **अयोग्य लिपिकर-शोधक**—मूल और मुद्रणलिपिकरों ने दोनों हस्तलेखों में ''**आहुती**'' वर्तनी लिखी है। मक्कार शोधकों ने भी ध्यान नहीं दिया, द्विप्र० में अशुद्ध ही छपी है। आगे सभी द्वारा संशोधित है। शुद्ध वर्तनी पृ० ९० पर द्रष्टव्य है।

४. **जाति से अभिप्राय**—ऋषि दयानन्द जन्मना जाति को नहीं मानते। फिर भी उनके ग्रन्थों में जहां 'जाति' शब्द का प्रयोग मिलता है। उसका अर्थ होता है- '**समुदाय**' अथवा '**वर्ण**'। इन अर्थों में परम्परागत रूप से 'जाति' शब्द का प्रयोग मिलता है, जैसे आज भी कहते हैं—'**हिन्दू जाति**', '**अंग्रेज जाति**' आदि। द्रष्टव्य पृ० ७०० पर टिप्पणी।

५. **अपप्रयोग**—यहां मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं० आदि में ''**जातिवाले के देने**'' अपप्रयोग है।

६. **अव्यवस्थित वर्तनी**—मूलह०, मूलप्रति सं०, मुद्रणह० और द्विप्र० में यहाँ ''**गाढ़ने**'' प्रयोग है, जो अपप्रयोग है। **संशोधन-पुष्टि**—यहीं पर अनेक अन्य वाक्यों में ''**गाड़ना**'' प्रयोग है। (पृ० ८६७, पंक्ति ५, ७, ११ आदि) हिन्दी व्याकरण में कोई '**गाढ़**' धातु 'गाड़ने' अर्थ में नहीं है। द्वि०सं० में यह संशोधित है। ग्रन्थ में अन्यत्र भी अनेक बार ''**गाड़ना**'' प्रयोग है। यही ग्राह्य है।

७. **अपवर्तनी**—**बिस्वाभर**=एक बिस्वा क्षेत्रफल। एक बीघा भूमि का बीसवां भाग 'एक बिस्वा' क्षेत्र होता है। लगभग १५० गज

अधिक नहीं बिगड़ती। और क़ब्र के देखने से भय भी होता है। इससे गाड़ना आदि सर्वथा निषिद्ध है॥ २७॥

२८. ....परमेश्वर मेरे स्वामी इब्राहीम का ईश्वर धन्य है जिसने मेरे स्वामी को अपनी दया और अपनी सच्चाई विना न छोड़ा, मार्ग में परमेश्वर ने मेरे स्वामी के भाइयों के घर की ओर मेरी अगुआई की। २७। तौरेत, उत्पत्ति, पर्व २४। आ० २७॥

समीक्षक—क्या वह इब्राहीम का ही ईश्वर था? और जैसे आजकल बेगारी वा अगवे लोग अगुआई अर्थात् आगे-आगे चलकर मार्ग दिखलाते हैं, वैसा ईश्वर ने भी किया तो आजकल मार्ग क्यों नहीं दिखलाता? और मनुष्यों से बातें क्यों नहीं करता? इसलिये ऐसी बातें ईश्वर वा ईश्वर के पुस्तक की कभी नहीं हो सकतीं, किन्तु जंगली मनुष्य की हैं॥ २८॥

२९. इश्माएल[१] के बेटों के नाम ये हैं—इश्माएल का पहिलौठा नबायोत[२] और केदार[३] और अदबेल[४] और मिबसाम[५]। १३। और मिश्मा[६] और दूमः[७] और मस्सा[८]। १४। हदर[९] और तेमा[१०], यतूर[११], नफीस[१२] और किदमः[१३]। १५। तौरेत, उत्पत्ति, पर्व २५ आ० १३। १४। १५॥

समीक्षक—यह इश्माएल, इब्राहीम से उसकी हाजिरः दासी का पुत्र हुआ था[१४]॥ २९॥

३०. ....मैं तेरे पिता की रुचि के समान स्वादित भोजन बनाऊंगी। ९। और तू अपने पिता के पास ले जाइयो जिसतें वह खाय और अपने मरने से आगे तुझे आशीष देवे। १०। और रिबकः[१५] ने घर में से अपने जेठे बेटे एसाव[१६] का अच्छा पहरावा लिया और अपने छोटे बेटे याक़ूब[१७] को पहनाया[१८]। १५। और बकरी के मेम्नों का चमड़ा उसके हाथों और गले की चिकनाई पर लपेटा। १६।

भूमि। यह हिन्दी 'बीसवां' का अपभ्रंश है। तीनों संस्करणों में अशुद्ध वर्तनी '**विश्वा**' हैं। सभी सं० में अशुद्ध है।

१. Ishmael (इश्माएल)। इसके पिता का नाम इब्राहीम था। इब्राहीम की पत्नी का नाम सारा था। इब्राहीम की दासी थी हाजिरः 'हाजिरा'। हाजिरा दासी से 'इश्माएल' का जन्म हुआ था। ये सभी १२ पुत्र उसी दासी से उत्पन्न हुए पुत्र के वंशज थे।

२. Nabaioth (नबायोत) ३. kedar (केदार) ४. Adbeel (अद्बेल)
५. Mibsam (मिबसाम) ६. Mishma (मिश्मा) ७. Dumah (दूमः/ दूमा)
८. Massa (मस्सा) ९. Hadar (हदर) १०. Tema (तेमा)
११. Jetur (यतूर) १२. Naphish (नाफीश) १३. Kedemah (किदिमः/ कदमा)

इजरायल देश के इन बारह वंशों के समुदाय को, मूलपुरुष इब्राहीम के नाम पर 'इबरानी' जाति कहा जाता है।

१४. **मुद्रणकालीन उचित संशोधन**—मूलहस्त०, मुद्रणह० और मूलप्रति संस्करण में यहां अन्त में दो वाक्य हैं—"**इसी का वंश मुसलमान हुए हैं। तभी दासीपुत्र होने से मुसलमान लोग बहुत-से खुशामदी होते हैं।**" द्विप्र०, द्वितीय सं० से ये वाक्य हटा दिये हैं, जो उचित है; क्योंकि यहां मुसलमानों के वंश की समीक्षा का प्रसंग ही नहीं है। मुसलमानों से पूर्व तो ईसाई इसी वंश में हुए हैं। यह पाठ मुद्रणप्रति में ऋषि ने स्वहस्त से परिवर्धित किया था और फिर काट दिया था।

१५. Rebekah (रिबकः/ रिबका) १६. Esau (एसाव) १७. Jacob (याक़ूब)

बाइबल में आये इन सभी नामों की अंग्रेजी वर्तनी, हिन्दी-उच्चारण तथा अनुवाद बाइबल के वर्तमान अंग्रेजी संस्करण तथा हिन्दी अनुवाद संस्करण से ग्रहण किये हैं (प्रकाशक-बाइबल समिति, बैंगलोर, १९८३ संस्करण)।

१८. **मुद्रणलिपिकर के प्रमाद से त्रुटित पाठ**—मुद्रणह०, द्विप्र० और द्वि०सं० में "**अपने छोटे बेटे याक़ूब को पहिनाया और**" पाठ त्रुटित है। मूलह०, मूलप्रति सं० में महर्षिप्रोक्त यह पाठ पूर्ण है। वेस, जग, भद में त्रुटित है, युमी में कोष्ठक में दिया है। उदयपुर सं० ने इसको ग्रहण कर लिया है।

१९. **अव्यवस्थित वर्तनी याक़ूब (Jacob) नाम की**—ग्रन्थ में इसकी दो वर्तनियां प्राप्त हैं—१. **यअक़ूब** (मूलसं० ५८८, ५८९, ५९०; द्वि० सं० ३३१, ३३२; कुल तेरह बार यह वर्तनी है), २. **याकूब** (मूलसं० पृ० ५९३; द्वि०सं० ३३४)। भाषात्मक

तब याक़ूब[१९] अपने पिता से बोला कि ''मैं आपका पहिलौठा एसाव हूं, आपके कहने के समान मैंने किया है, उठ बैठिये और मेरे अहेर के[१] मांस में से खाइये, जिसतें आपका प्राण मुझे आशीष दे। १९।''
तौरेत, उत्पत्ति, पर्व २७। आ० ९।१०।१५।१६।१९॥

समीक्षक—देखिये, ऐसे झूठ-कपट से आशीर्वाद लेके पश्चात् सिद्ध और पैग़म्बर बनते हैं, क्या यह आश्चर्य की बात नहीं है? और ईसाइयों के ऐसे 'अगुआ' हुए हैं! पुनः इनके मत की गड़बड़ में क्या न्यूनता हो॥ ३०॥[२०]

३१. और याक़ूब बिहान को तड़के उठा और उस पत्थर को जिसे उसने अपना उसीसा[२] किया था, खंभा खड़ा किया और उस पर तेल डाला। १८। और उस स्थान का नाम बेतएल[३] रक्खा....। १९। और यह पत्थर जो मैंने खंभा-सा खड़ा किया, ईश्वर का घर होगा....। २२।
तौरेत, उत्पत्ति, पर्व २८। आ० १८।१९।२२॥

समीक्षक—अब देखिए जंगलियों के काम! इन्होंने पत्थर पूजे और पुजवाये। और इसको मुसलमान लोग [भी] **'बेतएलमुकद्दस'**[४] कहते हैं। क्या यही पत्थर ईश्वर का घर [है], और उसी पत्थरमात्र में ईश्वर रहता था? वाह-वाह! क्या कहना है ईसाई लोगो! महाबुतपरस्त[५] तो तुम ही हो॥ ३१॥

३२. और ईश्वर ने राख़िल[६] को स्मरण किया और ईश्वर ने उसकी सुनी और उसकी कोख को खोला। २२। और वह गर्भिणी हुई और बेटा जनी और बोली कि ईश्वर ने मेरी निन्दा दूर की। २३।[७]
तौरेत, उत्पत्ति, पर्व ३०। आ० २२।२३॥

समीक्षक—वाह-वाह! ईसाइयों का ईश्वर क्या बड़ा डाक्टर[८] है! स्त्रियों की कोख खोलने को कौन-से शस्त्र वा औषध थे जिनसे खोली? ये सब बातें अन्धाधुन्ध की हैं॥ ३२॥

३३. परन्तु ईश्वर अरामी लाबान[९] कने स्वप्न में रात को आया और उसे कहा कि चौकस रह,

---

एकरूपता और मानकता की दृष्टि से 'याक़ूब' वर्तनी ग्राह्य है। आगे सर्वत्र **'यअकूब'** के स्थान पर **'याक़ूब'** लिखा है।
२०. **ऋषिलेख**—मूलहस्त० में **''और ईसाइयों......हो''** पाठ ऋषिलेख में परिवर्धित है।
१. **अहेर के**=शिकार के। २. **उसीसा**=सिरहाना
३. **Bethel (बेतेल या बैथल)** अर्थात् ईश्वर का घर या स्थान। यहां सभी संस्करणों में ''बैतएल'' वर्तनी है। जबकि समीक्षा में मुद्रणह०, द्विप्र० में **''बयतलमुकद्दस''** अपवर्तनी है। अन्य सभी सं० में संशोधित है।
४. **बेतएलमुकद्दस (बेतेलमुकद्दस)**—यह उस स्थान या पूजागृह का नाम है जो यहूदियों की सर्वप्रथम मस्जिद बनी थी। यह इजरायल की राजधानी यरुसलेम में है। इसको बनवाने का संकल्प हज० दाऊद ने लिया था और दाऊद की मृत्यु के बाद बनाया था उसके पुत्र सुलैमान ने। मुसलमान भी इसको पवित्र स्थान मानते हैं। वे इसको **'मस्जिदे अक्सा'** कहते हैं। मुसलमान पहले इसी की ओर मुंह करके नमाज़ पढ़ते थे। काबा की मस्जिद के निर्माण बाद उसकी ओर मुंह करके पढ़ने लगे।
५. **अपवर्तनी**—दोनों हस्त०, तीनों सं० में **''महाबुत्परस्त''** अपवर्तनी है, **'महाबुतपरस्त'** अपेक्षित है। सभी में अशुद्ध है।
६. **Rachel** (राहेल)।
७. **उचित परिवर्धन**—मूलह०, मूलप्रति सं० में **''और बोली....दूर की''** पाठ त्रुटित है। मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं० में है। बाइबल में होने के कारण और पाठ की पूर्णता के लिए यह ग्राह्य है।
८. **अव्यवस्थित वर्तनी**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में इस शब्द की अशुद्ध वर्तनी पाई जाती है—**''डाक्तर''।** अंग्रेजी भाषा में शुद्ध वर्तनी **''डाक्टर''** है। शुद्धता की दृष्टि से सर्वत्र **''डाक्टर''** वर्तनी गृहीत है। द्वितीय सं० में संशोधित है। (पृ० ३३२)
९. **पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक की बेहद हास्यास्पद टिप्पणी—Laban (लाबान)** यह व्यक्ति **'अराम/आराम'** देश का निवासी था। द्विप्र० में **''आरामी लावन''** और द्वि० सं० में **''लावन''** अपप्रयोग है। **पं० युधिष्ठिर मीमांसक** ने **'आरामी'**

तू याक़ूब को भला बुरा मत कहना....। २४। क्योंकि तू अपने पिता के घर का निपट अभिलाषी है, तूने किसलिये मेरे देवों को चुराया है?। ३०। तौरेत, उत्पत्ति, पर्व ३१। आ० २४। ३०॥

समीक्षक—यह हम नमूना लिखते हैं, हजारों मनुष्यों को स्वप्न में आया, बातें की; जाग्रत में[१] साक्षात् मिला; खाया-पीया, आया-गया आदि '**बाइबल**' में लिखा है; परन्तु अब न जाने वह है वा नहीं? क्योंकि अब किसी को स्वप्न वा जाग्रत[२] में भी ईश्वर नहीं मिलता और यह भी विदित हुआ कि ये जंगली लोग पाषाणादि मूर्तियों को देव मानकर पूजते थे। परन्तु ईसाइयों का ईश्वर भी पत्थर को ही देव मानता है,[३] नहीं तो देवों का चुराना कैसे घटे?॥ ३३॥

३४. और याक़ूब अपने मार्ग चला गया और ईश्वर के दूत उसे आ मिले। १। और याक़ूब ने उन्हें देखके कहा कि यह ईश्वर की सेना है....। २। तौरेत, उत्पत्ति, पर्व ३२। आ० १। २॥

समीक्षक—अब ईसाइयों के ईश्वर का मनुष्य होना कुछ भी संदिग्ध नहीं रहा,[४] क्योंकि ईश्वर के पास सेना भी है जब सेना हुई तो सब शस्त्र भी होंगे तथा किसी से लड़ाई-बखेड़े भी होते होंगे; नहीं तो सेना रखने का क्या प्रयोजन है?[५]॥ ३४॥

३५. और याक़ूब अकेला रह गया और वहाँ पौ फटे लों एक जन उससे मल्ल युद्ध[६] करता रहा। २४। और जब उसने देखा कि वह प्रबल न हुआ तो उसकी जांघ को भीतर से छूआ, तब याक़ूब के जांघ की नस उसके संग मल्लयुद्ध करने में चढ़ गई। २५। तब वह बोला कि ''मुझे जाने दे क्योंकि पौ फटती है'' और वह बोला ''मैं तुझे जाने न देऊंगा जब लों तू मुझे आशीष न देवे। २६।'' तब उसने उसे कहा कि ''तेरा नाम क्या [है][७] ?'' और वह बोला कि ''याक़ूब''। २७। तब उसने

वर्तनी को माना है। कभी-कभी विद्वान् भी विचलित हो जाते हैं। मीमांसक जी ने ''**आरामी**'' शब्द पढ़कर भ्रान्तिवश यह हास्यास्पद टिप्पणी दी है—''**आरामी=आराम करने वाला=सोने वाला**'' (पृ० ७६९) यहां उनकी प्रसंग को समझने की भूल रही है। यही ज्यों की त्यों अविचारित नकल **स्वामी विद्यानन्द जी** ने कर डाली। **स्वामी जगदीश्वरानन्द जी** ने भी सोचा कि क्यों माथापच्ची की जाये। उनको भी अन्धानुकरण का मार्ग सुविधाजनक लगा, इसलिए मीमांसक जी का यथावत् अन्धानुकरण करके वही बेतुकी टिप्पणी दे दी। हमें अब इस बात की चिन्ता है कि बाइबल के ज्ञाता जन इस अज्ञानतापूर्ण टिप्पणी को पढ़कर हमारे विद्वानों के बारे में क्या सोचेंगे? वस्तुत: यह '**आरामी**' नहीं '**अरामी**' नाम है और '**लाबान**' का विशेषण है। लाबान 'अराम' देश का निवासी था इसलिए उसको '**अरामी**' देश-सम्बन्धी विशेषण से वर्णित किया गया है, जैसे 'गलील' देश का निवासी होने से ईसा को '**ईसा गलीली**' कहा जाता है। '**अराम**' देश बाबुल और हमात के लगभग मध्यक्षेत्र में स्थित था। मुद्रणलिपिकरकृत वही अशुद्ध वर्तनी द्विप्र० और कथित दश विद्वानों द्वारा सम्पादित **उदयपुर सं०** में छपी है जबकि मूलह०, मूलसं०, द्वि०सं० में शुद्ध है।

१-२. **अपवर्तनी**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में दोनों स्थानों पर ''**जागृत**'' अपवर्तनी है। यही अपवर्तनी उदयपुर सं० में है।

३. **ऋषिहस्तलेख**—मुद्रणप्रति में ''**परन्तु.......मानता है**'' पाठ ऋषि द्वारा परिवर्धित है।

४. **अपपाठ**—दोनों हस्त०, तीनों सं० में यह अपवाक्य है—''**अब ईसाइयों का ईश्वर मनुष्य होने में कुछ भी संदिग्ध नहीं रहा**''। उपर्युक्त संशोधन ग्राह्य है।

५. **मुद्रणलिपिकर द्वारा अनावश्यक विस्तार**—मुद्रणप्रति, द्विप्र० व द्वि० सं० में इन दो वाक्यों का पाठ इस प्रकार बढ़ाया है—''**क्योंकि सेना भी रखता है। जब सेना हुई तब शस्त्र भी होंगे और जहां-तहां चढ़ाई करके लड़ाई भी करता होगा, नहीं तो सेना रखने का क्या प्रयोजन है?**'' इस परिवर्तन में कोई वैशिष्ट्य नहीं है। महर्षिप्रोक्त मूलपाठ ही ग्राह्य है।

६-७. **उचित परिवर्धन**—मूलह०, मूलसं० में ''**युद्ध**'' पद है, ''**मल्ल**'' पद त्रुटित है। मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं० में संशोधित है। समीक्षा में यही प्रयोग है। दूसरे स्थान पर दोनों सं० में ''**है**'' क्रिया त्रुटित है। वाक्यपूर्ति के लिए ग्राह्य है।

कहा कि ''तेरा नाम आगे को याक़ूब न होगा परन्तु इस्त्राएल[१], क्योंकि तूने ईश्वर के और मनुष्यों के आगे राजा की नाईं मल्लयुद्ध किया और जीता। २८।'' तब याक़ूब ने उससे पूछा कि ''अपना नाम बताइये'' और वह बोला कि ''तू मेरा नाम क्यों पूछता है?'' और उसने उसे वहाँ आशीष दिया। २९। और याक़ूब ने उस स्थान का नाम पनीएल[२] रक्खा, क्योंकि मैंने ईश्वर को प्रत्यक्ष देखा और मेरा प्राण बचा है। ३०। और जब वह पनूएल[३] से पार चला तो सूर्य की ज्योति उस पर पड़ी और वह अपनी जांघ से लंगड़ाता था। ३१। इसलिये इस्त्राएल[४] के वंशज [पशुओं की][५] उस जांघ की नस को, जो [याक़ूब की] चढ़ गई थी, आज लों नहीं खाते, क्योंकि उसने याक़ूब के जांघ की

१,४. **'इस्त्राएल' नाम की घोर अव्यवस्थित वर्तनी**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में इस्त्राएल (Israel) अर्थात् ईश्वर से मल्लयुद्ध करने वाला) नाम की वर्तनी में घोर अव्यवस्था है। लिपिकरों ने खुलकर अपनी अयोग्यता और प्रमाद का प्रमाण दिया है और आदि-शोधकों ने अपनी कर्त्तव्यहीनता और मक्कारी का। देखिए और आप भी माथा पीटिए—

(क) **मूलप्रति सं०** में यह नाम निम्नलिखित आठ प्रकार से लिखा मिलता है—

१. **इसराइल** (पृ० ५९४) ४. **इस्त्राएल** (पृ० ६२२, ६२९) ७. **ईस्त्रायेल** (पृ० ६१५, ६१६)
२. **इसराईल** (पृ० ६७८) ५. **इस्त्राऐल** (पृ० ६२९) ८. **इसराएल** (पृ० ५९०, ५९४, ५९७, ६०२)।
३. **इसरायल** (पृ० ६०२) ६. **इस्त्रायेल** (पृ० ५९४)

(ख) **द्वितीय सं०** में इस नाम की छह वर्तनियां मिलती हैं—

१. **इसराइल** (पृ० ३३४) ३. **इस्त्राएल** (पृ० ३४९, ३५३) ५. **इसरायल** (पृ० ३३९)
२. **इसराईल** (पृ० ३७८) ४. **इस्त्रायेल** (पृ० ३३४, ३४५) ६. **इसराएल** (पृ० ३३२, ३३४, ३३६, ३३८, ३३९)।

(ग) **पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक** द्वारा सम्पादित सत्यार्थप्रकाश में भी चार वर्तनियां मिलती हैं—

१. **इसराईल** (पृ० ८८४) ३. **इसराएल** (पृ० ७८०, ७८६, ७८७)
२. **इसरायेल** (पृ० ७७१, ७७६) ४. **इस्त्राएल** (पृ० ८०२, ८१२, ८१३)।

(घ) **द्वितीय सं० (प्रथमावृत्ति सन् १८८४)** में भी छह वर्तनियां हैं। निष्कर्ष यह है कि किसी भी संस्करण में एक स्थान पर न तो एक जैसी वर्तनी है और न वर्तनी की एकरूपता है।

(ङ) कथित 'दश विद्वानों' द्वारा सम्पादित **'उदयपुर संस्करण'** में वर्तनी की यही अराजकता, अमानकता और अप्रामाणिक स्थिति है। उसमें छह वर्तनियां पाई गई हैं। द्विप्र०, द्वि०सं० में कुछ वर्तनी है तो वहां इनके संस्करण में कुछ अन्य है—

१. **इसराएल** (पृ० ४८०, ४८२, ४८४, ४८९ आदि) ३. **इस्त्राइल** (पृ० ४९७/२) ५. **इस्त्राऐल** (पृ० ५०९)
२. **इस्त्रायेल** (पृ० ४८२) ४. **इसराईल** (पृ० ५४६) ६. **इस्त्राएल** (पृ० ५०३, ५०९/२)

क्या ऐसी भी किसी ग्रन्थ की दुर्दशा-दुर्गति हुआ करती है? किन्तु हमारे धर्मग्रन्थ की है और सवा-सौ वर्षों से बनी हुई है!!

यही अव्यवस्था **स्वामी वेदानन्द जी सरस्वती, पं० भगवद्दत्त जी** तथा अन्य सभी के संस्करणों में है। गत सवा-सौ वर्षों की अवधि के सम्पादकों ने भी इस अव्यवस्था की ओर ध्यान नहीं दिया जिसके परिणामस्वरूप लिपिकरों की लीला से उत्पन्न यह हास्यापद स्थिति आज तक बनी हुई है। इस संस्करण में इनमें से वर्तमान बाइबल के हिन्दी-अनुवाद में प्राप्त वर्तनी **'इस्त्राएल'** (Israel) को एकरूपता और मानकता की दृष्टि से ग्राह्य मानकर सर्वत्र प्रयुक्त किया है। आगे इस शब्द पर टिप्पणी नहीं दी जायेगी।

२-३. Peniel (पनीएल)=ईश्वर का मुख। Penuel (पनूएल)

वर्तनी की अव्यवस्था एवं अशुद्धता—सभी सं० में इन शब्दों की वर्तनी में अव्यवस्था है। किसी में **''फनुएल''** तथा किसी में **''फनूएल''** वर्तनी है। सभी में अशुद्धता यह है कि दोनों स्थानों पर हिन्दी की वर्तनी एक ही है जबकि बाइबल के अंग्रेजी मूलपाठ में दोनों की पृथक्-पृथक् वर्तनी है। तदनुसार हिन्दी वर्तनी भी भिन्न-भिन्न होनी चाहिए। इस सं० में दोनों वर्तनियों को शुद्ध कर दिया है।

पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक की अशुद्धि—पं० जी ने यहां दो अशुद्धियां की हैं—१. दोनों स्थलों के शब्दों की भिन्न-भिन्न अंग्रेजी वर्तनी है जबकि उन्होंने एक ही दिखाई है ''Phanuel'' २. बाइबल मूलपाठ के अनुसार यह वर्तनी भी अशुद्ध है। इस सं० में प्रदर्शित वर्तनियां शुद्ध हैं। **स्वामी विद्यानन्द जी, स्वामी जगदीश्वरानन्द जी** ने भी यही त्रुटियां की हैं।

नस को, जो चढ़ गई थी, छूआ था। ३२।

तौरेत, उत्पत्ति, पर्व ३२। आ० २४। २५। २६। २७। २८। २९। ३०। ३१। ३२॥

समीक्षक—ईसाइयों का ईश्वर अखाड़मल्ल है! तभी तो सरः और राख़िल[1] पर पुत्र होने की कृपा की। भला, यह कभी ईश्वर हो सकता है?[2] और देखो लीला कि एक जन नाम पूछे तो दूसरा अपना नाम ही न बतलावे! और ईश्वर ने उसकी नाड़ी चढ़ा तो दी और जीत गया परन्तु जो डाक्टर[3] होता तो जांघ की नाड़ी को अच्छा भी करता। और ऐसे ईश्वर की भक्ति से जैसा कि याक़ूब लंगड़ाता रहा तो अन्य भक्त भी लंगड़ाते होंगे। जब ईश्वर को प्रत्यक्ष देखा और मल्लयुद्ध किया, यह बात विना शरीरवाले के कैसे हो सकती है? यह केवल लड़केपन की लीला है॥ ३५॥

३६. ......ईश्वर का मुंह देखा....। १०।[4] तौरेत, उत्पत्ति, पर्व ३३। आ० १०॥

समीक्षक—जब ईश्वर के मुँह है तो और भी सब अवयव होंगे और वह जन्म-मरणवाला भी होगा॥ ३६॥

३७. और यहूदाह[5] का पहिलौठा एर[6] परमेश्वर की दृष्टि में दुष्ट था, सो परमेश्वर ने उसे मार डाला। ७। तब यहूदाह ने ओनान[7] को कहा कि ''अपने भाई की पत्नी के पास जा और उससे ब्याह कर और अपने भाई के लिये वंश चला। ८।'' और ओनान ने जाना[8] कि यह वंश मेरा न होगा और यों हुआ कि जब वह अपने[9] भाई की पत्नी पास गया तो वीर्य को भूमि पर गिरा दिया....। ९। और उसका वह कार्य परमेश्वर की दृष्टि में बुरा था, इसलिये उसने उसे भी मार डाला। १०।

तौरेत, उत्पत्ति, पर्व ३८। आ० ७। ८। ९। १०॥

---

५. **त्रुटित एवं भ्रष्ट अनुवाद**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में इस आयत का अनुवाद कुछ पद त्रुटित रह जाने से अनर्थमय हो गया है। इस अनुवाद से यह अर्थ प्रकट हो रहा है कि याक़ूब की जो नस चढ़ गई थी उसको इस्रायली नहीं खाते। यहां कथ्य विषय है कि पशुओं का मांस खाते समय जांघ की उस नस को नहीं खाते। यही अर्थ बाइबल के अनुवाद में है। यह बृहत् कोष्ठकान्तर्गत पाठ बढ़ाये बिना प्रकट नहीं होता, अत: उपुयक्त पाठ-परिवर्धन अत्यावश्यक है। इसी प्रकार '**वंश**' अपप्रयोग है, ''**वंशज**'' पद होना चाहिए। 'उदयपुर सं०' आदि सभी अन्य संस्करणों में यही अपपाठ है।

१. **अव्यवस्थित वर्तनी**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में यहां ''**राखल**'' अपवर्तनी है। आयत ३२ के पाठ में ''**राख़िल**'' है। मानकता और एकरूपता के लिए एक ही वर्तनी ''**राख़िल**'' ग्राह्य है।

२. **उचित संशोधन**—मूलह०, मूलसं० में यहां ''**केवल लड़केपन की लीला है**'' वाक्य है। इस अनावश्यक वाक्य को द्वि० सं० में हटा दिया गया है। यह संशोधन सही हुआ है, क्योंकि यही वाक्य अन्त में निष्कर्ष वाक्य के रूप में है।

३. **अव्यवस्थित वर्तनी का उचित संशोधन**—मूलह०, मूलप्रति सं०, मुद्रणह०, द्विप्र० में यहां ''**डॉक्तर**'' अपवर्तनी है। द्वि०सं० में यहां शुद्ध वर्तनी '**डॉक्टर**' है। अंग्रेजी भाषा की शुद्धता की दृष्टि से यही ग्राह्य है।

४. **मुद्रणलिपिकर की भूल से त्रुटित आयत व समीक्षा**—ईसाइयों के ईश्वर को साकार सिद्ध करने वाली इस आयत व इसकी समीक्षा को मुद्रणलिपिकर भूल से छोड़ गया, अत: द्वि०प्र० में नहीं छपी। महत्त्वपूर्ण होने से ३४वें सं० में पुन: इसको ग्रहण कर लिया। सभी द्वि०सं० में गृहीत है किन्तु उदयपुर सं० ने इसको ग्रहण न करके मुद्रणलिपिकर की भूल को महर्षि के लेखन से अधिक प्रामाणिक मान लिया।

५. **(यहूदाह)** Judah यहां यही वर्तनी शुद्ध है। यह उस यहूदा इस्करियोती से भिन्न व्यक्ति है जो ईसा का शिष्य था तथा जिसने ईसा को चांदी के तीस रुपयों के बदले पकड़वाया था। (द्र० आयतखण्ड संख्या ९५, ९७)

भिन्न इंग्लिश वर्तनी—पं० मीमांसक जी ने ''JUDA'' वर्तनी दी है। वर्तमान बाइबल में पूर्वोक्त वर्तनी है। पं० मीमांसक जी ने 'एर' की ''HER'' वर्तनी दी है। इंग्लिश बाइबल में 'Er' मिलती है। **६.** Er (एर)। **७.** Onan (ओनान)।

८,९. **उचित संशोधन**—मूलह०, मूलसं० में यहां ''**कहा**'' और ''**अपनी**'' अपप्रयोग हैं, मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं० में शुद्ध हैं।

समीक्षक—अब देख लीजिये! ये मनुष्यों के काम हैं कि ईश्वर के ? जब उसके साथ नियोग हुआ तो उसको क्यों मार डाला ? उसकी बुद्धि शुद्ध क्यों न कर दी ? **और वेदोक्त नियोग भी प्रथम सर्वत्र चलता था। यह निश्चय हुआ कि नियोग की बातें सब देशों में चलती थीं**[१] ॥ ३७ ॥

''तौरेत यात्रा की पुस्तक''[२]

३८. ... जब मूसा[३] सयाना हुआ ... और अपने भाइयों में से एक इबरानी[४] को देखा कि मिश्री उसे मार रहा है। ११। तब उसने इधर-उधर दृष्टि की और देखा कि कोई नहीं, तब उसने उस मिश्री[५] को मार डाला और बालू में[६] उसे छिपा दिया। १२। जब वह दूसरे दिन बाहर गया तो देखा[७] कि दो इबरानी आपस में झगड़ रहे हैं। तब उसने उस अंधेरी[८] को कहा कि तू अपने पड़ोसी को क्यों मारता है ?। १३। तब उसने कहा कि किसने तुझे हम पर अध्यक्ष अथवा न्यायी ठहराया ? क्या तू चाहता है कि जिस रीति से तूने मिश्री को मार डाला, मुझे भी मार डाले ? तब मूसा डरा और कहा कि निश्चय यह बात खुल गई। १४। जब फ़िरौन[९] ने यह बात सुनी तो चाहा कि मूसा को मार डाले। परन्तु मूसा फ़िरौन[१०] के आगे से[११] भाग निकला[१२].....। १५।

तौ०, यात्रा, प० २। आ० ११, १२, १३, १४, १५॥

---

१. **नियोग की परम्परा विश्वव्यापी**—बाइबल में भी नियोग वर्णन है। विस्तृत टिप्पणी पृ० २०४ और ८६६ पर द्रष्टव्य है। **उचित संशोधन**—मूलह०, मूलप्रति सं० में यहां ''**सर्वत्र चलती थीं**'' पाठ है जो पहले वाक्य की पुनरुक्ति मात्र है। मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं० में इसके स्थान पर ''**सब देशों में चलती थीं**'' संशोधन किया है जो ग्राह्य है।

२. **बाइबल में तौरेत यात्रा की पुस्तक का अंग्रेजी नाम**—'EXODUS' यह **मूसा** द्वारा रचित है।

३. **मूसा की घटना का अन्यत्र वर्णन कुरान में भी**—यहूदियों के आदि-पैगम्बर की इस घटना का वर्णन कुरान में भी आता है। समु० १४ की आयतखण्ड संख्या ३८ में द्रष्टव्य है।

४. Hebrew=हिब्रू या इब्री।

५. **ग्राह्य वर्तनी**—दोनों हस्त०, तीनों सं० में यहां '**मिस्त्री**' अपवर्तनी है। विस्तृत टिप्पणी आयतखण्ड संख्या १७, पृ० ८६१पर।

६. **पं० मीमांसक जी द्वारा अपपाठ ग्रहण**—**पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक** ने दोनों संस्करणों में संशोधित हो चुके पाठ को फिर से इस प्रकार अपपाठ बना दिया—''**मिश्री को मार डाला और बाद में उसे छिपा दिया**''। संशोधित पाठ है—''**मिश्री को मार डाला और बालू में उसे छिपा दिया**''। यही बाइबल के मूलपाठ में है। सभी पाठों में शुद्ध प्रयोग है पता नहीं पं० जी को यह पाठ कहां से सूझा ? पं० जी यदि बाइबल का मूलपाठ देख लेते तो यह भूल न होती।

७. **अपप्रयोग**—मुद्रणह०, द्विप्र० में ''**देखो**'' अपप्रयोग है। अन्य सभी पाठों में संशोधित है।

८. **अंधेरी**=अपराधी।

९. **फ़िरौन का अन्यत्र वर्णन** Pharaoh (फ़िरौन) फ़िरौन का उल्लेख क़ुरान में भी आता है। द्रष्टव्य, समु० १४ की आयत खण्डसंख्या ८९, १२६।

१०. **अव्यवस्थित वर्तनी 'फ़िरौन' की**—ग्रन्थ में इस शब्द की वर्तनी अव्यवस्थित है। इसकी चार वर्तनियां मिलती हैं—१. **फ़िरऊन** (मूलप्रति सं० पृ० ५९१, ५९४; द्वि० सं० ३३३, ३३४), २. **फ़िराओन** (मूलसं०पृ० ६८१; द्वि० सं० ३८०), ३. **फ़िरोन** (मूलसं० ६९७; द्वि० सं० ३८८), ४. **फ़िराऊन** (मुद्रणह० ३५५, युमी० ७७५, वेस० ४७२, द्विप्र० ४८१ आदि)। भाषात्मक एकरूपता, मानकता और व्यवस्था के लिए इनमें से बाइबल में प्रयुक्त वर्तनी '**फ़िरौन**' को ग्रहण किया है। आगे इस पर टिप्पणी नहीं दी जायेगी। उदयपुर सं० में यही अव्यवस्था है।

११. **मुद्रणलिपिकर के महाप्रमाद से पाठ त्रुटित**—मुद्रणह०, द्विप्र० और द्वि०सं० में आयत की ये पंक्तियां छूट गई हैं—''**कहा कि निश्चय यह बात खुल गई॥ जब फ़िरौन ने यह बात सुनी तो चाहा कि मूसा को मार डाले। परन्तु मूसा फ़िरौन के आगे से**''। मुद्रण-लिपिकर ने प्रतिलिपि करते हुए प्रमाद से इसको छोड़ा है। मूलप्रति सं० और बाइबल में यह पाठ है और ग्राह्य है। मुद्रणलिपिकर ने ऐसे ही अनेक पाठ बिगाड़े हैं। उदयपुर सं० ने इसको ग्रहण करके पाठ को युक्तिसंगत बना लिया है। वेस, जग, भद, युमी आदि में त्रुटित है।

१२. **पाठ-परिवर्धन और अपपाठ**—इस आयत का पाठ मुद्रणप्रति में पं० भीमसेन के लेख में किनारे पर लिख परिवर्धित किया है। मूलह० में नहीं है। मुद्रणह०, द्विप्र० में ''**नाग निकला**'' अपपाठ है। अन्य सभी पाठों में संशोधित है।

समीक्षक—अब देखिये, **ऐसे कर्मों का करनेहारा मूसा पैगम्बर बन गया**[१]**!!** जो **'बाइबल'** का मुख्य सिद्धकर्त्ता, मत का आचार्य मूसा कि जिसका चरित्र क्रोधादि दुर्गुणों[२] से युक्त, मनुष्य की हत्या करनेवाला और चोरवत् राजदण्ड से बचनेहारा अर्थात् जब बात को छिपाता था तो झूठ बोलनेवाला भी अवश्य होगा। ऐसे को भी जो ईश्वर मिला, वह पैगम्बर बना। उसने यहूदी आदि का मत चलाया। वह भी ईश्वर के ही सदृश हुआ। इसलिये ईसाइयों के जो मूल पुरुषा हुए हैं, वे सब मूसा आदि से ले करके जंगली अवस्था में थे, विद्यावस्था में नहीं, इत्यादि॥ ३८॥

३९.[३] जब[४] परमेश्वर ने देखा कि वह देखने को एक अलंग[५] फिरा तो ईश्वर ने झाड़ी के मध्य में से उसे पुकारके कहा कि ''हे मूसा! हे मूसा!'' तब वह बोला ''मैं यहां हूँ। ४।'' तब उसने कहा कि ''इधर पास मत आ, अपने पावों से जूता उतार, क्योंकि यह स्थान जिस पर तू खड़ा है पवित्र भूमि है। ५।'' तौ०, यात्रा, प० ३। आ० ४।५॥

समीक्षक—देखिये ऐसे मनुष्यों को[६], जो कि मनुष्य को मारके बालू में गाड़नेवाले से अपने ईश्वर की मित्रता और उसको पैग़म्बर मानते हैं! और देखो, जब तुम्हारे ईश्वर ने मूसा से कहा कि पवित्र स्थान में जूती न ले जानी चाहिये, तुम ईसाई इस आज्ञा के विरुद्ध क्यों चलते हो?॥

प्रश्न—हम जूती के स्थान में टोपी उतार लेते हैं।

उत्तर—यह दूसरा अपराध तुमने किया, क्योंकि टोपी उतारना न ईश्वर ने कहा, न तुम्हारे पुस्तक में लिखा है। और उतारने योग्य को नहीं उतारते, जो नहीं उतारना चाहिये उसको उतारते हो। ये दोनों प्रकार तुम्हारे पुस्तक से विरुद्ध हैं।

प्रश्न—हमारे यूरोप देश में शीत अधिक है, इसलिये हम लोग जूती नहीं उतारते।

उत्तर—क्या शिर में शीत नहीं लगता? जो यही है तो जब यूरोप देश में जाओ तब ऐसा ही करना। परन्तु जब हमारे घर में वा बिछौने में आया करो तब तो जूती उतार दिया करो और जो न उतारोगे तो तुम अपने **'बाइबल'** पुस्तक के विरुद्ध चलते हो। ऐसा तुमको न करना चाहिये॥ ३९॥[७]

४०.[८] तब परमेश्वर ने उससे कहा[९] कि 'तेरे हाथ में यह क्या है?' और वह बोला कि ''छड़ी''॥ तब उसने कहा कि ''उसे भूमि पर डाल दे'' और उसने उसे भूमि पर डाल दिया और वह सर्प बन

---

१. **मुद्रणलिपिकर के प्रमाद से त्रुटित पाठ**—मुद्रणह०, द्विप्र० व द्वि०सं० में ''**ऐसे कर्मों का करनेहारा मूसा पैगम्बर बन गया।**'' महत्त्वपूर्ण व्यंग्यात्मक वाक्य प्रमाद से मुद्रणप्रतिलिपिकर से छूट गया है। उदयपुर सं० में भी यह वाक्य त्रुटित है।

२. **अपप्रयोग**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में यहां ''**क्रोधादि गुणों**'' अपप्रयोग है। अन्यत्र क्रोध को दुर्गुण कहा है (पृ० २६०)

३,७,८. **मुद्रणलिपिकर की महाप्रमादलीला से त्रुटित दो पृष्ठों का पाठ**—मुद्रणप्रति बनाते समय मुद्रणलिपिकर द्वारा मूलह० के दो पृष्ठ (६४६, ६४७) छोड़ देने के कारण ३९, ४० आयतें और इनकी समीक्षाएं त्रुटित छोड़ गया। अत: द्विप्र० में नहीं छपी। अब सभी द्वि०सं० में गृहीत हैं किन्तु उदयपुर सं० ने मुद्रणलिपिकर की भूल को फिर से महत्त्व देते हुए दोनों आयतों को त्रुटित छोड़ दिया है जिससे ऋषिपाठ विकृत और नष्ट हो गया है। द्रष्टव्य, टिप्पणी पृ० ८७६ पर।

४. **उचित संशोधन**—मूलह०, मूलप्रति सं० में यहां ''**तब**'' पद है, यहां बाइबल में '**जब**' पाठ है। द्वि० सं० में संशोधित है।

५. **अलंग**=एक पार्श्व में, एक बगल में।

६. **अपप्रयोग**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में ''**मनुष्य**'' एकवचन-प्रयोग है, यहां बहुवचनान्त अपेक्षित है।

९. **मूसा के चमत्कारों का कुरान में वर्णन**—समु० १४ में द्रष्टव्य हैं आयतखण्ड संख्याएं १६,८०,८३,१२८।

गई और मूसा उसके आगे से भागा। २। तब परमेश्वर ने मूसा से कहा कि ''अपना हाथ बढ़ा और उसकी पूंछ पकड़ ले,'' तब उसने अपना हाथ बढ़ाया और उसे पकड़ लिया......। ३। ......और वह उसके हाथ में छड़ी हो गई। ४। तब परमेश्वर ने उसे कहा कि ''फिर तू अपना हाथ अपनी गोद में कर'' और उसने अपना हाथ अपनी गोद में किया, जब उसने उसे निकाला तो देखा कि उसका हाथ हिम के समान कोढ़ी था। ६। और उसने कहा कि अपना हाथ फिर अपनी गोद में कर, उसने फिर अपने हाथ को अपनी गोद में किया और फिर अपनी गोद से उसे निकाला तो देखा कि जैसी उसकी सारी देह थी वह वैसा फिर हो गया। ७। ......तू नील नदी का जल लेके सूखी [भूमि][१] पर डालियो और वह जो जल तू नदी से निकालेगा सो सूखी [भूमि][२] पर लोहू हो जायगा। ९।

तौ०, यात्रा, प० ४। आ० २। ३। ४। ६। ७। ९॥

समीक्षक—अब देखिये, कैसा[३] बाजीगर का खेल है! खिलाड़ी ईश्वर, उसका सेवक मूसा! और इन बातों को माननेहारे कैसे हैं? क्या आजकल बाजीगर लोग इससे कम करामात करते हैं? यह ईश्वर क्या, यह तो बड़ा खिलाड़ी है! इन बातों को विद्वान् क्योंकर मानेंगे? और हर-एक वार मैं परमेश्वर हूँ और मैं इब्राहीम, इज़हाक और याक़ूब का ईश्वर हूँ, इत्यादि हर-एक से अपने मुख से अपनी प्रशंसा करता-फिरता है। यह बात उत्तम जन की नहीं हो सकती, किन्तु किसी दंभी मनुष्य की हो सकती है॥ ४०॥[४-५]

१-२. **त्रुटित आवश्यक पद**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में दोनों जगह ''**भूमि**'' पद त्रुटित है। इसके बिना भाव भी स्पष्ट नहीं होता।

३. **अपप्रयोग**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में यहां ''**कैसे**'' अपप्रयोग है, ''**कैसा**'' प्रयोग अपेक्षित है। इसका कारण यह है कि यह 'अटपटे खेल' का विशेषण है, 'बाजीगर' का नहीं।

४. **मुद्रणलिपिकर की प्रमादलीला से छूटे दो पृष्ठ**—आयतखण्ड संख्या ३९, ४० का आयतपाठ और समीक्षा-पाठ ३४वें संस्करण से द्वितीय संस्करणों में पुन: ग्रहण कर लिया है अन्यथा द्विप्र० से लेकर परोपकारिणी के संस्करण की ३३वीं आवृत्ति तक यह छूटता रहा था। इसका कारण यह है कि मूलहस्तलेख में पृष्ठसंख्या डालते समय ६४६, ६४७ पृष्ठ संख्याएं दोबार अंकित हो गई। प्रमादी मुद्रणलिपिकर ने भी आयत-क्रमसंख्या और इस भूल को नहीं देखा और वह भी प्रतिलिपि करते समय पहले के दो पृष्ठों की प्रतिलिपि छोड़कर दूसरी बार जो ६४६, ६४७ पृष्ठ संख्याएं अंकित थी उनकी प्रतिलिपि कर गया। वही पाठ द्विप्र०, द्वि०सं० में छपता रहा। ३४वीं आवृत्ति के सम्पादक को जब इस भूल का आभास हुआ तो यह पाठ सम्मिलित किया गया। मूलहस्तलेख को देखने पर उसको इस भूल की जानकारी मिली। आदि-शोधकों का यह महाप्रमाद रहा कि उन्होंने न तो मुद्रणहस्तलेख को ध्यान से देखा और न द्वितीय संस्करण की प्रथम आवृत्ति के मुद्रित होते समय ही ध्यान दिया। वे मक्कार तो अपना उल्लू सीधा करते रहे और चद्दर तानकर सोते रहे। आश्चर्य है कुछ लोगों के लिए वे भी ''श्रद्धेय'' बन गये! लिपिकरों और शोधकों की इसी प्रकार की असावधानियों और प्रमादों के कारण सत्यार्थप्रकाश में अनेक अशुद्धियां और सम्पादकीय त्रुटियां रही हैं।

उदयपुर सं० में मक्खीमार सम्पादन—मूलहस्तलेख और मुद्रणहस्तलेख मिलाने पर स्पष्ट ज्ञात होता है कि मुद्रणलिपिकर मुद्रणप्रति तैयार करते समय दो पृष्ठों की प्रतिलिपि करना भूल गया और नवीन द्वितीय संस्करणों ने भूल सुधार करके उन पृष्ठों के पाठ को सम्मिलित कर भी लिया है। उदयपुर सं० के दश विद्वानों ने उस भूल सुधार का कोई लाभ नहीं उठाया और उन दो पृष्ठों के त्रुटित पाठ को फिर त्रुटित छोड़ दिया। यदि मूर्ख मुद्रणलिपिकर और मक्कार आदि-शोधकों की भूलों को यथावत् बनाये रखना अथवा उनकी भूलों का संरक्षण करने का नाम ''**मूलस्वरूप को अक्षुण्ण रखना**'' है, तो सम्पादक मण्डल महोदय! ग्रन्थ में २००० से अधिक त्रुटियों का संशोधन भी आपने क्यों कर दिया? वह भी तो ''मूलस्वरूप'' था। जब उनको संशोधित कर दिया तो इस लिपिकीय भूल को भी सुधार कर सत्यार्थप्रकाश पर कुछ उपकार कर देते? पाठकगण! आर्य सम्पादकों के आग्रही दृष्टिकोण पर ध्यान दें, उन्होंने महर्षि का अमूल्य लेखन उपेक्षित कर दिया और लिपिकर की भूल महर्षि से महत्त्वपूर्ण मान ली। यह कैसी ऋषिभक्ति है? उक्त आयतों को ग्रहण किये बिना सत्यार्थप्रकाश की अपूर्णता है।

५. **ऋषि-लेख**—''**यह बात......सकती है**'' पाठ मूलहस्त० में ऋषि द्वारा परिवर्धित है।

४१. ....और फसह[१] का मेम्ना मारो। २१। और एक मूठी जूफा[२] लेओ और उसे उस लोहू में, जो बासन[३] में है, बोरके, ऊपर की चौखट के और द्वार की दोनों ओर उससे छापो और तुममें से कोई बिहान लों अपने घर के द्वार से बाहर न जावे। २२। क्योंकि परमेश्वर मिश्र के मारने के लिये आर-पार जायगा और जब वह ऊपर की चौखट पर और द्वार की दोनों ओर लोहू को देखेगा[४] तब परमेश्वर द्वार से बीत जायगा और नाशक तुम्हारे घरों में न जाने देगा कि मारे। २३।

तौ०, यात्रा, प० १२। आ० २१। २२। २३॥

समीक्षक—भला, यह जो टोने-टामन करनेवाले के समान है, वह ईश्वर सर्वज्ञ कभी हो सकता है? जब लोहू का छापा देखे तभी इस्राएल-कुल का घर जाने, अन्यथा नहीं। यह काम क्षुद्रबुद्धि वाले मनुष्य के सदृश है। इससे यह विदित होता है कि ये बातें किसी जंगली मनुष्य की लिखी हैं॥ ४१॥

४२. और यों हुआ कि परमेश्वर ने आधी रात को मिश्र[५] के देश में सारे पहिलौठों को फ़िरौन[६] के पहिलौठे से लेके जो अपने सिंहासन पर बैठता था उस बंधुआ के पहिलौठे लों, जो बंदीगृह में था, पशुन के पहिलौठों समेत नाश किये। २९। और रात को फ़िरौन[७] उठा, वह और उसके सब सेवक और सारे मिश्री[८] उठे और मिश्र[९] में बड़ा विलाप था, क्योंकि कोई घर न रहा जिसमें एक न मरा। ३०। तौ०, यात्रा, प० १२। आ० २९। ३०॥

समीक्षक—वाह!! अच्छा! आधी रात को डाकू के समान निर्दयी होकर ईसाइयों के ईश्वर ने लड़के-बाले, वृद्ध और पशु तक भी विना अपराध मार दिये और कुछ भी दया न आयी और मिश्र में बड़ा विलाप होता रहा, तो भी ईसाइयों के ईश्वर के चित्त से निष्ठुरता नष्ट न हुई! ऐसा काम ईश्वर के तो क्या किन्तु किसी साधारण मनुष्य[१०] के भी करने का नहीं है। यह आश्चर्य नहीं, क्योंकि यह लिखा है कि '**मांसाहारिणः कुतो दया**'=जब ईसाइयों का ईश्वर मांसाहारी है तो उसको दया का क्या काम है?॥ ४२॥

४३. परमेश्वर तुम्हारे लिये युद्ध करेगा....। १४। .....इस्राएल के संतान से कह[११] कि वे आगे बढ़ें। १५। परन्तु तू अपनी छड़ी उठा और समुद्र पर अपना हाथ बढ़ा और उसे दो भाग कर और

१. **फसह**=धार्मिक बलि। ईश्वर के नाम पर जो बलि दी जाती है, वह अनुष्ठान। इसका अर्थ है—धार्मिक बलि के लिए निश्चित किये मेम्ने को मारो।

२. **जूफा**=एक घास जो दवा में काम आती है। (Hyssop)

३. **बासन**—बर्तन, पात्र, मिट्टी का बर्तन।

४. **अपप्रयोग**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में यहां "**देखे**" क्रियापद है। वाक्य की पूर्वप्रयुक्त भविष्यत्कालीन क्रियाओं के सम्बन्ध में "**देखेगा**" क्रिया अपेक्षित है। यही क्रियापद बाइबल में है, अत: ग्राह्य है।

५,८,९. **ग्राह्य वर्तनी**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में यहां "**मिस्री**", '**मिस्र**' वर्तनी है, "**मिश्री**", '**मिश्र**' चाहिए। द्रष्टव्य टिप्पणी आयतखण्ड संख्या १७, पृ० ८६१ पर। **ऋषि-लेख**—ऊपर रेखांकित दोनों वाक्य ऋषि द्वारा परिवर्धित हैं।

६,७. **वर्तनी**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में यहाँ "**फ़िरुऊन**" वर्तनी है। "**फ़िरौन**" ग्राह्य है। द्र० पृ० ८७४ पर टिप्पणी।

१०. **उचित पाठसंशोधन**—मूलह०, मूलप्रति सं० में इसके स्थान पर '**भले मनुष्य**' पाठ है। यह असंगत प्रयोग है। मुद्रणह०, द्विप्र० और द्वि०सं० का उपर्युक्त पाठ अधिक सटीक है, क्योंकि ये काम साधारण मनुष्य के करने के भी नहीं हैं, अत: '**साधारण मनुष्य**' पाठ ग्राह्य है।

११. **द्वि०सं० में अपप्रयोग**—द्वि० सं० में '**कहा**' अपप्रयोग है। '**कह**' मध्यम पुरुष का प्रयोग अपेक्षित है। शायद, मुद्रणदोष है।

इस्राएल के सन्तान समुद्र के बीचों-बीच में से सूखी भूमि में होकर चले जायेंगे। १६।

तौ०, यात्रा, प० १४। आ० १४।१५।१६॥

समीक्षक—क्यों जी! आगे तो ईश्वर भेड़ों के पीछे गड़रिये के समान इस्राएल कुल के पीछे-पीछे डोला करता था, अब न जाने कहाँ गया? नहीं तो समुद्र के बीच में से चारों ओर की रेलगाड़ियों की सड़क बनवा लेते, जिससे सब संसार का उपकार होता और नाव आदि बनाने का श्रम छूट जाता।[१] परन्तु क्या किया जाय, ईसाइयों का ईश्वर न जाने कहाँ छिप रहा है? इत्यादि बहुत-सी असम्भव लीलायें मूसा के साथ ईश्वर ने की हैं। परन्तु यह विदित हुआ कि ऐसा ईश्वर, ऐसे उसके सेवक और ऐसा ईश्वरकृत पुस्तक[२] हम लोगों से दूर रहै॥ ४३॥

४४. ....क्योंकि मैं परमेश्वर तेरा ईश्वर ज्वलित सर्वशक्तिमान् हूँ। पितरों के अपराध का दण्ड, उनके पुत्रों को, जो मेरा वैर रखते हैं, उनकी तीसरी और चौथी पीढ़ी लों देवैया हूँ। ५।

तौ० यात्रा, प० २०। आ० ५॥

समीक्षक—भला, यह किस घर का न्याय है कि जो पिता के अपराध से चार पीढ़ी तक दण्ड देना, अच्छा मानना। क्या अच्छे पिता के दुष्ट और दुष्ट के श्रेष्ठ सन्तान नहीं होते? जो ऐसा होगा[३] तो चौथी पीढ़ी तक दण्ड कैसे दे सकेगा? और जो पाँचवीं पीढ़ी से आगे दुष्ट होगा उसको दण्ड न दे सकेगा। **विना अपराध किसी को[४] दण्ड देना अन्यायकारी की बात है।।** ४४॥

४५. विश्राम के दिन को उसे पवित्र रखने के लिये स्मरण कर। ८। छः दिन लों तू परिश्रम कर....। ९। और सातवां दिन परमेश्वर तेरे ईश्वर का विश्राम है....। १०।....परमेश्वर ने विश्राम दिन को आशीष दी....। ११। तौ० यात्रा, प० २०। आ० ८।९।१०।११॥

समीक्षक—क्या रविवार एक ही पवित्र दिन है[५] और छः दिन अपवित्र हैं?[६] और क्या परमेश्वर ने छः दिन तक बड़ा परिश्रम किया था कि जिससे थकके सातवें दिन सो गया? और जो रविवार को आशीर्वाद दिया तो सोमवार आदि छः दिनों को क्या दिया? अर्थात् शाप[७] दिया होगा! ऐसा काम विद्वान् का भी नहीं [हो सकता][८] तो ईश्वर का क्योंकर हो सकता है? भला, रविवार में क्या गुण था

---

१. **ऋषिहस्तलेख तथा अपप्रयोग**—''**और नाव......छूट जाता**'' पाठ मुद्रणप्रति में ऋषि द्वारा परिवर्धित है। अगली पंक्ति में दोनों हस्त० और तीनों सं० में '**लीला**' एकवचनात्मक पद है, बहुवचन अपेक्षित है, क्योंकि ''**बहुत-सी**'' के सम्बन्ध में बहुवचन आवश्यक है।

२. **संशोधक द्वारा शैलीविरुद्ध पाठ परिवर्तन**—समीक्षा भाग की अन्तिम सारगर्भित पंक्ति को द्वि०सं० में अनावश्यक रूप से बढ़ाकर परिवर्तित किया है, वह महर्षि की शैली के विरुद्ध वाक्यरचना कर डाली। महर्षि '**पुस्तक**' पद का पुंल्लिग में प्रयोग करते हैं, किसी संशोधक ने उसे स्त्रीलिंग बना डाला—''**उसकी बनाई पुस्तक है। ऐसी पुस्तक**''। एक ही पंक्ति में सारा भाव स्पष्ट हो रहा है, उसका विस्तार व्यर्थ है। महर्षि की शैली को न समझने का यह परिणाम है।

३-४. **त्रुटित पद**—मूलप्रति सं० में ये दोनों पद त्रुटित हैं, मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं० में परिवर्धित हैं। आवश्यक होने से ग्राह्य हैं।

५. **त्रुटित पद**—मूलप्रति सं० में '**है**' क्रिया और द्वि०सं० में ''**दिन है**'' पद त्रुटित है। ये दोनों पद आवश्यक हैं, क्योंकि इनके बिना वाक्यरचना नहीं होती।

६. **सृष्टि रचना का अन्यत्र वर्णन**—छह दिन तक सृष्टि रचने का वर्णन कुरान में भी है। द्र०समु० १४ में ९७, १५१ आयतखण्ड।

७. **अपवर्तनी**—मूलप्रति में यहां ''**स्राप**'' अपवर्तनी है, द्वि० सं० में संशोधित है। द्र०, टि० आयतखण्ड संख्या १०, पृ०८५६ पर।

८. **त्रुटित आवश्यक क्रिया**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में बृहत् कोष्ठान्तर्गत क्रिया वाक्यपूर्त्यर्थ आवश्यक है।

और सोमवार आदि ने क्या दोष किया था कि जिससे एक को पवित्रता का वर दिया और अन्यों को ऐसे ही अपवित्र कर दिया![१] ॥ ४५ ॥

४६. अपने पड़ोसी[२] पर झूठा साक्ष्य मत दे। १६। ....अपने पड़ोसी[३] की स्त्री और उसके दास, उसकी दासी और उसके बैल और उसके गदहे और किसी वस्तु का जो तेरे पड़ोसी[४] की है, लालच मत कर। १७। तौ०, यात्रा, प० २०। आ० १६। १७॥

समीक्षक—वाह! तभी तो ईसाई लोग परदेशियों के माल पर ऐसे झुकते हैं कि जानो प्यासा जल पर, भूखा अन्न पर। जैसी यह केवल मतलबसिन्धु और पक्षपात की बात है, ऐसा ही ईसाइयों का ईश्वर भी है।[५] यदि कोई कहे कि हम सब मनुष्यमात्र को पड़ोसी[६] मानते हैं तो सिवाय मनुष्यों के अन्य कौन स्त्री और दासी आदि वाले हैं कि जिनको अपड़ोसी[७] गिनें? इसलिये ये बातें[८] स्वार्थी मनुष्यों की हैं, ईश्वर की नहीं॥ ४६ ॥[९-१०]

४७. जो कोई किसी मनुष्य को मारे और वह मर जाय, वह निश्चय घात किया जाय। १२। और यदि वह मनुष्य घात में न लगा हो परन्तु ईश्वर ने उसके हाथ में सौंप दिया हो, तब मैं तुझे भागने का

---

१. **उचित परिवर्तन और अपपाठ**—मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं० में यह वाक्य है—''**रविवार में क्या गुण था**'' मूलप्रति सं० में है—''**रविवार ने क्या गुण.... किया था।**'' यहां मुद्रणह०, द्विप्र० का पाठ अधिक उपयुक्त है। आगे दोनों सं० में ''**एक को पवित्र तथा वर दिया**'' अपपाठ है। ''**पवित्र**'' पद का अगली क्रिया के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है, । ऐसा ज्ञात होता है कि श्रुति-भ्रान्ति से ''**पवित्रता का वर दिया**'' के स्थान पर पूर्वोक्त वाक्य लिख गया। देखिए, आगे विपरीतार्थक ''**अपवित्र करना**'' प्रयोग है, जो इस संशोधन की पुष्टि करता है। दोनों सं० में ''**अपवित्र कर दिये**'' अपपाठ है।

ऋषि-लेख—''**तो ईश्वर का......कर दिया**'' पाठ मूलहस्त० में ऋषि द्वारा परिवर्धित है।

२-४, ६-७. **अपवर्तनी और अव्यवस्थित वर्तनी**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में इस शब्द की वर्तनी में अव्यवस्था है। मूलप्रति सं० में तीन प्रकार की वर्तनियां लिखी मिलती हैं—१. **पड़ोसी** (पृ० १३६, ६८४ आदि), २. **परोसी** (पृ० ५९५, ५९६ आदि), ३. **परौसी** (पृ० ५९१)। द्वि० सं० में दो प्रकार की वर्तनियां हैं—१. **पड़ोसी** (पृ० ७९, ३८१ आदि), २. **परोसी** (पृ० ३३३, ३३५ आदि)। भाषात्मक व्यवस्था और मानकता की दृष्टि से एक वर्तनी का निर्धारण अत्यावश्यक है। हिन्दी व्याकरण और प्रचलित वर्तनी की दृष्टि से इनमें से ''**पड़ोसी**'' वर्तनी ग्राह्य है। सभी अन्य सं० और उदयपुर सं० में यही अव्यवस्था है।

५. **ईसाई अंग्रेजों द्वारा विदेशों में लूट पर व्यंग्य**—भारत में ईसाई अंग्रेजों का शासन होते हुए भी निडर महर्षि ने यहां उन पर तीखा व्यंग्य किया है कि बाइबल में पड़ोसी के धन-वैभव का लालच न करने का उपदेश है, तो इसीलिए ये पड़ौसी को छोड़ दूसरे देशों पर आक्रमण कर उनका धनमाल लूट कर अपने देश में ले जा रहे हैं। दूसरे देशों के माल पर ये लोग ऐसे टूटते हैं जैसे प्यासा जल पर। भारत को भी अंग्रेजों ने सब तरह से लूटा है। बाइबल के उपदेश इनके लिए दिखावा-भर हैं। महर्षि ने एकादश समुल्लास के 'ब्राह्मसमाज' प्रसंग में (पृ० ६९७, ६९८, ७०६) तथा अष्टम समुल्लास में (पृ० ४१२, ४१३ पर) क्रमशः ईसा, ईसाई संस्कृति की अलोचना की है और विदेशी राज्य से स्वदेशीय राज्य को उत्तम घोषित किया है। यह ऋषि की निर्भीकता तथा सत्याचरण की दृढ़ता को प्रदर्शित करता है। ये लेख अंग्रेजी शासन के होते उसी की आलोचना के और स्वदेशी राज्य की प्रशंसा और प्रेरणा के सर्वप्रथम ऐतिहासिक दस्तावेज हैं। महर्षि से पूर्व किसी ने ऐसी सार्वजनिक आलोचना का साहस नहीं किया था।

८. **उचित संशोधन**—मूलह०, मूलप्रति सं० में ''**यह बातें**'' अपप्रयोग है। मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि० सं० में संशोधित है, जो उपर्युक्त है। बहुवचनान्त पद के साथ बहुवचनान्त सर्वनाम ही शुद्ध माना जायेगा।

९. **मुद्रणलिपिकर के महाप्रमाद से अपक्रम में आयत**—मुद्रणह०, द्विप्र० में इस आयतखण्ड के बाद ''**सो अब लड़कों में से.....जीती रक्खो।**'' आयतखण्ड संख्या ५७ अपक्रम में है। पृ० ८८५ की टिप्पणी संख्या ७ देखिए। ध्यान दें, यहां '**यात्रा**' पुस्तक की आयतें हैं, जबकि वह '**गिनती**' पुस्तक की आयत है। उदयपुर सं० के सम्पादकों ने इस भ्रष्ट पाठक्रम को अपना कर लिपिकर की गलती को ''अक्षुण्ण'' बना दिया है। मुद्रणह० में जब यात्रा पुस्तक की आयतें बढ़ाई गई तो मुद्रणलिपिकर को यह आयत आगे '**गिनती की पुस्तक**' के प्रसंग में (पृष्ठ ८८५ पर) रखनी चाहिए थी। वह भूल से यहां लिख गया।

१०. **ऋषि-लेख**—''**यदि कोई.....की नहीं**'' पाठ मूलहस्त० में ऋषि द्वारा परिवर्धित है।

स्थान बता दूँगा। १३। तौ०, यात्रा, प० २१। आ०। १२। १३॥

समीक्षक—जो यह ईश्वर का न्याय सच्चा है, तो मूसा एक आदमी को मार, गाड़कर भाग गया था, उसको यह दण्ड क्यों नहीं हुआ? जो कहो ईश्वर ने मूसा को मारने के निमित्त[1] सौंपा था तो ईश्वर पक्षपाती हुआ, क्योंकि उस मूसा का राजा से न्याय क्यों न होने दिया?॥ ४७॥

४८. ....और कुशल का बलिदान बैलों से परमेश्वर के लिये चढ़ाया। ५। और मूसा ने आधा लोहू लेके पात्रों में रक्खा और आधा लोहू वेदी पर छिड़का....। ६। और मूसा ने उस लोहू को लेके लोगों पर छिड़का और कहा कि यह लोहू उस नियम का है जिसे परमेश्वर ने इन बातों के कारण तुम्हारे साथ किया है। ८।[2] और परमेश्वर ने मूसा से कहा कि ''पहाड़ पर मुझ पास आ और वहाँ रह, और मैं तुझे पत्थर की पटियाँ और व्यवस्था और आज्ञा जो मैंने लिखी है, दूंगा। १२।''

तौ०, यात्रा, प० २४। आ० ५। ६। ८। १२॥

समीक्षक—अब देखिये, ये सब जंगली लोगों की बातें हैं वा नहीं? और परमेश्वर बैलों का बलिदान लेता, और वेदी पर लोहू छिड़कना, यह कैसी जंगलीपन और असभ्यता की बात है! जब ईसाइयों का खुदा भी बैलों का बलिदान लेवे तो उसके भक्त बैल-गाय के बलिदान की प्रसादी से पेट क्यों न भरें? और जगत् की हानि क्यों न करें? **ऐसी-ऐसी बुरी बातें 'बाइबल' में भरी हैं। इन्हीं[3] के कुसंस्कारों से वेदों में भी ऐसा झूठा दोष लगाना चाहते हैं परन्तु वेदों में ऐसी बातों का नाम भी नहीं।**

और यह भी निश्चय हुआ कि ईसाइयों का ईश्वर एक पहाड़ी मनुष्य था, पहाड़ पर रहता था। जब वह खुदा स्याही, लेखनी, काग़ज नहीं बना जानता [था][4] और न उसको प्राप्त था, इसीलिये पत्थर की पटियों पर लिख-लिख देता था और इन्हीं जंगलियों के सामने ईश्वर भी बन बैठा॥ ४८॥

४९.[5] और बोला कि ''तू मेरा रूप नहीं देख सकता, क्योंकि मुझे देखके कोई मनुष्य न जीयेगा। २०।'' और परमेश्वर ने कहा कि ''देख, एक स्थान मेरे पास है और तू उस टीले पर खड़ा रह। २१। और यों होगा कि जब मेरा विभव चलकर निकलेगा,[6] तो मैं तुझे पहाड़ के दरार में

---

१. **उचित संशोधन**—द्विप्र०, द्वि०सं० में ''**मारने के निमित्त**'' सही प्रयोग है जबकि मूलप्रति सं० में ''**मारने के अर्थ**'' प्रयोग है।

२. **मुद्रणलिपिकर द्वारा त्रुटित पाठ**—मुद्रणप्रति में ''**और मूसा.....किया है**'' त्रुटित पाठ पं० भीमसेन ने पूर्ण किया है।

३. **मुद्रणप्रति में अपप्रयोग**—द्विप्र०, द्वि०सं० में ''**इसी के**'' अपप्रयोग है, यहां '**बहुवचन**' अपेक्षित है। मूलप्रति में शुद्ध प्रयोग है। **ऋषि-लेख**—''**जब ईसाइयों.....न करें**'' पाठ मूलहस्त० में ऋषि द्वारा परिवर्धित है।

४. **त्रुटित आवश्यक क्रिया**—दोनों हस्त०, तीनों सं० में ''**था**'' क्रिया त्रुटित है। इस वाक्य की पूर्ति बिना क्रिया के नहीं होती।

५,११. **मुद्रणकालीन अशुद्ध संख्या**—मुद्रणकाल में द्विप्र० में इन दोनों आयतखण्डों पर ४८, ४८, संख्या प्रमाद से छपी हुई है। फिर आगे ४९ से शुरू है। सभी सं० में संशोधन कर लिया है। द्विप्र० के कुलयोग में अन्तर इस कारण नहीं आया कि पीछे आयत खण्ड संख्या १० लिखना-छपना रह गया था, अत: यहां आकर कुलयोग बराबर हो गया। उदयपुर सं० में संशोधित है।

६. **स्वामी वेदानन्द जी एवं पं० मीमांसक जी का अशुद्ध पाठ**—**स्वामी वेदानन्द जी और पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक** ने दोनों सं० से भिन्न द्विप्र० का अशुद्ध पाठ ''**विभव चलक निकलेगा**'' पाठ माना है। यह मुद्रण अशुद्धि है जो मुद्रणह० में ठीक है। इसके बाद तुक्के से या भ्रान्ति से उन्होंने '**चलक**' का '**झलक**' अर्थ किया है। यह समझने की भूल रही, क्योंकि यहां ''**के**'' क्रिया त्रुटित रह गई। वस्तुत: यह ''**चलके**'' पद है। यहां बाइबल मूल में विभव=तेज के चल निकलने का ही कथन है। इसकी पुष्टि अगली पंक्ति के पाठ ''**जब लौं न जा निकलूं**'' में जाने की क्रिया से हो जाती है। अत: इन दोनों का अशुद्ध पाठ अग्राह्य है। बाइबल का नया अनुवाद अधिक स्पष्ट है—''**जब तक मेरा तेज तेरे सामने होके चलता रहे तब तक**''। ''**जब तक मैं तेरे सामने होकर न निकल जाऊं तब तक**'' आदि।

रक्खूंगा और जब लों न[७] जा निकलूं तुझे अपने हाथ से ढांपूंगा। २२। फिर[८] अपना हाथ उठा लूंगा और तू मेरा पीछा देखेगा परन्तु मेरा रूप दिखाई न देगा। २३।''

तौ०, यात्रा, प० ३३। आ० २०। २१। २२। २३॥

समीक्षक—अब देखिये, ईसाइयों का ईश्वर केवल मनुष्यवत् शरीरधारी है और मूसा से कैसा प्रपञ्च रचके आप स्वयं ईश्वर बन गया! जो पीछा देखेगा, रूप न देखेगा, तो हाथ से उसको ढांप भी दिया होगा। जब खुदा ने अपने हाथ से मूसा को ढांपा होगा तब क्या उसके हाथ का रूप उसने न देखा होगा?॥ ४९॥

''लैव्य[९] व्यवस्था की पुस्तक'' (तौरेत)[१०]

५०.[११] और परमेश्वर ने मूसा को बुलाया और मंडली के तम्बू में से यह वचन उसे कहा। १। कि इस्राएल के सन्तानों से बोल और उन्हें कह, यदि कोई तुममें से परमेश्वर के लिये भेंट लावे तो तुम ढोर में से अर्थात् गाय-बैल और भेड़-बकरी में से अपनी भेंट लाओ। २।[१२]

तौ०, लैव्य व्यवस्था की पुस्तक, प० १। आ० १। २॥

समीक्षक—अब विचारिये! ईसाइयों का परमेश्वर गाय, बैल आदि की भेंट लेनेवाला, जो कि अपने लिये बलिदान कराने के लिये उपदेश करता है वह बैल, गाय आदि पशुओं के लोहू-मांस का

विद्वानों की अन्धपरम्परा और पाठ-अव्यवस्था—मुद्रणकालीन द्विप्र० की अशुद्धि ने विद्वानों को भ्रमित कर दिया। जग में भी अशुद्ध है। द्वि०सं०, मूलसं०, पं० भगवद्दत्त जी ने **''चल निकलेगा''** पाठ संशोधित किया है। **स्वामी जगदीश्वरानन्द जी** ने शब्दावली बदली है किन्तु पाठ शुद्ध है। **स्वामी विद्यानन्द जी** ने पं० मीमांसक जी का यथावत् अशुद्ध अनुकरण किया है। उदयपुर सं० के कथित 'दस विद्वान्' भी अनुकरणकर्त्ताओं के इस दल में सम्मिलित हो गये और अशुद्ध पाठ को ग्रहण कर लिया, न मुद्रणप्रति को देखा, न मूल बाइबल को देखा, न भाव को देखा।

पं० मीमांसक जी का अशुद्ध पाठ—पं० मीमांसक जी ने द्वि०सं० के अपेक्षाकृत पाठ को अशुद्ध बताया है जबकि अशुद्ध उनका है। देखिए, पं० जी ने क्या अशुद्ध और निरर्थक पाठ बनाया है—**''मेरा विभव=तेज का झलक निकलेगा।''** विभव का अर्थ ही 'तेज' या 'झलक' है। पं० जी यदि बाइबल का मूलपाठ देख लेते तो उनसे यह भूल न होती।

७,८. **त्रुटित पद**—मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं० में क्रमश: **''न''** और **''फिर''** अव्यय त्रुटित हैं। ये रचना की दृष्टि से आवश्यक हैं। बाइबल-पाठ में भी ये हैं। अत: ग्राह्य हैं।

९. **मुद्रणलिपिकर के प्रमाद से अपनाम**—मुद्रणह०, द्विप्र० में इस पुस्तक का अशुद्ध नाम है—**''लय व्यवस्था की पुस्तक''**। सभी सं० में संशोधित है। पं० भगवद्दत्त जी के सं० में **''लैब्य''** अपवर्तनी है। शायद, यह मुद्रणदोष है।

१०. **बाइबल में 'लैव्यव्यवस्था' पुस्तक का बाइबल-वर्णित नाम**—'LEVITICUS' यह मूसा-रचित है।

१२. **सर्वप्रथम गाय का मांस खिलानेवाला मूसा**—कुरान के उल्लेखों से ज्ञात होता है कि **मिश्र देश और इस्राएल जाति में प्राचीन समय में गाय को पवित्र माना जाता था, न तो उसको मारा जाता था और न उसका मांस खाया जाता था।** मूसा यहूदियों का वह आदि पैगम्बर था जिसने अपनी इस्राएल जाति को गाय को मारने और उसका मांस खाने पर मजबूर किया (देखिए सूरा २ की ४७ से ७४ आयतें) और इस नीच कार्य को शुरू करवाया। मूसा से ही यहूदियों, फिर ईसाइयों और मुसलमानों में गाय का मांस खाने की परम्परा चली। कुरान में उल्लेख है कि इस्राएल जाति के लोग गाय को देवता मानकर पूजते थे। मूसा जब कुछ दिन तपस्या के नाम पर पहाड़ पर रहकर स्वयम्भू पैगम्बर बनकर नीचे आया तो उसने देखा कि मिश्रवासी व इस्राएली गाय-बछड़े को देवता मानकर पूज रहे हैं। मूसा ने आदेश दिया कि तुमने बछड़े को देवता मानने का पाप किया है, तो इसका प्रायश्चित्त यह है कि एक बछड़े की बलि दो। तब से मिश्र में गाय-बछड़े की बलि शुरू हुई। प्राचीन इतिहासकार के एक महत्त्वपूर्ण उद्धरण से इस बात की पुष्टि होती है। हेरोडोटस लिखता है—"Thus from Egypt as far as lake tritionis.... Cows flesh however none of these. Tribes ever taste, but abstain from it for the same reason as the Eguptions, neither do they any of them breed swine. Even at cyrene, the women think it wrong to eat the flesh of the cow." (The Religion of the Samites, Part-I, P.-361)

प्यासा-भूखा है वा नहीं? इसी से वह अहिंसक और ईश्वर कोटि में गिना कभी नहीं जा सकता किन्तु मांसाहारी, प्रपञ्ची मनुष्य के सदृश है॥५०॥

५१. और वह उस बैल को परमेश्वर के आगे बलि करे और हारून[१] के बेटे याजक लोहू को निकट लावें और लोहू को यज्ञवेदी के चारों ओर जो मंडली के तंबू के द्वार पर है, छिड़कें।५। तब वह उस भेंट के बलिदान की खाल निकाले और उसे टुकड़ा-टुकड़ा करे।६। और हारून के बेटे याजक यज्ञवेदी पर आग रक्खें और उसपर लकड़ी चुनें।७। और हारून के बेटे याजक उसके टुकड़ों को और शिर और चिकनाई को उन लकड़ियों पर जो यज्ञवेदी की आग पर हैं, विधि से धरें।८। ....जिसतें बलिदान की भेंट होवे, जो आग से परमेश्वर के सुगंध के लिये भेंट किया गया।९। तौ०, लै० व्यवस्था की पुस्तक, प० १। आ० ५।६।७।८।९॥

समीक्षक—तनिक विचारिये! कि बैल को परमेश्वर के आगे उसके भक्त मारें और वह मरवावे और लोहू को चारों और छिड़कें, अग्नि में होम करें, ईश्वर सुगन्ध लेवे, भला, यह कसाई के घर से कुछ कमती लीला है? इसी से न '**बाइबल**' ईश्वरकृत, और न वह, जंगली मनुष्य के सदृश लीलाधारी 'ईश्वर' हो सकता है॥५१॥

५२. फिर परमेश्वर मूसा से यह कहके बोला।१। कि यदि वह अभिषेक किया हुआ याजक लोगों के पाप के समान पाप करे, तो वह अपने पाप के कारण, जो उसने किया है, अपने पाप की भेंट के लिये निष्खोट[२] एक बछिया परमेश्वर के लिये लावे।३। ....और बछिया के शिर पर अपना हाथ रक्खे और बछिया को परमेश्वर के आगे बलि करे।४।

तौ०, लै० व्य०, प० ४। आ० १।३।४॥

समीक्षक—अब देखिये पापों के छुड़ाने के प्रायश्चित्त! स्वयं पाप करें, गाय आदि उत्तम पशुओं की हत्या करें, और परमेश्वर करवावे! धन्य हैं ईसाई लोग कि जो ऐसी बातों के करने-करानेहारे को भी ईश्वर मानकर अपनी मुक्ति आदि की आशा करते हैं!![३]॥५२॥

५३. जब कोई अध्यक्ष पाप करे....।२२।....तब वह बकरी का निष्खोट[४] नर मेम्ना अपनी भेंट के लिये लावे।२३। और....उसे....परमेश्वर के आगे बलि करे ...यह पाप की भेंट है।२४।

तौ०, लै० व्य, पु, प० ४। आ ० २२।२३।२४॥

समीक्षक—वाह जी, वाह! यदि ऐसा है तो इनके अध्यक्ष अर्थात् न्यायाधीश तथा सेनापति आदि पाप करने से क्यों डरते होंगे? आप तो यथेष्ट पाप करें और प्रायश्चित्त के बदले में गाय, बछिया, बकरे

---

१. **(हारून) Aaron**। यह मूसा का छोटा भाई था। मूसा की चाल देखिए कि स्वयं तो ईश्वर का पैगम्बर बन बैठा और अपने भाई को तथा उसके परिवार को यहूदियों के प्रधान याजक (Priests) का धार्मिक एकाधिकार दे दिया। इस प्रकार दोनों भाइयों ने मिलकर लोगों को खूब बहकाया और खूब माल उड़ाया। इस प्रकार यहूदी धर्म पर दोनों का एकाधिकार हो गया।

२,४. **मुद्रणप्रति में अपवर्तनी**—मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं० में "**निसखोट**" अपवर्तनी है। मुद्रणलिपिकर ने इसको अशुद्ध लिखा है।

३. **पं० मीमांसक जी द्वारा अपपाठ—पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक** ने शेष दोनों सं० में संशोधित और प्रयुक्त अच्छे-भले पाठ को बदलकर द्विप्र० की मुद्रणकालीन अशुद्धि को आधार मान कर अपपाठ बना डाला—"**धन्य है ईसाई लोगो! कि ऐसी बातों के करने-कराने-हारे को भी ईश्वर मानकर अपनी मुक्ति आदि की आशा करते हैं!!**" (पृष्ठ ७८२)। पं० जी का इस पर ध्यान नहीं गया कि "**लोगो!**" सम्बोधन के साथ क्रिया भी मध्यम पुरुष की आयेगी—"**करते हो**"। इस प्रकार यह व्याकरणविरुद्ध

आदि के प्राण लेवें, **तभी तो ईसाई लोग किसी पशु वा पक्षी के प्राण लेने में शङ्कित नहीं होते।**

सुनो ईसाई लोगो! अब तो इस जंगली मत को छोड़के सुसभ्य, धर्ममय वेदमत को स्वीकार करो कि जिससे तुम्हारा कल्याण हो॥ ५३॥

५४. और यदि उसके पास[१] भेड़ लाने की पूँजी न हो तो वह अपने किये हुए अपराध के लिये दो पिंडुकियां और कपोत के दो बच्चे परमेश्वर के लिये लावे....। ७। .....और उसका शिर उसके गले के पास से मरोड़ डाले परन्तु अलग न करे। ८। ....उसके किये हुए पाप का प्रायश्चित्त करे और उसके लिये क्षमा किया जायगा। १०। पर यदि उसके पास[२] दो पिंडुकियां[३] और कपोत के दो बच्चे लाने की पूंजी न हो तो ....सेर भर चोखा पिसान का दशवां हिस्सा पाप की भेंट के लिये लावे, * उस पर तैल न डाले....। ११। ....और वह क्षमा किया जायगा। १३।

तौ०, लै० व्य० पु०, प० ५। आ० ७।८।१०।११।१३॥

समीक्षक—अब सुनिये! ईसाइयों में पाप करने से कोई धनाढ्य न डरता होगा और न दरिद्र ही;[४]

* इस ईश्वर को धन्य है कि जिसने बछड़ा, भेड़ी और बकरी का बच्चा, कपोत और पिसान (आटे) तक लेने का नियम किया! अद्भुत बात तो यह है कि कपोत के बच्चे 'गर्दन[५] मरोड़वाके' लेता था अर्थात् गर्दन[६] तोड़ने का परिश्रम न करना पड़े। इन सब बातों के देखने से विदित होता है कि जंगलियों में कोई चतुर पुरुष था, वह पहाड़ पर जा बैठा और अपने को ईश्वर प्रसिद्ध किया। जंगली अज्ञानी थे, उन्होंने उसी को ईश्वर स्वीकार कर लिया। अपनी युक्तियों से वह पहाड़ पर ही खाने के लिए पशु, पक्षी और अन्नादि मँगा लिया करता था और मौज[७] करता था। उसके दूत=फरिश्ते काम किया करते थे। सज्जन लोग विचारें कि कहाँ तो बाइबल में बछड़ा, भेड़ी, बकरी का बच्चा, कपोत और 'अच्छे' पिसान का खानेवाला ईश्वर और कहाँ सर्वव्यापक, सर्वज्ञ, अजन्मा, निराकार, सर्वशक्तिमान् और न्यायकारी इत्यादि उत्तम गुणयुक्त वेदोक्त ईश्वर?[८]

वाक्य बन गया!! सभी सं० में संशोधित वाक्य को पं० जी द्वारा पुनः बदलने की आवश्यकता नहीं थी।

१. **अपपाठ**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में "**उसे भेड़ लाने की पूंजी न हो**" अपपाठ है। "**उसके पास**" पाठ अपेक्षित है। **ऋषि-लेख**—"**सुनो ईसाई.......कल्याण हो**" पाठ मूलहस्त० में ऋषि द्वारा परिवर्धित है।

२. **अप-अनुवाद**—यहां दोनों हस्त० और तीनों सं० में '**उसे**' के स्थान पर '**उसके पास**' पाठ उपयुक्त है। अन्यत्र यही प्रयोग है। बाइबल के नये अनुवाद में भी यही है। उदयपुर आदि जिस भी संस्करण में "**उसे.....पूंजी न हो**" पाठ है वह अशुद्ध है।

३. **पिंडुकी**=कबूतर की जाति-प्रजाति का एक पक्षी, पेड़वी।

४. **मुद्रणकालीन अशुद्ध पाठ**—मुद्रणहस्तलेख में यह पाठ ठीक था—"**ईसाइयों में पाप करने से कोई धनाढ्य न डरता होगा और न गरीब.....।**" शोधन करते समय ग्रन्थकार का ध्यान पूरे वाक्य पर अर्थात् "**न गरीब**" पर नहीं गया। उन्होंने "धनाढ्य के बाद "**दरिद्र भी**" शब्द जोड़ दिये, जिसके कारण द्विप्र० में यह अटपटा पाठ छपा—"**ईसाइयों में पाप करने से कोई धनाढ्य दरिद्र भी न डरता होगा और न गरीब**"।

सबके अलग पाठ—अब सब संस्करणों ने अपने ढंग से पाठ बना लिये—१. द्वि०सं०, मूलसं०, स्वामी वेदानन्द सं० और पं० सिद्धान्ती सं० में—"**कोई धनाढ्य न डरता होगा और न दरिद्र भी**"। पं० मीमांसक जी—"**कोई धनाढ्य भी न डरता होगा और न दरिद्र=गरीब।**" उदयपुर सं०—"**कोई धनाढ्य न डरता होगा और न गरीब।**" पं० भगवद्दत्त जी ने द्विप्र० का अशुद्ध-अटपटा पाठ ही रख लिया। यहां पं०जी ने यह नहीं बताया कि "**दरिद्र**" और "**गरीब**" में क्या अर्थभेद है। शोधक की असावधानी ने एक नया झगड़ा फैला दिया। विद्वान् सम्पादकों ने यह भी नहीं सोचा कि गलती से लिखे दो शब्दों में से एक को छोड़ दो, जैसे बहुत्र पुनरुक्तिपूर्ण पदों को छोड़ दिया है। पर, सबकी अपनी-अपनी ढपली है, अपना-अपना राग!

५,६. **अयोग्य लिपिकर-शोधक**—तीनों संस्करणों में यह दु:स्थिति है कि यहां एक ही वाक्य में क्रमशः दो वर्तनियां हैं—"**गरदन**", "**गर्दन**"। भाषात्मक एकता और मानकता के लिए "**गर्दन**" एक शुद्ध वर्तनी ग्राह्य है। यही दुर्व्यवस्था अन्य सभी विद्वानों के सं० और उदयपुर संस्करण में है। **स्वामी जगदीश्वरानन्द जी** द्वारा संशोधित है।

७. **मुद्रणप्रति में अपवर्तनी**—मुद्रणह०, द्विप्र० में "**मोज**" अपवर्तनी है। सभी सं० में संशोधित है।

८. **मुद्रणकालीन टिप्पणी तथा पाठग्रहण**—यह टिप्पणी दोनों हस्तलेखों में नहीं है, मुद्रणकाल में लिखी गई है। द्विप्र० में प्रकाशित

क्योंकि इनके ईश्वर ने पापों का प्रायश्चित्त करना सहज कर रक्खा है। एक यह बात ईसाइयों की '**बाइबल**' में बड़ी अद्‌भुत है कि विना कष्ट पाये[१] पाप से पाप छूट जाय! क्योंकि **एक तो पाप किया और दूसरी[२] जीवों की हिंसा की और खूब आनन्द से मांस खाया, और पाप भी छूट गया!!**

भला, कपोत के बच्चे का गला मरोड़ने से वह बहुत देर तक तड़पता[३] होगा, तब भी ईसाइयों को दया नहीं आती! दया क्योंकर आवे? इनके ईश्वर का उपदेश ही हिंसा करने का है। और जब सब पापों का ऐसा ही प्रायश्चित्त है, तो 'ईसा के विश्वास से पाप छूट जाता है', यह बड़ा आडम्बर क्यों करते हैं?॥५४॥[४]

५५. ....सो उस बलिदान की खाल उसी याजक की होगी, जिसने उसे चढ़ाया। ८। और समस्त भोजन की भेंट जो तन्दूर में पकाई जावें और सब जो कड़ाही में अथवा तवे पर, सो उसी याजक की होगी। ९। तौ०, लै० व्य० पु०, प० ७। आ० ८।९॥

समीक्षक—हम जानते थे कि यहां देवी के भोपों और मन्दिरों के पुजारियों की पोपलीला विचित्र है, परन्तु ईसाइयों के ईश्वर और उनके[५] पुजारियों की पोपलीला इससे सहस्त्रगुणा[६] बढ़कर है, क्योंकि चाम के दाम और भोजन के पदार्थ खाने को आवें तो फिर ईसाइयों के याजकों[७] ने खूब मौज उड़ाई होगी, और अब भी उड़ाते होंगे! भला, कोई मनुष्य एक लड़के को मरवावे और दूसरे लड़के को उसका मांस खिलावे, ऐसा कभी हो सकता है? **वैसे ही मनुष्य और पशु, पक्षी आदि सब जीव ईश्वर के[८] पुत्रवत् हैं। परमेश्वर ऐसा काम कभी नहीं कर सकता।** इसी से यह '**बाइबल**' ईश्वरकृत और इसमें लिखा ईश्वर और इसके माननेवाले धर्मात्मा कभी नहीं हो सकते। ऐसी ही सब बातें '**लैव्य व्यवस्था**' आदि पुस्तकों में भरी है, कहां तक गिनावें?॥५५॥

है। मूलप्रति सं० में द्विप्र० से ग्रहण की गई है। सन् १८८४ संस्करण के आरम्भ में 'निवेदन' शीर्षक से लिखे प्राक्कथन से ज्ञात होता है कि यह टिप्पणी मुंशी समर्थदान ने लिखी है। भाषा-शैली भी मुंशी जी की है। इसी कारण इस पर महर्षि का नाम भी नहीं है। **पं० मीमांसक जी** ने "**द०स०**" संक्षिप्त नाम अपनी ओर से लिखा है, जो गलत है।

१. **अपपाठ**—दोनों हस्त० और तीनों संस्करणों में "**बिना कष्ट किये**" अपपाठ है। "**कष्ट करना**" सकर्मक क्रिया है और "**कष्ट पाना**" ईश्वर की ओर से अनिवार्य होता है, वह कर्त्ता नहीं करता। उपर्युक्त पाठ सही है।

२. **अपपाठ**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में "**दूसरे जीवों की हिंसा की**" अपपाठ है। यहां उपर्युक्त पाठ होना अभीष्ट है। "**दूसरी**" '**बात**' का संख्याबोधक विशेषण है, "**जीवों**" का नहीं।

३. **अव्यवस्थित वर्तनी**—दोनों सं० में यहां "**तड़फता**" क्रिया प्रयोग है, अन्यत्र "**तड़पता**" और "**तड़पना**" आदि प्रयुक्त हैं। इसमें '**तड़प**' धातु है, '**तड़फ**' नहीं, अत: व्याकरणिक एकरूपता एवं मानकता के लिए '**तड़पना**' पद ग्राह्य है।

४. **ऋषि-लेख**—"**और जब......करते हैं**" पाठ मुद्रणप्रति में ऋषि द्वारा परिवर्धित है।

५-६. **अपप्रयोग**—प्रथम और तृतीय संख्यांक अशुद्धियां क्रमश: "**भोपे**" और "**सहस्त्रगुणी**" दोनों हस्त० और तीनों सं० में अपप्रयोग हैं। **भोपे**=भक्त, पुजारी। यह राजस्थानी का शब्द है।

७. **मुद्रणलिपिकर द्वारा त्रुटित पद**—मुद्रणह०, द्विप्र० में प्रमादवश "**याजकों**" पद त्रुटित है। वेस, जग, भद, युमी को छोड़ कर अन्य सं० में परिवर्धित है।

८. **स्थानभ्रष्ट अपपाठ**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में "**वैसे ही ईश्वर के सब मनुष्य और पशु-पक्षी आदि सब जीव पुत्रवत् हैं**" वाक्य में "**ईश्वर के**" पद "**मनुष्य**" पद से पूर्व हैं, जो वहां अप-अर्थ दे रहे हैं कि सब मनुष्य किसी ईश्वर-विशेष के हैं। आगे इसी प्रकार "**सब**" सर्वनाम पद की पुनरुक्ति व्यर्थ है। उसका उपयुक्त स्थान "**पुत्रवत्**" से पूर्व है। षष्ठी विभक्ति का आसत्ति सम्बन्ध "**पुत्र**" के साथ है। यही अपपाठ वेस, जग, भद, युमी, विस, उदयपुर सं० में विद्यमान है।

''गिनती की पुस्तक'' [तौरेत][१]

५६. सो गदही ने परमेश्वर के दूत को अपने हाथ में तलवार खींचे हुए मार्ग में खड़े देखा, तब गदही मार्ग से अलग खेत में फिर गई, उसे मार्ग में फिरने के लिये बलआम[२] ने गदही को लाठी से मारा। २३। तब परमेश्वर ने गदही का मुंह खोला और उसने बलआम से कहा कि ''मैंने तेरा क्या किया है कि तूने मुझे अब तीन वार मारा। २८।'' तौ०, गिनती, प० २२। आ० २३। २८॥

समीक्षक—प्रथम तो गदहे तक ईश्वर के दूतों को देखते थे और आजकल बिशप, पादरी आदि श्रेष्ठ वा अश्रेष्ठ मनुष्यों को भी खुदा वा उसके दूत नहीं दीखते हैं! क्या आजकल परमेश्वर और उसके दूत हैं वा नहीं ? यदि हैं तो क्या बड़ी नींद में सोते हैं, वा रोगी [हैं ?][३] अथवा किसी अन्य भूगोल में चले गये ? वा किसी अन्य धन्धे में लग गये ? वा अब ईसाइयों से रुष्ट हो गये ? अथवा मर गये ? विदित नहीं होता कि क्या हुआ ?[४] अनुमान तो ऐसा होता है कि जो अब नहीं हैं, नहीं दीखते, तो तब भी नहीं थे और नहीं दीखते होंगे। ये केवल मनमाने गपोड़े उड़ाये हैं॥५६॥

५७. सो अब लड़कों में से हर एक बेटे को और हर एक स्त्री को जो पुरुष से संयुक्त हुई हो प्राण से मारो। १७। परन्तु वे बेटियां जो पुरुष से संयुक्त नहीं हुई हैं, उन्हें अपने लिये[५] जीती रक्खो। १८।
तौ०, गिनती०, प० ३१। आ० १७। १८॥

समीक्षक—वाह जी! मूसा पैग़म्बर और तुम्हारा ईश्वर धन्य है कि जो स्त्री-बाल-वृद्ध और पशु-हत्या करने से भी अलग न रहै। और इससे स्पष्ट निश्चित होता है कि मूसा विषयी था; क्योंकि जो विषयी न होता तो अक्षतयोनि अर्थात् पुरुषों से समागम न की हुई कन्याओं को अपने लिये क्यों मँगाता ? वा उनको ऐसी निर्दय वा विषयीपन की आज्ञा क्यों देता ?॥५७॥[६]

---

१. **'गिनती की पुस्तक' का बाइबल-वर्णित नाम**—'NUMBERS', यह मूसा-रचित है। २. Balaam. (बिलाम)।

३. **त्रुटित आवश्यक क्रिया**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में **''हैं''** क्रिया त्रुटित है। बिना क्रिया के यह वाक्य अपूर्ण है।

४. **ऋषि-लेख**—**''वा रोगी.......क्या हुआ''** व सभी रेखांकित पाठ ऋषि द्वारा परिवर्धित हैं।

५. **मूसा का जंगली बर्बर आदेश**—मूसा ने यह आदेश **मिद्यानी समुदाय** से होने वाले युद्ध के अवसर पर दिया था। बाइबल में लिखा है कि इस युद्ध में मूसा की सेना ने अन्य लूटों के अलावा **बत्तीस हजार कुंवारी कन्याओं को** लूटा था (गिनती, पर्व ३१, आ० ३५)। मूसाई (यहूदी) मत में सभ्यता का ऐसा ही जंगली बर्बर स्तर था! कुरान में भी ऐसा ही असभ्य वर्णन है। (द्रष्टव्य समु० १४ में आयतखण्ड संख्या ८१ का कथन)।

६. **मुद्रणलिपिकर की महाभूल और उदयपुर सं० का मक्खीमार सम्पादन—(क)** यह ५७वां आयतखण्ड और इसकी समीक्षा मुद्रणलिपिकर की भूल से मुद्रणप्रति में यहां न हो कर गत ४६वें आयतखण्ड के बाद है। यह दो दृष्टियों से इसी स्थान पर वांछनीय है—१. तौरत 'गिनती' पुस्तक की समीक्षा यहां अपने उचितक्रम अर्थात् बाइबल के क्रमानुसार है (द्र० उदयपुर सं० में पृ० ४८७, इस सं० में पृ० ८८५)। वहीं इसको होना चाहिए। यह अशुद्धि ३३वें संस्करण तक पीछे आयत ४६ के बाद ही अपक्रम में बनी रही और हमारे विद्वान् चद्दर तानकर सोते रहे। फिर किसी की नींद खुल गई और परोकारिणी के ३४वें सं० में इसको यहां ठीक क्रम पर रखकर सत्यार्थप्रकाश के एक भ्रष्टपाठ को ठीक कर दिया। उसके बाद सभी सं० ने इस सिद्ध और स्पष्ट अशुद्धि को विगत अपक्रम से हटा दिया और यहां रख लिया। २. आयत ४६ के बाद 'यात्रा' पुस्तक के प्रकरण में यह असंगत था, क्योंकि यह आयतखण्ड **'गिनती'** पुस्तक का है।

सम्पादकों और विचारशील पाठकों को यह संतुष्टि हो रही थी कि चलो सत्यार्थप्रकाश में से अशुद्धियां मिट रही हैं। शायद, उदयपुर सं० के कथित 'दश विद्वानों' को कोई 'इलहाम' हुआ कि 'सत्यार्थप्रकाश की इस मुद्रणलिपिकरकृत मूर्खतापूर्ण अशुद्धि में कोई गंभीर रहस्य है, जो संशोधन से लुप्त हो जायेगा।' उन्होंने उठाकर इस अशुद्धि को पुन: अब उसी अपस्थान आयत ४६ के बाद पर रख दिया। यह भी नहीं सोचा कि सारे सम्पादक इसको ठीक कर चुके हैं, उन्हीं को देख भूल सुधार कर लो।

''समुएल की दूसरी पुस्तक''[१]

५८. और उसी रात ऐसा हुआ कि परमेश्वर का वचन यह कहके नातान[२] को पहुंचा। ४। कि जा और मेरे सेवक दाऊद[३] से कह कि परमेश्वर यों कहता है कि क्या मेरे निवास के लिये तू एक घर बनावेगा। ५। क्योंकि जब से इस्राएल के सन्तानों को मिश्र से निकाल लाया, मैंने तो आज के दिन लों घर में वास न किया, परन्तु तंबू में और डेरे में फिरा किया। ६।

तौ०, समुएल की दूसरी पु०, प० ७। आ० ४।५।६॥

समीक्षक—अब [इसमें] कुछ सन्देह न रहा कि 'ईसाइयों का ईश्वर मनुष्यवत् देहधारी है।'[४] और उलाहना देता है कि मैंने बहुत परिश्रम किया, इधर-उधर डोलता फिरा, अब दाऊद घर बनादे तो उसमें आराम करूं। ईसाइयों को ऐसे ईश्वर और ऐसे पुस्तक को मानने में क्यों लज्जा भी नहीं आती? परन्तु क्या करें बेचारे फस गये सो फस ही गये।[५] अब निकलने के लिये बड़ा पुरुषार्थ करना उचित है॥५८॥[६]

(ख) **विरोधाभासी और अनुचित सम्पादन**—अनुमान है कि यह अनुचित सम्पादन ''**मूलस्वरूप को अक्षुण्ण रखने**'' की झोंक में किया गया है। इस झोंक में उदयपुर सं० के कथित 'दस सम्पादक' अपनी नीति और अपने किये कार्य को भी भूल गये—१. प्रश्न उठता है कि यदि अशुद्धियों के स्वरूप को बनाये रखना ''मूलस्वरूप'' है, तो आपने २००० से अधिक संशोधन क्यों किये? इसी समुल्लास में आयतखण्ड १० क्रमसंख्या को ग्रहण किया तथा दो बार ४८, ४८ को ४८, ४९ शुद्ध क्रम दिया। उनको भी मूलस्वरूप में रहने देते? २. समु० बारह में पृ० ४०५ का संस्कृत वाक्य ''**सर्वस्य संसारस्य....**'' उठाकर पाठक्रम बदलकर १५ पंक्ति नीचे अशुद्ध क्रम में रखा है। ३. उदयपुर सं० पृ० ४९३ पर आयतखण्ड में स्वतन्त्र रूप से एक आयत ''**बहुत-से सुअरों का झुण्ड उनसे कुछ दूर चरता था**'' की वृद्धि कर ली, जो उचित भी है। जब उदयपुर सं० ने इतने परिवर्तन किये हैं, तो यह आयतखण्ड तो साक्षात् सिद्ध रूप में अपक्रम में है, फिर इसको ठीक स्थान-क्रम पर क्यों नहीं रखा? क्या यह परस्परविरोधी कार्यनीति नहीं है?

(ग) **यह त्रुटि क्यों और कैसे हुई?**—यदि उदयपुर सं० के कथित 'दश विद्वान्' मुद्रणहस्तलेख का भलीभांति अध्ययन-विश्लेषण करते तो उन्हें ज्ञात हो जाता कि मुद्रणलिपिकर से यह अशुद्धि असावधानी से हुई है। ग्रन्थकार ने इससे पूर्व की आयतखण्ड तक तौरेत 'यात्रापुस्तक' की समीक्षा समाप्त कर पहले उचित क्रम में यह आयतखण्ड दिया था। उसके बाद ग्रन्थकार का विचार बदला और तौरेत '**यात्रा पुस्तक**' की अन्य आयतें भी समीक्ष्य अंश के रूप में जोड़ दीं, यह पृथक् हस्तलेख और पन्नों से स्पष्ट ज्ञात हो रहा है। तब मुद्रणलिपिकर '**गिनती**' पुस्तक की इस आयत को वहां से हटाकर यहां 'गिनती की पुस्तक' की समीक्ष्य आयतों के साथ अर्थात् द्विप्र० या उदयपुर सं० में पृ० ४८७ पर (इस सं० में पृष्ठ ८८५ पर) रखना भूल गया। यह भूल इस प्रकार हुई है। इसमें कोई रहस्य नहीं है, और न मूलस्वरूप है, मूलस्वरूप का भ्रममात्र है।

(घ) **विडम्बना**—देखिए हमारे विद्वानों की विडम्बनापूर्ण विचित्र सोच, अशुद्धियों को बनाये रखने, उनका संरक्षण करने को गौरव तथा गर्व का कार्य मान रहे हैं!! लिपिकरों-शोधकों द्वारा कृत त्रुटियों को अपने ऋषिवर के माथे पर लगाये रखने में ऋषिभक्ति मान रहे हैं!!! पाठकवृन्द! इतने 'श्रद्धावान्' तो आपको, पौराणिकों में भी नहीं मिलेंगे।

१. ''**समुएल की दूसरी पुस्तक**'' का बाइबल वर्णित नाम—'SAMUEL-II', यह समुएल रचित है।

२. Nathan (नातान) ३. David (दाऊद)

४. **मुद्रणलिपिकर और पं० मीमांसक, पं० भगवद्दत्त का सिद्धान्तविरुद्ध पाठ**—मुद्रणह०, द्विप्र० और द्वि०सं०, जग यह पाठ में सिद्धान्तविरुद्ध और भ्रष्ट बनाया गया है—''**अब कुछ सन्देह न रहा कि ईसाइयों का ईश्वर मनुष्यवत् देहधारी नहीं है**''। **पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक** और **पं० भगवद्दत्त जी** को छोड़ कर उदयपुर सं० सहित अन्य सभी सं० में इस पाठ का संशोधन कर लिया गया है। आश्चर्य है कि दोनों पंडितों को यह सिद्धान्तविरोध दिखाई नहीं दिया!!! यह अशुद्धि मुद्रणप्रति में किसी शोधक द्वारा की गई है।

५. **मुद्रणलिपिकर द्वारा पाठत्रुटि**—मुद्रणलिपिकर ने प्रमाद से गलत पाठ लिखा—''**फस सा फस ही गये**''। गलत पाठ देख किसी शोधक ने ''**फस सा**'' का काट दिया। इस तरह उपर्युक्त एक सुन्दर वाक्य त्रुटित रह गया।

६. **ऋषि-लेख**—''**ईसाइयों को......उचित है**'' पाठ मूलहस्त० में ऋषि द्वारा परिवर्धित है।

''राजाओं की पुस्तक'' (२)[१]

५९. और बाबुल[२] के राजा नबूख़ुदनज़र[३] के राज्य के उन्नीसवें बरस के पाँचवें मास सातवीं तिथि में बाबुल के राजा का एक सेवक नबूसरअदान[४] जो निजसेना का प्रधान अध्यक्ष था, यरुसलम[५] में आया। ८। और उसने परमेश्वर के मन्दिर और राजा के भवन और यरुसलम[६] के सारे घर और हर एक बड़े घर को जला दिया। ९। और कसदियों[७] की सारी सेना ने जो उस निजसेना के अध्यक्ष के साथ थीं, यरुसलम की भीतों को चारों ओर से ढा दिया। १०।

तौ०, रा० पु०, प० २५। आ० ८।९।१०॥

समीक्षक—क्या किया जाय, ईसाइयों के ईश्वर ने तो अपने आराम के लिये दाऊद आदि से घर बनवाया था, उसमें आराम करता होगा। परन्तु नबूसरअदान ने ईश्वर के घर को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया और ईश्वर वा उसके दूतों की सेना कुछ भी न कर सकी।

प्रथम तो, इनका ईश्वर बड़ी-बड़ी लड़ाइयाँ मारता था और विजयी होता था परन्तु अब अपना घर जला-तुड़वा बैठा। न जाने चुपचाप क्यों बैठा रहा? और न जाने उसके दूत किधर भाग गये? ऐसे समय पर कोई भी काम न आया और ईश्वर का पराक्रम भी न जाने कहाँ उड़ गया? यदि यह बात सच्ची हो तो जो-जो विजय की बातें प्रथम लिखीं सो-सो सब व्यर्थ हो गईं। क्या मिश्र के लड़के-लड़कियों[८] को मारने में ही शूरवीर बना था? अब शूरवीरों के सामने चुपचाप हो बैठा? यह तो ईसाइयों के ईश्वर ने अपनी निन्दा और अप्रतिष्ठा करा ली!! **ऐसे ही हज़ारों निकम्मी कहानियाँ इस पुस्तक में भरी हैं**॥५९॥[९]

ज़बूर दूसरा भाग

''काल के समाचार की पहली पुस्तक [इतिहास-१]''[१०]

६०. सो परमेश्वर मेरे ईश्वर ने इस्राएल पर मरी भेजी और इस्राएल में से सत्तर सहस्र पुरुष गिर गये। १४। जबूर, काल०, प० २१। आ० १४॥

समीक्षक—अब देखिये, इस्राएल के ईसाइयों के ईश्वर की लीला! जिस इस्राएल कुल को बहुत से वर दिये थे और रात-दिन जिनके पालन में डोलता था, अब झट क्रोधित होकर मरी डालके ७०००० (सत्तर सहस्र)[११] मनुष्यों को मार डाला।[१२] जो यह किसी कवि ने लिखा है, सत्य है कि—

---

१. KINGS-II, यह इस पुस्तक का बाइबल में वर्णित नाम है।
२. Babylon=(बाबुल, बाबेल, बेबीलोन) अर्थात् इराक।
३. Nebuchadnez'zar (नबूकदनेस्सर)
४. Nebuzarad'an (नबूजरदान)।
भिन्न वर्तनी—पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक द्वारा सम्पादित संस्करण में इस नाम की अंग्रेजी वर्तनी (Nebuzardan) है। ऐसे ही अन्य अनेक वर्तनियां भी वर्तमान अंग्रेजी बाइबल से भिन्न हैं।
५,६. Jerusalem (यरुसलेम, वर्तमान इजरायल देश की राजधानी)
७. Chaldeans (चालडी, कसदी)।
८. **अपप्रयोग**—दोनों हस्त०, तीनों सं० में यहां ''**लड़का-लड़कियों**'' अपप्रयोग है। दि०सं० में संशोधित है।
९, १२. **ऋषिहस्तलेख**—मूलहस्त० में ''**यदि यह.....हो गईं**'' ''**काल.....पुस्तक**'' ''**सत्तर.....डाला**'' पाठ और मुद्रणप्रति में ''**निकम्मी.......भरी हैं**'', ''**जो यह किसी.....ईश्वर की है**'' पाठ ऋषि द्वारा परिवर्धित हैं।
१०.'**काल के समाचार पुस्तक**' का बाइबल में नाम—'CHRONICLES-I'. इस त्रुटित नाम को पं० भीमसेन ने पूर्ण किया है।
११. **मरी भेजने की क्रूरता**—ईसाइयों के ईश्वर की क्रूरता का वर्णन पृ० ८५९, टि० १२, १३ देखिए।

क्षणे रुष्टः क्षणे तुष्टो रुष्टस्तुष्टः क्षणे क्षणे।
अव्यवस्थितचित्तस्य प्रसादोऽपि भयङ्करः॥

[सुभाषितरत्नभाण्डागार, प्रक० ३। श्लोक १७४]

जैसे कोई मनुष्य क्षण में प्रसन्न, क्षण में अप्रसन्न होता है अर्थात् क्षण-क्षण में प्रसन्न-अप्रसन्न होवे, उसकी प्रसन्नता भी भयदायक होती है, वैसी लीला ईसाइयों के ईश्वर की है॥ ६०॥

''ऐयूब की पुस्तक''[१]

६१. और एक दिन ऐसा हुआ कि परमेश्वर के आगे ईश्वर के पुत्र आ खड़े हुये और शैतान[२] भी उनके मध्य में परमेश्वर के आगे आ खड़ा हुआ। १। और परमेश्वर ने शैतान से कहा कि ''तू कहां से आता है?'' तब शैतान ने उत्तर देके परमेश्वर से कहा कि ''पृथिवी पर[३] घूमते और इघर-उघर से फिरते चला आता हूं। २।'' तब परमेश्वर ने शैतान से पूछा कि ''तूने मेरे दास ऐयूब को जांचा है कि उसके समान पृथिवी पर[४] कोई नहीं है, वह सिद्ध और खरा जन ईश्वर से डरता और पाप से अलग रहता है और अब लों अपनी सच्चाई को धर रक्खा है और तूने मुझे उसे अकारण नाश करने को उभारा है। ३।'' तब शैतान ने उत्तर देके परमेश्वर से कहा कि ''चाम के लिये चाम; हां, जो मनुष्य का है सो अपने प्राण के लिये देगा। ४। परन्तु अब अपना हाथ बढ़ा और उसके हाड़-माँस को छू, तब वह निःसन्देह तुझे तेरे सामने त्यागेगा। ५।'' तब परमेश्वर ने शैतान से कहा कि ''देख, वह तेरे हाथ में है, केवल उसके प्राण को बचा। ६।'' तब शैतान परमेश्वर के आगे से चला गया और ऐयूब को सिर से तलवे लों बुरे फोड़ों से मारा। ७।

जबूर, ऐयूब, प० २। आ० १। २। ३। ४। ५। ६। ७॥

समीक्षक—अब देखिये ईसाइयों के ईश्वर का सामर्थ्य कि शैतान उसके सामने उसके भक्तों को दुःख देता है!! न शैतान को दण्ड दे सकता है,[५] न अपने भक्तों को बचा सकता है और न उसके दूतों में से कोई उसका सामना कर सकता है। एक शैतान ने सबको भयभीत कर रक्खा है। और ईसाइयों का ईश्वर सर्वज्ञ भी नहीं, जो सर्वज्ञ होता तो ऐयूब की परीक्षा शैतान से क्यों कराता?॥ ६१॥

''उपदेश की पुस्तक [सभोपदेशक]''[६]

६२. ....हां, मेरे अन्तःकरण ने बुद्धि और ज्ञान बहुत देखा है। १६। और मैंने बुद्धि और बौड़ाहपन[७] और मूढ़ता जानने को मन लगाया, मैंने जान लिया कि यह भी मन का झंझट है। १७। क्योंकि अधिक बुद्धि में बड़ा शोक है और जो ज्ञान में बढ़ता है सो दुःख में बढ़ता है। १८।

जबूर, उ० पु०, प० १। आ० १६। १७। १८॥

---

१. ''**ऐयूब की पुस्तक**'' का बाइबल-वर्णित नाम—'Job' है। यह ऐयूब रचित है। २. 'Satan' (शैतान)।

३,४. **अपप्रयोग**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में दोनों स्थलों पर ''**पृथिवी में**'' अपप्रयोग है, ''**पृथिवी पर**'' शुद्ध है। **संशोधन-पुष्टि**—एक पंक्ति पूर्व ''**पृथिवी पर**'' शुद्ध प्रयोग द्रष्टव्य है।

५. **त्रुटित आवश्यक क्रिया**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में क्रियाप्रयोग त्रुटित होने से वाक्य पूर्ण नहीं होता, अत: '**दे सकता है**' पाठ-परिवर्धन व्याकरण की दृष्टि से आवश्यक है। **ऋषि-लेख**—आगे ''**और.......करता**'' पाठ मूलह० में ऋषिलिखित है।

६. '**उपदेश की पुस्तक**' का बाइबल- वर्णित नाम—'ECCLESIASTES'। ७. **बौड़ाहपन**—पागलपन, बावलापन।

समीक्षक—अब देखिये! [यहाँ] जो बुद्धि और ज्ञान पर्यायवाची हैं, उनको दो मानते हैं। और बुद्धि की वृद्धि में शोक और दु:ख मानना, विना अविद्वान् के ऐसा लेख कौन लिख सकता है? इसलिये यह '**बाइबल**' ईश्वर की बनाई तो क्या किसी विद्वान् की भी बनाई नहीं है॥ ६२ ॥

यह थोड़ा-सा **तौरेत** और **ज़बूर**[१] के विषय में लिखा। इसके आगे थोड़ा-सा '**मत्ती-रचित इंजील**'[२] आदि के विषय में लिखा जायगा। अब जिसको ईसाई[३] लोग बहुत प्रमाणभूत मानते हैं, जिसका नाम,

१. **ज़बूर**—'ज़बूर' यहूदियों द्वारा मान्य वह पुस्तक है जो इनके पैगम्बर दाऊद पर उतरी थी। 'The PSALMS'=भजन संहिता 'ज़बूर' के अन्तर्गत है। बाइबल के तौरेत के अन्तर्गत है किन्तु पृथक् दर्शाने के लिए इसका अलग नाम से उल्लेख कर दिया जाता है। दाऊद प्रसिद्ध व्यक्ति था। ईसा मसीह इसी के वंश में हुआ।

२. **अव्यवस्थित वर्तनी 'इंजील' नाम की**—'इंजील' नाम की हिन्दी वर्तनी अव्यवस्थित है। हमें दोनों हस्त० और तीनों सं० में चार वर्तनियां मिलती हैं। **स्वामी वेदानन्द जी सरस्वती** और **पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक, पं० भगवद्दत्त जी, उदयपुर सं०** आदि सभी सम्पादकों के संस्करणों का भी यही बुरा हाल है। विस्तारभय से सबके प्रमाण नहीं दिये जा रहे हैं। देखिए—

१. **इञ्जील**—मूलप्रति सं०, पृ० ६०४, ६२३, ६२६, ६३९, ६४६; द्वि० सं०, पृ० ३४०, ३५०, ३५१, ३५९, ३६२

२. **इंजील**—मूलप्रति सं०, पृ० ६०४, ६०७; द्वि० सं०, पृ० ३४१। ३. **इन्जील**—मूलप्रति सं०, पृ० ६१३।

४. **अञ्जील**—मूलप्रति सं०, पृ० ७१२; द्वि० सं०, पृ० ३९६।

वर्तमान में इसकी वर्तनी '**इंजील**' प्रचलित है अत: इनमें से उसे ही भाषात्मक एकरूपता और मानकता की दृष्टि से सर्वत्र ग्राह्य माना है। 'इंजील' यूनानी शब्द है और इसकी यूनानी वर्तनी Euanggliow है। इसका अर्थ है—'शुभ सूचना' या 'सुसमाचार'। इसको गॉस्पॅल (Gospel) भी कहते हैं।

३. **ईसा (यीशू) तथा ईसाई मत का संक्षिप्त परिचय**—ऐसा माना जाता है कि ईसाई मत के संस्थापक **ईसा मसीह** (यीशू मसीह, Jesus) एक यहूदी परिवार में ६ या ५ ईसा पूर्व २५ दिसम्बर को उत्पन्न हुए थे। 'ईसा' शब्द इब्रानी भाषा के 'येशूआ' का अपभ्रंश है। इसका अर्थ है—'मुक्तिदाता'। यहूदी धर्मग्रन्थ में 'मशीअह' (अपभ्रंश-मसीह) मुक्तिदाता की पदवी है, इसका अर्थ है—'अभिषिक्त'। यूनानी भाषा में इसके लिए 'ख्रीस्तोस' शब्द प्रयुक्त होता है। इस कारण पश्चिमी जगत् में ईसा को 'यीशु ख्रीस्त या ख्रीष्ट' कहा जाता है। इनकी जाति का नाम '**एसराएल**' था और दाऊद का वंशज था। इनके दादा का नाम याक़ूब (Jacob), पिता का नाम युसुफ (Joseph) और माता का नाम **मेरी या मरियम** (Mary) था। यूसुफ से जब मरियम की मंगनी हुई तब वह स्वयं को ईश्वरदूत कहनेवाले किसी व्यक्ति से गर्भवती थी। उसको जो विवाह पूर्व पुत्र हुआ, उसी का नाम यीशू रखा गया, ऐसा बाइबल में लिखा है (मत्ती इंजील, आयत १८)। बाद में इस गर्भस्थिति को सम्मानित बनाने के लिए ईसा के अनुयायियों ने उसके साथ 'ईश्वरप्रदत्त गर्भ' की कल्पना कर ली। ईसा को 'ईश्वरपुत्र' प्रचारित कर दिया। यह तब हुआ जब ईसा मसीह एक मतप्रवर्तक पैगम्बर के रूप में स्थापित हो चुका था।

ईसा के माता-पिता का परिवार गरीब था, जो **बढ़ई** का काम करता था और भेड़-बकरियां चराता था। बाइबल में अनेक स्थलों पर उसे '**चरवाहा**' कहा गया है। ईसा का जन्म फिलिस्तीन राज्य के यहूदिया (जुड़िया) प्रान्त के बेथलहेम (Bethlehem) गाँव की एक पशुशाला (अस्तबल या गोशाला) में हुआ था। ईसा के कई भाई और बहनें थीं। (मत्ती० पर्व० ६, आयत ३)

ईसा के जन्म के बाद, राजा हेरोद के अत्याचार के भय से, उनका परिवार मिश्र में आकर बस गया। कुछ समय पश्चात् मिश्र से लौटकर गलील (Galile) देश के नाजरथ या नासरत (Nazarath) गांव में रहने लगे और ईसा अपना पारिवारिक व्यवसाय करने लगे। यहां मरियम का मायका था। इस निवास के कारण ही ईसा को '**ईसा गलीली**' अथवा '**ईसा नासरी**' भी कहा जाता है। ईसा जब बारह वर्ष का हुआ तो उसके माता-पिता उसे यरुसलम (Jerusalem) के मन्दिर में ले गये, जहां से वह एक रात भागकर कहीं चला गया और तीस वर्ष की आयु तक उसका पता ही नहीं चला। तीस वर्ष की आयु में वह पुन: लौटा। यही कारण है कि बारह से तीस वर्ष के मध्य की उसके जीवन-विषयक जानकारी बाइबल आदि किसी ग्रन्थ में नहीं मिलती। किन्तु एक मत यह भी है कि तीस वर्ष की अवस्था तक वह बढ़ईगिरी करता रहा। फिर वह उस कार्य को छोड़कर धर्मोपदेशक बन गया। धीरे-धीरे वह स्वयं को 'ईश्वरपुत्र' घोषित करने लगा।

कुछ लेखकों का मानना है कि इस बीच ईसा शिक्षाप्राप्ति आदि के लिए अनेक स्थानों पर घूमा। एक मत यह है कि उस समय फिलिस्तीन, सीरिया, मिश्र आदि में एक 'एसियन सम्प्रदाय' (Essenese) का प्रचार था जिसके मठ भी स्थापित थे। ये लोग थे तो यहूदी, किन्तु यहूदियों में व्याप्त घृणित बलिप्रथा, शराब, मांस, अनाचार और अन्य कुरीतियों के कारण यहूदी मत से विमुख हो बौद्धधर्म के अहिंसात्मक विचार से प्रभावित होकर सन्तोषपूर्वक भिक्षुमय जीवन व्यतीत करते थे। उनका एक बड़ा

मठ 'मुरदार' नामक समुद्र के पश्चिमी किनारे पर 'नेगदी' नामक स्थान पर (अरब और फिलिस्तीन के मध्य) स्थित था। इनके बौद्ध प्रभावित मठों में रहकर ईसा ने शिक्षा प्राप्त की, वहां से इसको ईसाइयत के मूल सिद्धान्त 'अहिंसा' की प्रेरणा प्राप्त हुई। ईसा से काफी समय पूर्व बौद्ध भिक्षु पश्चिमी देशों में जाने-आने लगे थे और अपना संदेश उन लोगों को देने लगे थे।

ईसा के आचरण, सिद्धान्तों तथा शिक्षाओं पर बौद्धमत का पर्याप्त प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। जैसे—अहिंसा, बुद्ध के ईश्वररूप के समान ईसा को ईश्वरपुत्र मानना, दीक्षा-संस्कार करके सम्प्रदाय में सम्मिलित करना, जाति-पांति का विचार न करना, बुद्ध के समान चोरों, डाकुओं आदि को भी शरण में लेना, भिक्षुओं के समान प्रचारार्थ शिष्यों का समूह तैयार करना। बौद्ध मत के तीन आधार हैं—बुद्ध में विश्वास, धर्म का आचरण, संघ में दीक्षित होना। उसी प्रकार ईसाई मत में भी तीन मूलभूत विश्वास हैं—ईश्वर पिता है, ईसा उसका इकलौता पुत्र है, ईश्वर की पवित्र आत्मा का उसमें प्रवेश (मरियम के कौमार्यकालीन गर्भ में) हुआ था, इन तीन बातों में विश्वास करना, इत्यादि अनेक समानताओं को देखकर इस अनुमान की पुष्टि होती है कि ईसा ने कहीं से बौद्ध धर्म की सामान्य शिक्षा अवश्य प्राप्त की थी। यह मत तो अनुमान ही नहीं अपितु लिखित प्राप्त होता है कि ईसा भारत आये थे और यहां रहकर उन्होंने बौद्धधर्म की शिक्षा प्राप्त की थी। इस बात का स्पष्ट उल्लेख नेपाल के एक बौद्धग्रन्थ में मिलता है। उस ग्रन्थ का फ्रांसिसी भाषा में अनुवाद १८९४ ईस्वी में निकोलस नोटोवस नामक यात्री ने प्रकाशित कराया था।

तीस वर्ष की अवस्था में ईसा **नासरत** शहर में लौट गये। वहां योहन्ना (या योहन, John) नामक व्यक्ति से बपतिस्मा (ईसाई-दीक्षा संस्कार) लिया। कुछ दिन बाद ईसा को जानकारी मिली कि योहन्ना को वहां के राजा ने जेल में डाल दिया है। ईसा डरकर गलील देश में चले गये और वहां घूम-घूम कर अपने उपदेश-सन्देश देने लगे। वहां भी यहूदी धर्म प्रचलित था और रोमनों के राज्यपाल पिलातुस का शासन था। पिलातुस ईसा को दण्ड देना नहीं चाहता था किन्तु यहूदी पुरोहितों ने ईसा को धर्मविरोधी और स्वतन्त्र धर्म-प्रवर्तक कहकर दण्डित करने का दबाव बनाया। तब ईसा के बारह प्रमुख शिष्यों में से यहूदा या जुडास इसकरियोती (Judas Iscriat) ने तीस चांदी के सिक्कों के लालच में ईसा को पकड़वा दिया। ईसा मसीह को शिष्य के षड्यन्त्र का आभास दो दिन पूर्व हो गया था। ईसा पहली रात पकड़े जाने के भय से बहुत घबरा गये थे तथा उन्हें रातभर नींद नहीं आई। उन्हें इस बात का भी दु:ख हो रहा था कि मौत की आशंका की जानकारी देने के बावजूद उनके शिष्य उनके साथ नहीं जागे और निश्चिन्त होकर सोते रहे। उन्होंने ईश्वर से रात में तीन बार प्रार्थना की थी कि किसी प्रकार यह प्राणान्त का अवसर टल जाये। बाइबल में लिखा है कि एक बार वे सदमे के कारण बेहोश होकर मुंह के बल गिर पड़े थे (मत्ती० पर्व० २६, आ० ३६-४६) इसी व्याकुलता की स्थिति में पकड़ने वाले शासकीय लोग उसके शिष्य यहूदा की अगवानी में आ पहुंचे। उस समय ईसा यरुसलम की जैतून (ओलिव) नामक पहाड़ी पर ठहरा था। ईसा को पकड़ा जाता देख शेष शिष्य भाग खड़े हुए। (मत्ती० २६.५६) आसपास दिखे एक-दो शिष्यों ने कसम खाकर यह कह दिया कि हम ईसा को जानते ही नहीं।

ईसा पर दण्डाधिकारी ने मुख्यत: तीन आरोप लगाये—१. वह स्वयं को ईश्वरपुत्र घोषित करके 'यहोवा' ईश्वर का अपमान करता है। इसका उत्तर ईसा ने कुछ नहीं दिया। २. ईसा स्वयं को यहूदियों का ईश्वरप्रेषित एकमात्र शासक कहता है और इस प्रकार स्वतन्त्र शासन की बात करके वहां स्थापित रोमन शासन के विरुद्ध विद्रोह फैलाता है। इस पर ईसा ने अस्पष्ट-सा उत्तर दिया कि 'मेरा राज्य भिन्न है।' ३. वह रोगियों को आशीर्वाद देकर स्वस्थ करने, पत्थर को रोटियों में बदलने आदि के नाम पर चमत्कार की आड़ में पाखण्ड फैलाता है और इस तरह जनता को गुमराह करता है। इस प्रकार धर्म-निन्दा, राजद्रोह और पाखण्ड फैलाने के अपराध में ईसा को ३३ वर्ष की आयु में २९ या ३० ईस्वी की वसन्त ऋतु में शुक्रवार के दिन यरुसलम के बाहर 'गोलगथा' अर्थात् वधस्थान पर दो डाकुओं के साथ सूली (क्रॉस) पर लटका दिया गया। बाइबल में लिखा है कि उसने परमेश्वर को पुकार कहा कि आपने मुझे क्यों त्याग दिया? और चिल्ला-चिल्ला कर बड़े कष्ट से प्राण त्यागे। यह कष्टपूर्ण दृश्य ही लोगों के लिए भावोत्तेजक और प्रेरक बन गया।

बाइबल का संकलन ईसाई मत का प्रचार-प्रसार—ईसा लगभग दो-तीन वर्ष ही अपने मत का प्रचार कर सके। उन्होंने जो कुछ कहा वह मौखिक था। ईसा के जीवन और ईसाई मत की शिक्षाओं के विषय में जो कुछ बाइबल में मिलता है वह उसके शिष्यों ने अनुश्रुति के आधार पर काफी बाद में लिखा है और उसमें भी परिवर्तन-संशोधन होता रहा है। ईसाई लेखकों से यह जानकारी मिलती है कि प्रथम शती में बाइबल का संकलन आरम्भ हुआ और चौथी शती में पूर्ण हुआ। बाइबल का 'इंजील' भाग ईसा मसीह की रचना नहीं है। '**बाइबल**' यहूदियों और ईसाइयों का सम्मिलित धर्मग्रन्थ है। यह ग्रन्थ पहले अन्य-अन्य नामों से प्रसिद्ध रहा। चौथी शती में ख्रीसोष्टम नामक सन्त ने इसको 'बाइबल' नाम दिया। तब से यही नाम चल रहा है। बाइबल के मुख्य दो भाग हैं—**१. ओल्ड टेस्टामेंट (तौरेत), २. न्यू टेस्टामेंट (इंजील)।** ओल्ड टेस्टामेंट को यहूदी अपना धर्मग्रन्थ मानते हैं और न्यू टेस्टामेंट को ईसाई। पहले भाग की भाषा 'इब्रानी' (हिब्रू) है, दूसरे की 'कोइने' नामक यूनानी। न्यू टेस्टामेंट की चार इंजीलें इस कारण ईश्वरीय मानी जाती हैं कि उनमें श्रुति-परम्परा से संग्रहीत ईसा के उपदेश हैं, किन्तु वे यथावत् ईसा के उपदेश नहीं हैं, अत: उन पर यह विवाद समय-समय पर ईसाइयों में होता रहता है कि ये ईश्वरीय पुस्तक है या नहीं। क्रमश: वे चार हैं—१. मार्करचित 'मरकस इंजील', २. लूकरचित 'लूक इंजील', ३. मैथ्यूरचित 'मत्ती-इंजील', ४. यूहन्ना रचित 'यूहन्ना

'इंजील' रक्खा है, उसकी परीक्षा थोड़ी-सी लिखते हैं कि यह कैसी है—

''मत्ती-रचित इंजील''[१]

६३. यीशु ख्रीष्ट[२] का जन्म इस रीति से हुआ—उसकी मां मरियम[३] की यूसुफ[४] से मंगनी हुई थी

इंजील'। इनमें अनेक परस्पर-विरोधी और असम्भव बातें हैं। 'न्यू टेस्टामेंट' को बहुत वर्षों बाद ईश्वरीय ग्रन्थ के रूप में मान्यता मिली। प्रारम्भ में ईसाई 'ओल्ड टेस्टामेंट' को ही ईश्वरीय ग्रन्थ मानते थे, वही ईसाई आज उसे ईश्वरीय ग्रन्थ ही मानने को तैयार नहीं। प्रोटेस्टैंट सम्प्रदाय के लोग ६-७ ग्रन्थों को अप्रामाणिक मानकर अपने 'बाइबल' में सम्मिलित नहीं करते। इस प्रकार पूर्वार्ध कैथोलिक बाइबल में ४५, प्रोटेस्टैंट में ३९ तथा उत्तरार्ध में एकमत से २७ पुस्तकें हैं।

ईसा के अनुयायियों ने अनेक कष्ट उठाकर और घोर अत्याचार सहन करके भी ईसाइयत का प्रचार जारी रखा। यहूदियों, रोमनों और तुर्क मुसलमानों ने ईसाइयों पर भयंकर अत्याचार किये। मुसलमानों से इनके सात धर्म-युद्ध इतिहास में प्रसिद्ध हैं। जिनको 'क्रूसयुद्ध' भी कहा जाता है। ये युद्ध अपने धर्म की पवित्र भूमि फिलिस्तीन और उसकी राजधानी यरुसलम में स्थित ईसा की समाधि के गिरजाघर को मुसलमानों से मुक्त कराने के लिए सन् १०६५-१२९२ के मध्य लड़े गये थे।

बालकों का धर्मयुद्ध—धार्मिक अन्धविश्वास और कट्टरपन का विश्व में यह एक अनन्य विचित्र उदाहरण है। सन् १२९२ में गांव स्तेफां (फ्रांस) के एक किसान ने घोषणा की कि मुझे ईश्वर ने कहा है कि मुसलमानों की पराजय बालकों की सेना से होगी। इस अन्धविश्वास से प्रेरित होकर १२ वर्ष तक की अवस्था के ३०,००० बालक-बालिकाएं सात जहाजों में भरकर मुसलमानों से युद्ध के लिए निकल पड़े। इनमें से दो जहाज समुद्र में डूब गये, शेष को सिकंदरिया में दास बनाकर बेच दिया, जो १७ वर्ष बाद मुक्त हो पाये। दूसरा एक दल २०,००० बालकों का फिर जर्मनी से युद्ध के लिए चला। एक बड़े पादरी ने समझाकर उन्हें जेनेवा से वापिस लौटा दिया। लौटते समय उनमें से बहुत-से बच्चे पहाड़ों में मर गये। (हिन्दी विश्वकोश—नागरी प्रचारिणी सभा, काशी, भाग २, पृ० ४६)

ईसाई मत का नियोजित और व्यापक प्रचार तब हुआ जब ३१३ ईस्वी में रोमन **सम्राट् कान्स्टेन्टाइन** ईसाई धर्म का अनुयायी बना और उसने तथा उसके बाद सम्राट् **थियोडोसियस** ने इसको राज्यधर्म घोषित किया। राज्य संरक्षण पाकर यह बढ़ता ही चला गया। इसके प्रचार-प्रसार के लिए राजकोष खुल गया। ज्यों-ज्यों ईसाई धर्म का विस्तार हुआ इनमें भी दर्जनों शाखाएं बन गईं। ईसा मसीह के उपदेशों के विपरीत उनमें परस्पर युद्ध और रक्तपात होने लगे। अपने मत के प्रसार के लिए इसाइयों ने भी दूसरे लोगों पर भयंकर अत्याचार किये जैसे कि भारत के इतिहास में अंकित हैं और सर्वज्ञात हैं। ईसाई मत अपने मूल आधार 'अहिंसा' से कभी का भटक चुका है। जिस ईसा ने यरुसलम के यहूदी मन्दिर में होने वाली पशु-पक्षियों की बलि का विरोध कर यहूदियों का विरोध मोल लिया था, बाद में उसी के नाम पर बलियां दी जाने लगीं। वही अत्याचार ईसाई धर्म में होने लगे। इस समय ईसाई मत की प्रसिद्ध शाखाएं हैं—ग्रीक, कैथोलिक, प्रोटेस्टैन्ट, रिफॉर्म्ड चर्च, वैप्टिस्ट चर्च, मैथोडिस्ट आदि। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसी शाखाएं भी हैं जिन्होंने बिल्कुल ही भिन्न विचारधारा को अपनाया है। मोनोफिज शाखा के लोग ईसा की मूर्ति बनाकर पूजा करते हैं। नेसटोरियन शाखा वाले ईसा को 'पैगम्बर' नहीं, केवल 'मानव' के रूप में स्वीकार करते हैं।

ईसाई मत को प्रचलित हुए सन् १९०८ में १८७८ से भी कम वर्ष हुए हैं। ईसा ने तीस वर्ष की अवस्था में इस मत का प्रचार आरम्भ किया था, अत: १९०८ में से तीस वर्ष घटाने पर ही ईसाई मत के आरम्भ का सही समय १८७८ वर्ष आता है।

१. **Matthew (मत्ती)** ईसा का शिष्य, जो ईसा के बारह शिष्यों में से एक था। इसका पद 'टैक्स क्लेक्टर' दिया गया है। **'मतीरचित इंजील'** पुस्तक का बाइबल वर्णित नाम है—'MATTHEW'. यह मत्तीरचित है।

२. **Jesus Christ** (जीसस क्राइस्ट, यीशु ख्रीष्ट), ये ईसा के नाम हैं।

३. **Mary (मेरी, मरियम)** ईसा की कुंवारीमाता। मरियम से ईसा के जन्म का यही इतिहास कुरान में भी है। देखिए, चौदहवें समु० में आयत खण्डसंख्या ५३ में।

'मरियम' की अव्यवस्थित वर्तनी—ग्रन्थ में सभी सं० में अव्यवस्थित रूप से इस नाम की तीन वर्तनियां हैं—

१. मूलप्रति सं० में—मरियम (पृ० ६०४, ६०५, ६५३), **मर्यम** (पृ० ६९३, ७१७), **मर्य्यम** (पृ० ६६७)।

२. द्वितीय सं० में—मरियम (पृ० ३४०, ३६६), **मर्यम** (पृ० ३८६), **मर्य्यम** (पृ० ३७३)।

भाषागत व्यवस्था और मानकता के लिए इनमें से बाइबल के हिन्दी अनुवादों में स्वीकृत **''मरियम''** वर्तनी स्वीकार की गई है। मरियम का वर्णन कुरान में भी आता है। द्र० सत्यार्थप्रकाश समु० १४ के आयतखण्ड ५३, ११६, १२०।

४. **युसुफ** (Joseph) यह मरियम का पति था, किन्तु ईसा का जनक यह नहीं था। पिता के रूप में इसका केवल नाम ही प्रचलित है। इस नाम की प्रचलित वर्तनी 'यूसुफ' है।

परन्तु उनके इकट्ठे होने के पहिले वह देख पड़ी कि 'पवित्र-आत्मा' से गर्भवती है। १८। ....देखो, परमेश्वर के एक दूत ने स्वप्न में उसे दर्शन दे कहा—''हे दाऊद के सन्तान यूसुफ![१] तू अपनी स्त्री मरियम को यहां लाने से मत डर, क्योंकि उसको जो गर्भ रहा है सो 'पवित्र-आत्मा' से है। २०।''

मत्तीरचित इंजील, प० १। आ० १८। २० ॥

समीक्षक—इन बातों को कोई विद्वान् नहीं मान सकता कि जो प्रत्यक्षादि प्रमाण और सृष्टिक्रम से विरुद्ध हैं। इन बातों का मानना मूर्ख मनुष्यों,[२] जंगलियों का काम है, सभ्य विद्वानों का नहीं। भला, जो परमेश्वर का नियम है उसको कोई तोड़ सकता है? और जो परमेश्वर भी अपने[३] नियम को उलटा-पलटा करे तो उसकी आज्ञा को कोई न माने, और वह भी सर्वज्ञ और निर्भ्रम न रहै।[४] **ऐसे तो जिस-जिस कुमारिका के गर्भ रह जाय, तब सब कोई ऐसे कह सकते हैं कि इसमें गर्भ का रहना ईश्वर की ओर से है। और झूठ-मूठ कह दे कि परमेश्वर के दूत ने मुझको स्वप्न में कह दिया है कि यह गर्भ परमात्मा की ओर से है।** जैसा यह असम्भव प्रपंच रचा है, वैसा ही सूर्य से कुन्ती का गर्भवती होना भी पुराणों में असम्भव लिखा है।[५] ऐसी-ऐसी बातों को **'आँख के अन्धे गाँठ के पूरे'** लोग मानकर भ्रमजाल में गिरते हैं। यह ऐसी बात हुई होगी कि किसी पुरुष के साथ समागम होने से मरियम गर्भवती हुई होगी,[६] उसने वा किसी दूसरे ने ऐसी असम्भव बात उड़ा दी होगी कि इसमें गर्भ ईश्वर की ओर से है॥ ६३ ॥

६४.[७] यीशु बपतिस्मा[८] लेके तुरन्त जल से ऊपर आया, और देखो! उसके लिये स्वर्ग खुल गया और उसने ईश्वर के आत्मा को कपोत की नांईं उतरते और अपने ऊपर आते देखा। १६।

मत्ती इं०, प० ३, आ० १६ ॥

समीक्षक—भला, ईश्वर का आत्मा आंख से कभी दीख सकता है? और व्यापक ईश्वर कपोत की नाईं न कभी उतरता, न चढ़ता है। और जो चढ़ता-उतरता है, वह ईश्वर ही नहीं होता॥ ६६ ॥

---

१. **अपवर्तनी**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में ''**यूसफ़**'' अपवर्तनी है, '**यूसुफ**' शुद्ध है।

२. **अपप्रयोग**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में ''**मनुष्य**'' एकवचनान्त अपप्रयोग है, यहां बहुवचनान्त अपेक्षित है।

३. **त्रुटित पद**—द्वि०सं० में यहां ''**अपने**'' पद त्रुटित है। मूलप्रति में है। आवश्यक होने से ग्राह्य है।

४. **प्रमादी मुद्रणलिपिकर द्वारा अपपाठ**—प्रमादी मुद्रणलिपिकर ने मूलह०, मूलसं० के महर्षिप्रोक्त सही पाठ को बिगाड़कर ''**वह भी सर्वज्ञ और निर्भ्रम है**'' असंगत बना दिया। यही अपपाठ द्विप्र०, वेस, जग, भद, युमी, विस आदि में है।

५. **पुराणों में कुन्ती की असम्भव कथा**—जैसे मरियम को बहका-फुसला कर उसके न चाहते हएु भी किसी पाखंडी ने स्वयं को ईश्वरदूत कहकर उससे समागम किया जिसके फलस्वरूप 'ईसा' का जन्म हुआ और जन्म के बाद उस अवैध कार्य को परमेश्वर-प्रदत्त गर्भ और ईसा को ईश्वर-पुत्र का गौरव प्रदान किया गया, ठीक उसी प्रकार पुराणों में कुमारिका अवस्था में कुन्ती से उत्पन्न अवैध पुत्र कर्ण को देवता-प्रदत्त गर्भ और सन्तान कहा गया है। इसको वैध गर्भ प्रसिद्ध करने के लिए अनेक कथाओं की कल्पना कर डाली है। पुराणों में गपोड़ा है कि एक बार अपने यहां आये ऋषि दुर्वासा की इसने बहुत सेवा की। सेवा से प्रसन्न ऋषि ने इसको वरदान दिया कि 'जब तू चाहेगी, किसी भी देवता का आह्वान कर सकेगी और उससे पुत्र उत्पन्न कर सकेगी।' इस वरदान या विद्या की परीक्षा करने के लिए एक बार कुन्ती ने सूर्य देवता का आह्वान किया और कुमारिका अवस्था में उससे '**कर्ण**' नामक पुत्र प्राप्त किया। (द्रष्टव्य, भागवत पुराण ९.२३ अ० ब्रह्माण्ड ३.१७.१५२-१५७ आदि।) यह असम्भव है।

६. **ऋषिहस्तलेख**—मुद्रणप्रति में ''**मरियम गर्भवती हुई होगी**'', मूलह० में ''**न कभी.....होता**'' पाठ ऋषि द्वारा परिवर्धित है।

७. **ऋषि के निर्देश का उल्लंघन**—मूलप्रति में मुद्रणलिपिकर के लिए इस आयत वाले पन्ने के ऊपर निर्देश लिखा है—''**पत्र (=पत्रे) फुटकर हैं यथाक्रम से पूर्व-आयत लिखी जायंगी।**'' पन्नों पर ये आयतखण्ड हैं—६४, ६६, ७०, ७१, ७९, ८१, ८२;

६५. तब आत्मा यीशु को जंगल में ले गया कि शैतान से उसकी परीक्षा की जाय। १। वह चालीस दिन और चालीस रात उपवास करके पीछे भूखा हुआ। २। तब परीक्षा करनेहारे ने कहा कि ''जो तू ईश्वर का पुत्र है तो कह दे कि ये पत्थर रोटियां बन जावें। ३।''

मत्ती इं०, प० ४। आ० १। २। ३॥

समीक्षक—इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि ईसाइयों का ईश्वर सर्वज्ञ नहीं, क्योंकि जो सर्वज्ञ होता तो उसकी परीक्षा शैतान से क्यों कराता? स्वयं जान लेता। भला, किसी ईसाई को आजकल चालीस रात-दिन भूखा रक्खें तो कभी बच सकेगा? और इससे यह भी सिद्ध हुआ कि न वह ईश्वर का बेटा [था][1] और न कुछ उसमें करामात अर्थात् सिद्धि थी। नहीं तो शैतान के सामने पत्थर को रोटियां[2] क्यों न बना देता? और आप भूखा क्यों रहता? और सिद्धान्त यह है कि जो परमेश्वर ने पत्थर बनाये हैं, उनको रोटी कोई भी नहीं बना सकता। और ईश्वर भी पूर्वकृत नियम को उलटा नहीं कर सकता, क्योंकि वह सर्वज्ञ [है] और उसके सब काम विना भूल-चूक के हैं॥ ६४॥[3]

६६. जब यीशु ने सुना कि योहन[4] बन्दीगृह में डाला.....। १२। मत्ती इं०, प० ४। आ० १२॥

समीक्षक—जब 'सुनकर' योहन का बन्दीगृह में पड़ना जाना, तो [ईसाइयों का ईश्वर] सर्वज्ञ नहीं; क्योंकि सुनके जानना असर्वज्ञ जीवों का काम है। सुनके जानना, जानके भूलना यह ईश्वर का स्वभाव नहीं, किन्तु जीव का स्वभाव है॥ ६५॥

६७. उसने उनसे कहा—''तुम मेरे पीछे आओ, मैं तुमको मनुष्यों के मछुवे बनाऊंगा। १९।'' वे तुरन्त जालों को छोड़के उसके पीछे हो लिये। २॥ मत्ती० इं०, प० ४। आ० १९। २०॥[5]

समीक्षक—विदित होता है कि इसी पाप अर्थात् जो '**तौरेत**' में 'दश-आज्ञाओं' में लिखा है[6] कि **'सन्तान लोग अपने माता-पिता की सेवा और मान्य करें जिससे उनकी उम्र बढ़े' और ईसा ने न**

किन्तु मुद्रणलिपिकर ने कुछ को लिख दिया और ६४,६६,७१,७२,८३ आयतों को त्रुटित छोड़ दिया। ऐसे मक्कार थे महर्षि के लिपिकर! आदिशोधकों ने भी ठीक से मिलान नहीं किया। सभी द्वि०सं० में अभी वे आयतें ग्रहण नहीं की हैं।

८. **बपतिस्मा**—ईसाई बनने का संस्कार। पादरी आयत बोलकर ईसाई बनने के इच्छुक व्यक्ति पर जल के छींटे देता है। उसके बाद उस व्यक्ति को ईसाई मत में दीक्षित मान लिया जाता है। यह स्नान का अवशिष्ट रूप है।

१. **त्रुटित आवश्यक क्रिया**—दोनों हस्त० और तीनों संस्करणों में यहां '**था**' क्रिया त्रुटित है। इसके बिना वाक्य पूर्ण नहीं होता।

२. **श्रवणभ्रान्ति से अपपाठ**—दोनों सं० में ''**पत्थर की रोटियां**'' अपपाठ है। आयत की भाषा के अनुसार यहां ''**पत्थर को रोटियां क्यों न बना देता?**'' पाठ उपयुक्त होगा। आयत में स्पष्ट लिखा है—''**पत्थर रोटियाँ बन जावें,**'' पत्थर की रोटियां नहीं। अगले ही वाक्य में ''**पत्थर बनाये हैं उनको रोटी कोई नहीं बना सकता**'' शुद्ध प्रयोग है। यही अपपाठ वेस, भेद, उदयपुर सं० में है। मुद्रणह०, द्विप्र० में कारक प्रत्यय त्रुटित है। **पं० मीमांसक जी** का पाठ शुद्ध है।

३. **त्रुटित आवश्यक क्रिया**—दोनों हस्त०, तीनों सं० में '**है**' क्रिया त्रुटित है। **रेखांकित पाठ ऋषि-लेख में परिवर्धित हैं।**

४. **योहन (John) योहन्ना**—यह वह व्यक्ति था जिससे नासरत शहर में ईसा ने 'बपतिस्मा'='नये धर्म का दीक्षा संस्कार' लिया था। स्वयं को पैगम्बर घोषित करने और नये धर्म का दीक्षा-संस्कार=बपतिस्मा देने के अपराध में जब उसको राजा ने कारागार में डाल दिया तो इस समाचार को सुनकर ईसा डरकर नासरत शहर से गलील देश चला गया। फिर वहां से जबूलून और नपताली देश में जाकर रहने लगा और प्रचार करने लगा।

५. **अशुद्ध उद्धरण संख्या**—मूलह० मुद्रणह०, द्विप्र०, वेस, भद में यहां २१ संख्या अधिक है, जो अशुद्ध है।

६. **दश आज्ञाएं**—बाइबल की 'निर्गमन' पुस्तक के पर्व २० में ये आज्ञाएं हैं। आयत १२में माता-पिता की सेवा करने से दीर्घायु-प्राप्ति कही है। ईसा ने वह सेवा नहीं की अत: चिरंजीवी न रहा।

अपने माता-पिता की सेवा की और दूसरों को भी माता-पिता की सेवा से छुड़ाया,[१] इसी अपराध से चिरंजीवी न रहा।[२] और यह भी विदित हुआ कि ईसा ने मनुष्यों को[३] फसाने के लिये एक मत चलाया है कि जाल में मच्छी के समान मनुष्यों को स्वमत के[४] जाल में फसाकर अपना प्रयोजन साधें।

जब ईसा ही ऐसा था तो आजकल के पादरी लोग अपने जाल में मनुष्यों को फसावें तो क्या आश्चर्य है? क्योंकि जैसे बड़ी-बड़ी और बहुत मच्छियों को जाल में फसानेवाले की प्रतिष्ठा और जीविका अच्छी होती है, इसी से जो बहुतों को अपने मत में फसा ले, उसकी अधिक प्रतिष्ठा और जीविका होती है। इसी से ये लोग, जिन्होंने वेद और शास्त्रों को न पढ़ा, न सुना, उन बेचारे भोले मनुष्यों को अपने जाल में फसाके, उनके मा-बाप, कुटुम्ब आदि से पृथक् कर देते हैं, **इससे सब विद्वान् आर्यों को उचित है कि आप इनके भ्रमजाल से बचें और अन्य भोले-भाले अपने भाइयों को भी बचावें॥ ६७॥**

६८. तब यीशु सारे गलील[५] देश में उनकी सभाओं में उपदेश करता हुआ और राज्य का सुसमाचार प्रचार करता हुआ और लोगों में हर एक रोग और हर एक व्याधि को चंगा करता हुआ फिरा किया। २३।....सब रोगियों को जो नाना प्रकार के रोगों और पीड़ाओं से दुःखी थे और भूतग्रस्तों और मृगी-वालों[६] और अर्धांगियों को उसके पास लाये और उसने उन्हें चंगा किया। २४।

मत्ती० इं०, प० ४। आ० २३। २४॥[७]

समीक्षक—जैसे आजकल पोपलीला, भूत[८] निकालने[९] के मन्त्र और भस्म की चुटकी देने से

१. **अपपाठ**—दोनों हस्त० और तीनों संस्करणों में यह अप-वाक्य रचना प्रचलित है—"**दूसरों को भी माता-पिता की सेवा से छुड़ाये।**" यह ऋषि की भाषा शैली नहीं है। लिपिकर की अपनी बोली का प्रयोग है।

२. **मात-पिता से अलग करना**—मत्तीरचित इंजील के पर्व ४ में यह घटना वर्णित है कि ईसा ने गलील देश की झील के किनारे घूमते हुए चार मछियारों को देखा तो उसने उनसे कहा कि स्वर्ग का राज्य आने वाला है, तुम मछली क्यों पकड़ते हो। मैं तुम्हें मनुष्यों के पकड़नेवाले बनाऊंगा। वे लोग यह सुनकर अपने काम और माता-पिता हो छोड़कर ईसा के पीछे चल दिये। उनमें दो भाई शमोन (पतरस) और अन्दियास थे तथा अन्य दो भाई याकूब और यूहन्ना थे। ग्रन्थकार का इन्हीं की ओर संकेत है।

आयतखण्ड संख्या ८३ में वर्णन है कि ईसा की माता और भाई उससे मिलने आये थे और उसके निवास के द्वार के बाहर खड़े रहे थे, किन्तु ईसा मसीह उनसे नहीं मिला। माता-पिता की सेवा करना तो दूर की बात थी, उसने बात करने का पुत्र का कर्त्तव्य भी नहीं निभाया। ममतावश माता मरियम मिलने के लिए भटकती रहती थी। ईसा को क्रॉस पर चढ़ाये जाते समय दूर से तथा कब्र में दफनाये जाने के बाद भी मरियम (ईसा की माता) तथा मरियम मगदलीनी कब्र के पास बैठी उसे ताकती रही थीं (मत्ती०, पर्व २७, आ० ५६, ६१)। इसके अलावा वह बेचारी मां कर ही क्या सकती थी? मृत पुत्र की कब्र को देखकर ही मां की ममता को सन्तोष करना पड़ा था।

३-४. **अपप्रयोग**—दोनों हस्त०, तीनों सं० में इस वाक्य में क्रमशः "**मनुष्यों के**" में "**के**" अपप्रयोग है, "**को**" अभीष्ट है। "**स्वमत जाल**" के मध्य "**के**" पद अपेक्षित है। अथवा समस्त पद बनाने के लिए योजक चिह्न का प्रयोग चाहिए।

५. **Galile (गलील)**। यह मरियम का जन्म प्रदेश था। दोनों हस्त० और तीनों सं० में '**गालील**' अपवर्तनी है।

६. **अपप्रयोग**—दोनों हस्त०, तीनों सं० में "**मृगीवाले**" अपप्रयोग है, "**मृगीवालों**" प्रयोग शुद्ध है। उदयपुर सं० में अशद्ध है।

७. **अशुद्ध उद्धरण संख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र०, वेस, भद में यहां २५ संख्या अधिक है, जो अशुद्ध है।

८. **मुद्रणलिपिकर के प्रमाद से त्रुटित पद**—मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं० में "**भूत**" पद त्रुटित है। मूलप्रति सं० में है और ग्राह्य है। उदयपुर सं० ने ग्रहण नहीं किया है, अतः वहां अपवाक्य है।

९. **मुद्रणलिपिकर की भूल और पं० मीमांसक जी आदि की कल्पना**—मुद्रणलिपिकर के प्रमाद से मुद्रणप्रति में "**भूत**" पद त्रुटित रह जाने से यह वाक्यांश त्रुटित और असंगत लिखा गया—"**पोप लीला निकालने मन्त्र**"। मूलहस्तलेख न देखपाने से

भूतों को निकालना, पुरश्चरण, आशीर्वाद, ताबीज और रोगों को छुड़ाना सच्चा हो, तो वह **'इंजील'** की बात भी सच्ची होवे। इसलिये भोले मनुष्यों को भ्रम में फसाने के लिये ये बातें हैं। जो ईसाई लोग ईसा की बातों को मानते हैं, तो यहाँ के देवी-भोपों[१] की बातें क्यों नहीं मानते? क्योंकि ये बातें उन्हीं के सदृश हैं॥ ६८॥

६९. धन्य हैं[२] वे जो मन में दीन हैं, क्योंकि स्वर्ग का राज्य उन्हीं का है। ३।[३]

मत्ती० इं०, प० ५। आ० ३॥

समीक्षक—जो स्वर्ग एक है तो राजा भी एक होना चाहिये। इसलिये जितने दीन हैं, वे सब स्वर्ग को जावेंगे, तो स्वर्ग में राज्य का अधिकार किसको होगा? अर्थात् परस्पर लड़ाई-भिड़ाई करेंगे और राज्यव्यवस्था खण्ड-बण्ड हो जायगी[४]। और 'दीन' के कहने से जो कंगला अर्थ[५] लोगे, तब तो ठीक नहीं; जो निरभिमानी [अर्थ][६] लोगे, तो भी ठीक नहीं, क्योंकि दीन और निरभिमानी[७] का एकार्थ नहीं। किन्तु जो मन में दीन होता है, उसको सन्तोष कभी नहीं होता, इसलिये यह बात ठीक नहीं॥ ६९॥

७०. ....क्योंकि मैं तुमसे सच कहता हूँ कि जब लों आकाश और पृथिवी टल न जायें, तब लों व्यवस्था से एक मात्रा अथवा एक बिन्दु विना पूरा हुए नहीं टलेगा। १८। इसलिये जो कोई इन अति छोटी आज्ञाओं में से एक को लोप करे और लोगों को वैसे ही सिखावे, वह स्वर्ग के राज्य में सबसे छोटा कहावेगा। १९[८] मत्ती इं०, प० ५। आ० १८। १९॥[९]

समीक्षक—[१०]जब आकाश और पृथिवी टल जायें तब व्यवस्था भी टल जायगी[११]। ऐसी अनित्य व्यवस्था मनुष्यों की होती है, सर्वज्ञ ईश्वर की नहीं। और यह एक प्रलोभन और भयमात्र दिया है कि

पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक ने यहां इस वाक्य की कल्पना टिप्पणी में की—''**पोपलीला रचनेवालों का**''। मूलप्रति-हस्तलेख देख लेते तो उन्हें यह कपोल-कल्पना न करनी पड़ती। ''**पोपलीला निकालने**'' कोई प्रयोग नहीं होता। **स्वामी वेदानन्द जी, पं० भगवद्दत्त जी** आदि सभी के संस्करणों में अपपाठ है। इस वाक्य में दो अशुद्धियों थीं। कुछ सम्पादकों ने ''**ताबीज**'' तो मूलहस्त देखकर शुद्ध कर लिया किन्तु ''**भूत निकालने**'' वाक्य शुद्ध नहीं किया। उदयपुर सं० में भी यही दोहरी मानसिकता सामने आई है। यह भी नहीं सोचा कि आगे ''**भूतों को निकालना**'' पाठ है। भूतों को तो ''**भूत निकालने के मन्त्रों**'' से ही निकालते हैं। दोनों वाक्यांशों का परस्पर सम्बन्ध है।

१. **देवी-भोपों**—देवी के भक्तों या पुजारियों।

२. **त्रुटित आवश्यक क्रिया**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में ''**हैं**'' क्रिया त्रुटित है। यह वाक्यरचना की दृष्टि से आवश्यक है।

३,८. **मुद्रणलिपिकर द्वारा आयतों का मिश्रण असंगत**—मुद्रणह०, द्विप्र० और द्वितीय सं० में आयतखण्ड संख्या ६९,७० को तथा इनकी समीक्षाओं को संयुक्त करके एक बना दिया है। दोनों आयतों को एक करने का कोई कारण समझ नहीं आता क्योंकि दोनों का विषय भिन्न है। यह मिश्रण मुद्रणहस्तलेख में लिपिकर द्वारा किया हुआ है। उदयपुर सं० आदि में मिश्रित अपपाठ ही है।

४,११. **द्वि०सं० में अपवर्तनी**—द्वि०सं० में दोनों स्थानों पर मूलसं० में दूसरे संख्यांक पर ''**जायेगी**'' न महर्षि द्वारा प्रयुक्त और न महर्षिकालीन भाषा की वर्तनी है। यह द्वि०सं० प्रथमावृत्ति में भी नहीं है। किसी नवीन शोधक ने इसको बिगाड़ा है। ''**जायगी**'' वर्तनी ग्राह्य है। मूलसं० में संख्यांक ४ पर ''**जायगी**'' शुद्ध वर्तनी है। मूलसं० में संख्यांक ४ पर ''**जायगी**'' शुद्ध वर्तनी है।

५-७. **अपप्रयोग तथा त्रुटित आवश्यक पद**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में ''**कंगले**'' बहुवचनान्त अपप्रयोग है, एकवचन ''**कंगला**'' अभीष्ट है। दोनों हस्त० और तीनों सं० में दोनों स्थानों पर '**अर्थ**' पद त्रुटित है। इस पद के परिवर्धन के बिना वाक्य अपूर्ण है। दोनों हस्त० में ''**अभिमान**'' अपपाठ है, यही द्विप्र० में है। अन्य सभी में संशोधित है।

९. **अशुद्ध उद्धरण संख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र०, वेस, भद में यहां ४ आयतसंख्या अधिक है, जो अशुद्ध है।

१०. **पाठ-परिवर्धन**—मुद्रणप्रति में ''**जब आकाश......गिना जायगा**'' पाठ परिवर्धित है।

जो इन आज्ञाओं को न मानेगा वह स्वर्ग में सबसे छोटा गिना जायगा[१] ॥

जब यह ईसा का साक्ष्य है तो '**तौरेत**' और '**जबूर**' के लेख को भी ईसाई लोगों को अवश्य मानना होगा। **यद्यपि उन पुस्तकों में जो बातें अच्छी हैं, वे वेदानुकूल होने से खण्डनीय नहीं हो सकतीं,[२] किन्तु मन्तव्य हैं। परन्तु उनमें जितने दोष हैं, उनका उत्तर देना ईसाइयों पर निर्भर करता है।** उस पुस्तक में बहुतांश तो इतिहास ही भरा है और बहुत-सी बातें असम्भव भी हैं। ऐसे पुस्तक के[३] सत्य होने में ईसा का साक्ष्य[४] देना ईसा को अविद्वान् [सिद्ध] कर देता है॥ ७०॥[५]

७१. मैं तुमसे कहता हूं, यदि तुम्हारा धर्म अध्यापकों और फरीसियों[६] के धर्म से अधिक न होवे, तो तुम स्वर्ग के राज्य में प्रवेश करने न पाओगे। २०।[७] [मत्ती इं०, प० ५, आ० २० ॥][८]

समीक्षक—जब धर्माचरण से ही स्वर्ग प्राप्त है, तो चाहे वहां, चाहे उस समय में, चाहे जो कोई मनुष्य धर्मात्मा होगा, वह स्वर्ग पावेगा। ईसा के मानने की आवश्यकता नहीं॥ ७१ ॥

७२. सो जैसा तुम्हारा स्वर्गवासी पिता सिद्ध है तैसे तुम भी सिद्ध होओ। ४८।[९]

मत्ती इं०, प० ५, आ० ४८ ॥

समीक्षक—जब सबका पिता परमेश्वर है, तो ईसाई लोग केवल ईसा का पिता परमेश्वर को कहते हैं, यह इनकी बड़ी भूल की बात है॥ ७२ ॥

७३. हमारी दिनभर की रोटी आज हमें दे। १०।[१०] अपने लिये पृथिवी पर धन का संचय मत करो....। ११। मत्ती इं०, ६। आ० ११। १९ ॥

समीक्षक—[११]इससे विदित होता है कि जिस समय ईसा का जन्म हुआ था, उस समय लोग

---

१. **मुद्रणप्रति में त्रुटित पाठ और द्वि०सं० में अपवर्तनी**—द्वि०सं० में "**जायगा**" के स्थान पर "**जायेगा**" अपसंशोधन है। मुद्रणहस्त०, द्विप्र० में "**जायगा**" है। "**जब आकाश......गिना जायगा**" मुद्रणप्रति में त्रुटित पाठ को पं० भीमसेन ने किनारे पर लिखकर पूर्ण किया है।

२. **मुद्रणलिपिकर द्वारा त्रुटित एवं अपपाठ**—मूलह०, मूलप्रति सं० में यह अनुपयुक्त पाठ है—"**वे वेदोक्त होने से खण्डनीय नहीं हो सकतीं, किन्तु मन्तव्य हैं।**" इसका अर्थ बनता है कि तौरेत और जबूर में जो अच्छी बातें कही हैं उनको वेद ने कहा है, अथवा जो वेदोक्त हैं उनको तौरेत और जबूर में कहा है। दोनों ही दृष्टियों से "**वेदोक्त**" पद की संगति नहीं बनती। यहां उपयुक्त पाठ "**वेदानुकूल**" है। ग्रन्थ में अन्यत्र '**वेदानुकूल**' प्रयोग है। यह अनुच्छेद मुद्रणह० में त्रुटित है।

३. **शैलीविरुद्ध प्रयोग**—मूलह०, मूलप्रति सं० में "**ऐसी पुस्तक के**" यह स्त्रीलिंग प्रयोग है। सम्पूर्ण ग्रन्थ में महर्षि ने "**पुस्तक**" को पुंल्लिंग में प्रयोग किया है। महर्षि की स्वीकृति शैली के विरुद्ध होने से यह अपप्रयोग है। इसका पुंल्लिंग में संशोधन चाहिए।

४. **अपप्रयोग**—मूलह०, मूलप्रति सं० में "**साक्षी**" अपप्रयोग है, "**साक्ष्य**" शुद्ध है। इस आधार पर यह वाक्य इस प्रकार संशोधित होगा—"**ईसा का साक्ष्य देना ईसा को अविद्वान् सिद्ध कर देता है।**" यही ग्राह्य है। द्विप्र०, द्वि०सं० में यह पाठ नहीं है।

५. **मुद्रणलिपिकर द्वारा ऋषि-पाठ का निष्कासन**—मूलह०, मूलप्रति सं० के महर्षिप्रोक्त "**जब यह ईसा का साक्ष्य.... अविद्वान् कर देता है**" इस अनुच्छेद को द्विप्र० में हटा दिया है। हटाने का कारण कहीं स्पष्ट नहीं किया गया है। प्रतीत होता है कि यह मुद्रणलिपिकर के प्रमाद से छूटा है। यह महर्षि ने संशोधन के समय अपने लेख में लिखा है।

६. **अध्यापकों**—फरीसियों=पारसियों।

७,९. **मुद्रणलिपिकर के प्रमाद से त्रुटित आयतें**—आयतखण्ड संख्याएं ७१, ७२ और इनकी समीक्षाएं मूलह० में फुटकर पन्नों पर हैं। वहां इनको यथाक्रम लिखने का निर्देश है। मुद्रणप्रति बनाते समय लिपिकर इनको प्रमादवश त्रुटित छोड़ गया। इसी कारण ये द्विप्र०, द्वि०सं० में नहीं छप सकीं।

८. **त्रुटित उद्धरण संख्या**—मुद्रणह०, मूलसं० में उद्धरण संख्या त्रुटित है। द्विप्र०, द्वि०सं० में यह आयत निष्कासित है।

१०,११. **त्रुटित पाठ का परिवर्धन**—"**हमारी.....हमें दे**" आयत, इसकी समीक्षा "**इससे विदित.......सिखलाता है**" मुद्रणप्रति में

जंगली और दरिद्र थे तथा ईसा भी वैसा ही दरिद्र था। इसी से तो दिनभर की रोटी की प्राप्ति के लिये ईश्वर से[१] प्रार्थना करता और सिखलाता है॥ जब ऐसा है तो ईसाई लोग धनसंचय क्यों करते हैं? उनको चाहिये कि ईसा के वचन से विरुद्ध न चलकर सब दान-पुण्य करके दीन हो जायें॥ ७३॥

७४. हर एक जो मुझसे ''हे प्रभु! हे प्रभु!'' कहता है, स्वर्ग के राज्य में प्रवेश नहीं करेगा....। २१। मत्ती इं०, ७। आ० २१॥

समीक्षक—अब विचारिये, बड़े-बड़े पादरी-बिशप साहब और कृश्चीन[२] लोग, 'जो यह ईसा का वचन सत्य है', ऐसा समझें, तो ईसा को प्रभु अर्थात् ईश्वर कभी न कहें, यदि इस बात को न मानेंगे, तो पाप से कभी नहीं बच सकेंगे॥ ७४॥

७५. उस दिन में बहुतेरे मुझसे कहेंगे....। २२। तब मैं उनसे खोलके कहूँगा—''मैंने तुमको कभी नहीं जाना है। हे[३] कुकर्म करनेहारो मुझसे दूर होओ। २३।'' मत्ती इं०, प० ७। आ० २२। २३॥

समीक्षक—देखिये, ईसा जंगली मनुष्यों को विश्वास कराने के लिये स्वर्ग में न्यायाधीश बनना चाहता था। यह केवल भोले मनुष्यों को प्रलोभन देने की बात है॥ ७५॥

७६. और देखो, एक कोढ़ी ने आ उसको प्रणाम कर कहा—''हे प्रभु! जो आप चाहें तो मुझे शुद्ध कर सकते हैं। २।'' यीशु ने हाथ बढ़ा उसे छूके कहा—'मैं तो चाहता हूँ शुद्ध होजा', और उसका कोढ़ तुरन्त शुद्ध हो गया। ३। मत्ती इं०, प० ८। आ० २। ३॥

समीक्षक—ये सब बातें भोले मनुष्यों के फसाने की हैं, क्योंकि जब ईसाई लोग इन विद्या और सृष्टिक्रमविरुद्ध बातों को सत्य मानते हैं तो शुक्राचार्य, धन्वन्तरि, कश्यप आदि की बातें, जो कि पुराणों और '**महाभारत**' में [वर्णित हैं कि][४] अनेक दैत्यों की मरी हुई सेना को जिला दिया[५]; बृहस्पति के पुत्र कच को टुकड़े-टुकड़े कर जानवरों और मच्छियों को खिला दिया, फिर भी शुक्राचार्य ने जीवित कर दिया; पश्चात् कच को मारकर शुक्राचार्य को खिला दिया, फिर उसको पेट में जीवित कर बाहर निकाला; आप मर गया उसको कच ने जीवित किया; कश्यप ऋषि ने मनुष्यसहित वृक्ष को तक्षक से भस्म हुए पीछे, पुनः वृक्ष और मनुष्य को जिला दिया; धन्वन्तरि ने लाखों मुर्दे जिलाये, लाखों कोढ़ी आदि रोगियों को चंगा किया, लाखों अन्धों और बहिरों को[६] आँख और कान दिये, आदि कथाओं[७]

हैं। पं० भीमसेन ने किनारे पर लिखकर पूर्ण किया है। यह त्रुटित छोड़ दिया था।

१. **अपप्रयोग**—दोनों हस्त०, तीनों सं० में ''**ईश्वर की प्रार्थना करता**'' अपप्रयोग है। यहां '**ईश्वर से प्रार्थना करता**' अभीष्ट है।

२. **कृश्चीन**—वर्तमान में इसका उच्चारण 'क्रिश्चियन' (Christian) प्रचलित है। **ऋषिलेख**—आगे ''**ऐसा समझें......मानेंगे**'' पाठ मूलहस्त० में ऋषि द्वारा परिवर्धित है।

३. **त्रुटित पद**—मूलप्रति में ''**हे**'' सम्बोधन पद त्रुटित है, द्वि० सं० में है, यह ग्राह्य है।

४. **त्रुटित आवश्यक पाठ**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में बृहत् कोष्ठकान्तर्गत पाठ परिवर्धित करना आवश्यक है, अन्यथा अपअर्थ प्रकट होता है कि 'पुराणों व महाभारत में इनको जीवित कर दिया या मार दिया।'

५-७. **अपपाठ**—दोनों हस्त० और तीनों संस्करणों में इस वाक्य की अपरचना इस प्रकार मिलती है—''**......कश्यप आदि की बात पुराण और भारत में अनेक दैत्यों की मरी हुई सेना को जिला दिये।**'' इसमें वचन और क्रिया सम्बन्धी अनेक अशुद्धियां हैं। दूसरा—''**अन्धे और बहिरों को**'' अपपाठ है। '**अन्धों और बहिरों को**' शुद्ध है। ''**कथा**'' एकवचन अपप्रयोग है, '**कथाओं**' शुद्ध है। उदयपुर सं० में ''**अन्धों**'' संशोधन को छोड़कर सभी अशुद्धियां यथावत् विद्यमान है। अन्य वेस, जग, भद, युमी, विस, उदयपुर आदि सभी सं० में सभी त्रुटियां विद्यमान है।

को मिथ्या क्यों कहते हैं?[१]

जो उनकी बातें मिथ्या हैं, तो ईसा की बातें मिथ्या क्यों नहीं? जो दूसरों की [सच्ची][२] बातों को मिथ्या और अपनी झूठी को सच्ची कहते हैं, तो वे हठी क्यों नहीं? इसलिये ईसाइयों की बातें केवल हठ और लड़कों के समान हैं॥ ७६॥

७७. .... तब दो[३] भूतग्रस्त मनुष्य कब्र-स्थान से निकलकर उससे आ मिले, जो यहाँ लों अतिप्रचंड थे कि उस मार्ग से कोई नहीं जा सकता था। २८। और देखो, उन्होंने चिल्लाके कहा—''हे यीशु ईश्वर के पुत्र! आपको हमसे क्या काम, क्या आप समय के आगे हमें पीड़ा देने को यहाँ आये हैं। २९।'' बहुत-से सुअरों का झुण्ड उनसे कुछ दूर चरता था। ३०।[४] सो भूतों ने उससे विनति

---

१. **पुराणों और महाभारत में असम्भव कथाएं—१. शुक्राचार्य**—पुराणों और महाभारत के अनुसार ये मृग ऋषि के पुत्र या पौत्र थे तथा दैत्यों-दानवों के गुरु एवं चिकित्सक थे। इनके पास 'संजीवनी' नामक ऐसी विद्या थी कि ये मरे हुए लोगों को पुनर्जीवित कर देते थे। देवों और दानवों के युद्ध में जो दानव मरते थे उनको शुक्राचार्य पुनः जिन्दा कर देते थे। इससे भी बड़ा गपोड़ा यह है कि देवों के गुरु बृहस्पति के पुत्र कच, शुक्राचार्य के पास गये और उनके शिष्य बन गये। एक बार कच गुरु की गायों को चराने के लिए जंगल में गया हुआ था। दानवों ने यह मानकर कि अवश्य यह 'संजीवनी विद्या' सीखने आया है, उसको मार दिया और टुकड़े-टुकड़े करके भेड़ियों को खिला दिया। शुक्राचार्य को जब पता चला तो उसने कच का आह्वान किया। उसके सारे टुकड़े भेड़ियों के शरीर को फाड़-फाड़कर निकल आये और कच पुनर्जीवित हो गया। दूसरी बार दानवों ने उसे मारकर समुद्र में फेंक दिया, जिसे मछलियों ने खा लिया। शुक्राचार्य ने फिर आह्वान किया तो पूर्वोक्त प्रकार से कच फिर जीवित हो गया। दानवों ने देखा कि इस प्रकार तो यह मरेगा नहीं, तीसरी बार उन्होंने कच को मारकर जला दिया और अवशेषों का चूर्ण कर शराब में मिलाकर धोखे से शुक्राचार्य को ही पिला दिया। कच के न मिलने पर फिर खोज हुई है। जोर से पुकारने पर वह धीरे से पेट से ही बोला। अब समस्या यह हुई कि यदि शुक्राचार्य उसको अपने पेट में जीवित करते हैं तो बाहर निकलते समय शुक्राचार्य की मृत्यु होती है और यदि जीवित नहीं करते तो उसके प्यार में पागल शुक्राचार्य की पुत्री मरती है। तब शुक्राचार्य ने अपने उदर में ही उसको 'संजीवनी विद्या' सिखाई। जीवित होकर कच जब बाहर निकला तो शुक्राचार्य मर गये। फिर कच ने उस विद्या से शुक्राचार्य को पुनर्जीवित कर दिया। (द्रष्टव्य , भागवत पुराण अध्याय ७.५, ब्रह्मपुराण शुक्रतीर्थ माहात्म्य प्रसंग, महाभारत आदिपर्व अ० ६० आदि) ऐसे महा गपोड़े दुनिया के किसी साहित्य में शायद ही मिलेंगे।

२. कश्यप— तक्षक नाग, राजा परीक्षित को डंसने के लिए जा रहा था। उसे मार्ग में ऋषि कश्यप मिल गये। तक्षक नाग ने पूछा—'ब्राह्मणश्रेष्ठ कहाँ जा रहे हैं?' कश्यप ने उत्तर दिया—'आज परीक्षित को एक सर्प डंसेगा और वह मर जायेगा, मैं उसे जीवित करूंगा, इस कारण से राजा परीक्षित के यहां जा रहा हूँ।' तक्षक ने कहा—'आप के पास यह विद्या है, कैसे जानें?' कश्यप ने एक बड़ के वृक्ष को भस्म कर पुनः जीवित करके दिखा दिया। इसी प्रकार तक्षक को भी जीवित किया। (भागवत पुराण अध्याय १२.६, महाभारत, आदिपर्व अ० ३५)

३. धन्वन्तरि—ये प्रसिद्ध आयुर्वेदज्ञ हुए हैं। पुराणों में इनको मृतक मनुष्यों और पशुओं को जीवित कर देनेवाला कहा है। इन्होंने दक्ष के कटे सिर को जोड़ दिया। अनेक अन्धों को आंखें दीं। (भागवत पुराण ८.८.३५, १.३.१७) २.७.२१, वायु पु० ९२.७-२२, मत्स्य पु० ४३०, विष्णु पु० १-९-९८-१०८, ७.८.८-११, अग्नि पु० २७९.२, देवीभा० पु० ७.५.४६, स्कन्द पु० केदारखण्ड १३.२ आदि)

ठीक ऐसी ही ईसा मसीह, मूसा आदि पैगम्बरों की चमत्कारपूर्ण कथाएं हैं, जो मिथ्या और असम्भव हैं। महर्षि का प्रश्न यह है कि जब ईसाई लोग और लेखक बाइबल की कथाओं को मानते हैं तो इन कथाओं को क्यों नहीं मानते?

२. **त्रुटित आवश्यक पद**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में वाक्यपूर्त्यर्थ '**सच्ची**' पद-परिवर्धन आवश्यक है।

३. **मुद्रणलिपिकर से त्रुटित पद**—मुद्रणप्रति में मुद्रणलिपिकर ने ''**दो**'' पद प्रमादवश छोड़ दिया। वही त्रुटित पाठ द्विप्र० में है।

४. **स्वामी वेदानन्द जी द्वारा एक आयत का उचित परिवर्धन**—दोनों हस्त० और द्विप्र० में इस आयतखण्ड की संख्याएं २८-३३ दी हुई हैं जो अशुद्ध हैं। सभी में उद्धृत आयते हैं—२८, २९, ३१, ३२। **स्वामी वेदानन्द जी** ने ३०वीं आयत मूलपाठ में है—''**बहुत-से सुअरों का एक झुण्ड उनसे कुछ दूर चरता था।**'' स्वामी जी का अनुकरण करते हुए **उदयपुर सं० ने भी इस आयत का स्वतन्त्र परिवर्धन कर लिया है।** यह बाइबल में है और प्रासंगिक है। प्रतीत होता है कि संकलनकर्त्ता से प्रतिलिपि करते समय यह असावधानी से छूटी है। **उदयपुर सं० में अशुद्ध टिप्पणी**—उदयपुर सं० ने इसको मूलहस्तलेख का पाठ कहकर

कर कहा—''जो आप हमको निकालते हैं तो सुअरों के झुंड[१] में पैठने दीजिये''। ३१। उसने उनसे कहा—''जाओ'', और वे निकल के सुअरों के झुंड[२] में पैठे और देखो सुअरों का सारा झुंड[३] कड़ाड़े[४] पर से समुद्र में दौड़के गिर गया और पानी में डूब मरा। ३२।

मत्ती इं०, प० ८। आ० २८। २९। ३०। ३१। ३२॥[५]

समीक्षक—भला, यहाँ तनिक विचार करें तो ये बातें सब झूठी हैं, क्योंकि मरा हुआ मनुष्य कब्र-स्थान से कभी नहीं निकल सकता। वे किसी पर न जाते, न संवाद करते हैं, ये सब बातें अज्ञानी लोगों की हैं। जो कि महाजंगली हैं, वे ऐसी बातों पर विश्वास लाते हैं। और उन सुअरों की हत्या कराई। सुअरवालों की हानि करने का पाप ईसा को हुआ होगा। और ईसाई लोग ईसा को 'पाप को क्षमा और पवित्र करनेवाला' मानते हैं, तो उन भूतों को पवित्र क्यों न कर सका? और सुअरवालों की हानि क्यों न भर दी? क्या आजकल के सुशिक्षित ईसाई अंगरेज लोग इन गपोड़ों को भी मानते होंगे? यदि मानते हैं, तो भ्रमजाल में पड़े हैं॥ ७७॥

७८. देखो! लोग एक अर्धांगी[६] को, जो खटोले पर पड़ा था, उसके पास लाये[७] और यीशु ने उनका विश्वास देखके कहा—''हे पुत्र! ढाढ़स कर, तेरे पाप क्षमा किये गये हैं। २।''[८]

मत्ती इं०, प० ९। आ० २॥

समीक्षक—यह भी वैसी ही असम्भव बात है, जैसी पूर्व लिख आये हैं। और जो पाप को क्षमा करने की बात है, वह केवल भोले लोगों को प्रलोभन देकर फसाना है। जैसे दूसरे के पीये मद्य, भांग और अफीम खाये का नशा दूसरे को प्राप्त नहीं हो सकता, वैसे ही **किसी का किया हुआ पाप किसी के पास नहीं जाता, किन्तु जो करता है वही भोगता है; यही ईश्वर का न्याय है।** यदि दूसरे का किया पाप-पुण्य दूसरे को प्राप्त होवे अथवा न्यायाधीश स्वयं ले लेवे वा कर्त्ताओं को ही यथायोग्य फल ईश्वर न देवे, वह अन्यायकारी हो जावे॥ ७८॥

७९. .....क्योंकि मैं धर्मियों को नहीं, परन्तु पापियों को पश्चात्ताप के लिये बुलाने को आया हूँ। १३।[९]

मत्ती इं०, प० ९। आ० १३॥

समीक्षक—अब विचारिये कि धर्मात्माओं को ईसाई होना कुछ आवश्यक नहीं, क्योंकि वे तो

टिप्पणी में दर्शाया है जबकि यह उसमें नहीं है और न मुद्रणप्रति में है।

१-३. **मुद्रणलिपिकर कृत अपवर्तनी**—मूलह० में शुद्ध वर्तनी है। मुद्रणप्रति बनाते समय मुद्रणलिपिकर ने तीनों स्थानों पर ''**झूंड/झूण्ड**'' अपवर्तनी बना दी, वही द्विप्र० में छपी है। अन्य सभी सं० में इसका संशोधन कर लिया गया है।

४. **कड़ाड़े**—ढलान वाला टीला। यह ऐसा टीला था जिसका ढ़लान समुद्र की ओर था।

५. **अशुद्ध उद्धरण संख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र०, भद में यहां ३३ संख्या अधिक है, जो अशुद्ध है।

६. **अर्द्धांगी**=लकवाग्रस्त वा अपंग व्यक्ति। **ऋषि-लेख**—इस पृष्ठ पर रेखांकित दोनों पाठ मूलह० में ऋषिलेख में हैं।

७. **मुद्रणकालीन उचित संशोधन**—मूलह०, मुद्रणह०, मूलप्रति सं० में अनुवादक-कृत अपपाठ है—''**एक अर्द्धांगी को खाट पर पड़े हुए उसके पास लाये**''। विशेषण-विशेष्य विपर्यय होने से अर्थ विकृत हो गया है। द्विप्र०, द्वि०सं० आदि में संशोधित है।

८-९. **मुद्रणलिपिकर द्वारा त्रुटित आयत और शोधक द्वारा अपमिश्रण**—मुद्रणप्रति तैयार करते समय मुद्रणलिपिकर प्रमादवश आयतखण्ड संख्या ७९ को छोड़ गया। बाद में किसी शोधक पं० भीमसेन ने त्रुटित पाठ देखकर उसको किनारे पर लिखा। उसने यह गलती की कि बिना प्रसंग के इस आयत को पूर्व आयतखण्ड संख्या ७८ में मिश्रित कर दिया तथा समीक्षा की भाषा को अपने मन से परिवर्धित कर दी। वह परिवर्धन अनावश्यक है। मूलप्रति में दोनों आयतें पृथक्-पृथक् हैं। विष देने के कारण रुग्ण

धर्म से ही मुक्ति को जायेंगे। और इससे यह सिद्ध हुआ कि **धर्मादि आचरण ही मुक्ति के साधन हैं,** ईसा नहीं; क्योंकि ईसाई भी जब तक धर्म न करेंगे, तब तक उनकी भी सद्‌गति नहीं होगी॥ ७९ ॥

८०. यीशु ने अपने बारह शिष्यों को अपने पास बुलाके उन्हें अशुद्ध भूतों पर अधिकार दिया कि उन्हें निकालें और हर-एक रोग और हर-एक व्याधि[१] को चंगा करें। १।[२]

मत्ती इं०, प० १०। आ० १॥[३]

समीक्षक—ये वे ही शिष्य हैं, जिनमें से एक ३०) रुपयों[४] के लोभ पर ईसा को पकड़वावेगा[५] और अन्य बदलकर अलग-अलग भागेंगे। भला, जब ये बातें विद्या से ही विरुद्ध हैं कि भूतों का आना वा निकालना, विना औषधि वा पथ्य के व्याधियों का छूटना, सृष्टिक्रम के अनुसार असम्भव है, इसलिये ऐसी-ऐसी बातों का मानना अज्ञानियों का काम है॥ ८० ॥

८१. बोलनेहारे तो तुम नहीं हो, परन्तु तुम्हारे पिता का आत्मा तुममें बोलता है। २०।[६]

मत्ती इं०, प० १०। आ० २० ॥

समीक्षक—जब 'परमेश्वर का आत्मा' ही सबमें बोलता है तो वही मिथ्याभाषणादि पापों से लिप्त होकर दुःखरूपी नरक में पड़ेगा। जो ऐसा है, तो मूसा ने 'दश आज्ञा'-विषय में उपदेश किया कि 'मिथ्या मत बोलो'[७], [फिर] यह उपदेश क्यों किया? इसलिये जीवों के व्यवहार में जीव ही बोलते हैं, ईश्वर नहीं॥ ८१ ॥

८२. मत समझो कि मैं पृथिवी पर मिलाप करवाने को आया हूँ, मैं मिलाप करवाने[८] नहीं, परन्तु

हो जाने से महर्षि इसका निरीक्षण नहीं कर सके पे।

१. **अयोग्य मुद्रणलिपिकर द्वारा अपवर्तनी**—मुद्रणह०, द्विप्र० में "**व्याधी**" अपवर्तनी है। सभी सं० में संशोधित है।

२,६,९. **मुद्रणलिपिकर द्वारा त्रुटित आयतें और अपमिश्रण**—मुद्रणलिपिकर ने प्रतिलिपि करते समय आयतखण्ड संख्या ८१, ८२ को त्रुटित छोड़ दिया। बाद में शोधक पं० भीमसेन ने मिलान करते समय इनको किनारे पर लिखकर पूर्ण किया है, किन्तु उसने गलती यह की कि इनको स्थानाभाव के कारण पूर्व आयतखण्ड संख्या ८० में मिश्रित कर दिया, जो असंगत है। मूलप्रति में ये पृथक्-पृथक् हैं। विष दिये जाने के कारण रुग्ण होने से ऋषि इनका निरीक्षण नहीं कर सके थे।

३. **मुद्रणप्रति में अशुद्ध उद्धरणसंख्या**—मुद्रणह०, द्विप्र० में ८०, ८१, ८२ आयतखण्ड संयुक्त किये हुए है। वहां उद्धरण संख्या अस्त-व्यस्त है। संख्याएं १, २० त्रुटित हैं तथा १३ अधिक है। अन्य सभी सं० में संशोधित है।

४. **अपप्रयोग**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में "**३०) रुपये के**" अपप्रयोग है, बहुवचन अपेक्षित है।

५. **अपप्रयोग**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में "**पकड़ावेगा**" अपप्रयोग है, यह '**पकड़वावेगा**' शुद्ध है। यीशु को तीस रुपये के बदले कैद कराने वाले शिष्य का नाम यहूदा इस्करियोती (Judas Iscariot) था। द्रष्टव्य आयतखण्ड संख्या ९४ तथा ९७।

७. **दश आज्ञाएं**—बाइबल की पुस्तक '**निर्गमन**' के पर्व २० में ये आज्ञाएं वर्णित हैं।

८. **मुद्रणलिपिकर के प्रमाद से त्रुटित पाठ**—द्विप्र०, द्वि०सं० व मुद्रणहस्तलेख में मुद्रणलिपिकर ने यह पाठ छोड़ दिया था, बाद में शोधक पं० भीमसेन ने उसको पूरा करते समय यह वाक्यांश छोड़ दिया—"**आया हूं मैं मिलाप कराने**" उससे यह अपवाक्य बन गया— "**मिलाप करवाने को नहीं, परन्तु खड्ग चलवाने को**"। यह पाठ मूलहस्त० में है, बाइबल में भी है, अतः ग्राह्य है। **संशोधन-पुष्टि**—समीक्षा में "**खड्ग चलाने हारे**" कहकर उक्त पाठ की समीक्षा ग्रन्थकार ने की है। अतः यह भी ग्राह्य है।

आचार्य राजेन्द्रप्रसाद जी शास्त्री के दुराग्रह की पराकाष्ठा—जिस समाज के दश नियमों में 'सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने को सदा तत्पर रहने' की शिक्षा दी गई हो, उसके विद्वान् यदि असत्य के लिए पूर्वाग्रह ही नहीं दुराग्रह करें, तो सामान्य जनों का क्या हाल होगा?

यह तथ्य स्पष्ट और सिद्ध है कि शोधक और मुद्रणलिपिकर के प्रमाद के कारण अन्य सैकड़ों भूलों की तरह यहां भी पाठ त्रुटित रह गया है और यह पाठ बाइबल में उलब्ध भी है, फिर भी शास्त्री जी केवल विरोध के लिए विरोध करते हुए लिखते

खड्ग चलवाने को आया हूँ। ३४। मैं मनुष्य को उसके पिता से, बेटी को उसकी माँ से, और पतोहू को उसकी सास से अलग करने आया हूँ। ३५। मनुष्य के घर के ही लोग उसके वैरी होंगे। ३६।[१]

मत्ती इं०, प० १०। आ० ३४। ३५। ३६॥

समीक्षक—ऐसी फूट कराके, लड़ाई-झगड़ा मचाके मनुष्यों को दु:ख देनेहारे और खड्ग चलानेहारे पिता-पुत्र, मा-बेटी, पतोहू-सास आदि में फूट करा परस्पर वैर बढ़ानेहारे मनुष्य के लिये यह बहुत बुरा काम है। **विदित होता है कि इसी उपदेश को ईसाई लोगों ने अधिक प्रचार में लाया है। जहाँ ये लोग जाते हैं, वहीं भरपूर फूट हो जाती है। मेल का नाम-निशान भी नहीं रहता।**[१] **इसी से अपने पड़ोसियों का, आपस में उनको लड़ाकर माल मारना, किसी के लड़के को बहकाकर माता-पिता से अलग कर [जीवन]**[२] **नष्ट कर देना सिखलाया है।**[३] यह केवल दोष है। इसको 'तर्क कर देना'[४] बहुत अच्छी बात है॥ ८२॥[५]

८३. यीशु लोगों से बात करता ही था कि देखो, उसकी माता और उसके भाई बाहर खड़े हुए

हैं कि "**आया हूं मिलाप करवाने को** इस वाक्य की पुनरुक्ति का सम्बन्ध समीक्षा के किसी भी शब्द से नहीं। इसलिये इस प्रकार के परिवर्तन करना लेखक का नैतिक और कानूनन अपराध है, जो नहीं होना चाहिये" ('सत्यार्थप्रकाश के संशोधनों की समीक्षा', पृ० ३५-३६) इतना ही नहीं, व्याकरण की दृष्टि से भी त्रुटियुक्त इस वाक्य की रचना शुद्ध नहीं बनती, देखिए—"**मत समझो कि मैं पृथिवी पर मिलाप करवाने को नहीं, परन्तु खड्ग चलवाने को आया हूं।**" स्पष्ट प्रतीत हो रहा है कि "**मत समझो**" वाक्यांश से सम्बद्ध क्रियाएं यहां नहीं हैं और वाक्य अपूर्ण तथा अस्पष्ट है। अब जो बाइबल और व्याकरण किसी को भी न मानना चाहे, तो ऐसे व्यक्ति को ब्रह्मा भी नहीं समझा सकता'।

पं० भगवद्दत्त जी तथा द्वि०सं० को छोड़कर सभी सम्पादकों ने इस पाठत्रुटि का संशोधन कर लिया है। उदयपुर सं० ने इस पाठ को ग्रहण करके शोध-श्रद्धा का परिचय दिया है।

१. **अंग्रेजों पर महर्षि का यथार्थ व्यंग्य**—खुले तौर पर और स्पष्ट शब्दों में निर्भयतापूर्वक महर्षि ने अंग्रेजों पर यहां व्यंग्य किया है, जबकि उस समय अंग्रेजों का ही राज्य था। इतिहास में यह सत्य प्रसिद्ध है कि अंग्रेज जिस देश में गये वहां "**फूट डालो और राज करो**" की कूटनीति को उन्होंने चरितार्थ किया। इसी के सहारे मुट्ठीभर लोग आधे विश्व पर राज्य कर गये। फूट डालना उनके स्वभाव में है, जो उनको बाइबल ने सिखाया है। ऐसे ग्रन्थ को वे धर्मग्रन्थ कहते हैं।

२. **त्रुटित आवश्यक पद**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में स्पष्टार्थ के लिए '**जीवन**' पद-परिवर्धन जरूरी है।

३. **अन्यत्र वर्णन**—इस विषयक विवरण पृ० ८९४ की टिप्पणी २ में देखिए।

४. **तर्क कर देना**=छोड़ देना। यह अरबी भाषा का प्रयोग है।

५. **मुद्रणप्रति में पं० भीमसेन द्वारा अनावश्यक भाषा-परिवर्तन**—आयतखण्ड संख्या ८१-८२ की समीक्षा मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं० में शोधक पं० भीमसेन ने बदली है। वह शिथिल, बचकानी अपूर्ण और प्रभावहीन है। मूलप्रति में ऋषिप्रोक्त भाषा में जो गाम्भीर्य, प्रभावशीलता और सुघड़ता है वह द्वि० सं० में परिवर्तन से समाप्त हो गयी है। महर्षिप्रोक्त मूलपाठ अधिक ठीक है। तुलना कीजिए लिपिकर द्वारा परिवर्तित अपूर्ण और शिथिल भाषा की। प्रतीत होता है कि महर्षि की भाषा में जो व्यंग्यात्मकता और तीव्रता थी, उसको कम करने के लिए भाषा में परिवर्तन किया गया है। ऋषि रुग्ण होने के कारण मुद्रणप्रति के इस पाठ का निरीक्षण नहीं कर सके थे—

"यदि जीव बोलने हारे नहीं, ईश्वर बोलने हारा है तो जीव क्या काम करते हैं? और सत्य वा मिथ्याभाषण का फल सुख वा दु:ख को ईश्वर ही भोगता होगा, यह भी एक मिथ्या बात है"॥ ८१॥

"और जैसा ईसा फूट कराने और लड़ाने को आया था वही आजकल कलह लोगों में चल रहा है। यह कैसी बड़ी बुरी बात है कि फूट कराने से सर्वथा मनुष्यों को दु:ख होता है और ईसाइयों ने इसी को गुरुमन्त्र लिया होगा। क्योंकि एक दूसरे की फूट ईसा ही अच्छी मानता था तो ये क्यों नहीं मानते होंगे? यह ईसा ही का काम होगा कि घर के लोगों के शत्रु घर के लोगों को बनाना, यह श्रेष्ठ पुरुष का काम नहीं"॥ ८२॥

शोधककृत इस समीक्षा में कोई सार और आयत से सम्बद्ध भाव नहीं है। गाम्भीर्य और व्यंग्य की सारी हवा निकाल दी।

उससे बोलना चाहते थे। ४६। तब किसी ने उससे कहा—''देखिये! आपकी माता और आपके भाई बाहर खड़े हुए आपसे बोलना चाहते हैं। ४७।'' ....उसने कहनेहारे को उत्तर दिया कि ''मेरी माता कौन है?॥ और मेरे भाई कौन हैं?''....। ४८।[१] मत्ती इं०, प० १२। आ० ४६। ४७। ४८॥

समीक्षक—देखिये, प्रथम तो '**तौरेत**' और '**ज़बूर**' की ईसा साक्षी देता है कि उसका एक बिन्दु भी झूठा नहीं। और **उसमें अपने माता, पिता का मान करना लिखा है। और यहाँ माता आदि का अपमान करता है। यह केवल हठ की बात है। और इसी से उसने आयुविशेष न पाया। क्योंकि जो ईसा अपने माता-पिता की सेवा करता तो उसका आयु भी बढ़ता।** और यह पूर्वापरविरुद्ध बात होने से ईसा कुछ विद्वान् भी नहीं था। हाँ, उन जंगली मनुष्यों में कुछ अच्छा था॥ ८३॥

८४. तब यीशु ने उनसे कहा—''तुम्हारे पास कितनी रोटियाँ हैं?'' उन्होंने कहा—''सात और थोड़ी-सी[२] **छोटी मछलियाँ। ३४।'' तब उसने लोगों को भूमि पर बैठने की आज्ञा दी। ३५। तब उसने उन सात रोटियों को और मछलियों को लेके धन्य मानके तोड़ा और अपने शिष्यों को दिया और शिष्यों ने लोगों को दिया। ३६। सो सब खाके तृप्त हुए और जो टुकड़े बच रहे, उनके सात टोकरे भरे उठाये। ३७। जिन्होंने खाया सो स्त्रियों और बालकों को छोड़ चार सहस्र पुरुष थे। ३८।**

मत्ती इं०, प० १५। आ० ३४। ३५। ३६। ३७। ३८॥[३]

समीक्षक—अब देखिये, क्या यह आजकल के झूठे सिद्धों और इन्द्रजाली[४] आदि के समान छल की बात नहीं है? उन रोटियों में अन्य रोटियाँ कहां से आ गईं? **यदि ईसा में ऐसी सिद्धियाँ होतीं तो आप भूखा हुआ गूलर के फल खाने को क्यों भटका करता था?**[५] अपने लिये मिट्टी, पानी और पत्थर आदि से मोहनभोग और रोटियाँ क्यों न बना लीं? ये सब बातें लड़कों के खेलपन की हैं। जैसे, कितने ही साधु, वैरागी ऐसी छल की बातें करके भोले मनुष्यों को ठगते हैं, वैसे ही ये भी हैं॥ ८४॥

८५. ....और तब वह हर एक मनुष्य को उसके कार्य के अनुसार फल देगा। २७।

मत्ती इं०, प० १६। आ० २७॥

समीक्षक—जब कर्मानुसार फल दिया जायगा तो ईसाइयों का पाप-क्षमा होने का उपदेश करना व्यर्थ है। और वह सच्चा हो, तो यह झूठा होवे। यदि कोई कहे कि क्षमा करने के योग्य क्षमा किये जाते और क्षमा न करने योग्य क्षमा नहीं किये जाते हैं, यह भी ठीक नहीं; क्योंकि सब कर्मों के फल यथायोग्य देने से ही न्याय और दया पूरी होती है॥ ८५॥[६]

---

१. **मुद्रणलिपिकर के प्रमाद से त्रुटित आयत**—आयतखण्ड संख्या ८३ समीक्षा सहित मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं० आदि में त्रुटित है। यह मुद्रणलिपिकर के प्रमाद से त्रुटित रही है। ईसा द्वारा माता आदि की व्यावहारिक उपेक्षा को इसके द्वारा प्रदर्शित किया है। इसका अपना महत्त्व है। यह विषय किसी अन्य आयत में नहीं है। निकालने का कारण क्या रहा होगा, यह कहना कठिन है। महर्षि ने ईसा द्वारा माता-पिता की उपेक्षा पर कई बार व्यंग्य किया है।

२. **त्रुटित आवश्यक पाठ**—दोनों हस्त०, तीनों सं० में ''**थोड़ी-सी**'' पाठ त्रुटित है, यह बाइबल मूलपाठ में है, अतः ग्राह्य है।

३. **अशुद्ध उद्धरण संख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र०, वेस, भद में यहां आयतसख्या ३९ अधिक है, जो अशुद्ध है।

४. **अयोग्य मुद्रणलिपिकरकृत अपवर्तनी**—मुद्रणह०, द्विप्र० में ''**इन्द्रजालि**'' अपवर्तनी है। सभी सं० में संशोधित है।

५. **अन्यत्र वर्णन**—ईसा द्वारा गूलर के फल खोजने और क्रुद्ध होकर गूलर को शाप देने का उल्लेख आयत संख्या ९० में द्रष्टव्य है।

६. **ऋषि-लेख**—''**यदि.....बना लीं**'', ''**यदि कोई......होती है**'' पाठ मूलह० में ऋषि द्वारा परिवर्धित हैं।

८६. ....हे अविश्वासी और हठीले लोगो! ....। १७। मैं तुमसे सत्य कहता हूँ, यदि तुमको राई के एक दाने के तुल्य विश्वास हो, तो तुम इस पहाड़ से जो कहोगे कि यहाँ से वहां चला जा, वह चला जायगा और कोई काम तुमसे असाध्य नहीं होगा। २०। मत्ती इं०, प० १७। आ० १७।२०॥

समीक्षक—अब, जो ईसाई लोग उपदेश करते-फिरते हैं कि 'आओ, हमारे मत में पाप-क्षमा कराओ, मुक्ति पाओ' आदि, वह सब मिथ्या है; क्योंकि जो ईसा में पाप छुड़ाने, विश्वास जमाने[१] और पवित्र करने का सामर्थ्य होता, तो अपने शिष्यों के आत्माओं को निष्पाप, विश्वासी, पवित्र क्यों न कर देता जो ईसा के साथ-साथ घूमते थे? जब उन्हीं को शुद्ध, विश्वासी, और उनका कल्याण न कर सका[२], तो वह मरे पर न जाने कहाँ है? इस समय किसी को पवित्र नहीं कर सकेगा।

जब ईसा के चेले राई-भर विश्वास से [भी] रहित थे, और उन्हीं ने यह 'इंजील'[३] पुस्तक बनाई है, तब इसका प्रमाण नहीं हो सकता, क्योंकि जो अविश्वासी, अपवित्रात्मा, अधर्मी मनुष्यों का लेख होता है, उस पर विश्वास करना कल्याण की इच्छा करनेवाले मनुष्यों का काम नहीं। और इसी से यह भी सिद्ध हो सकता है कि जो ईसा का यह वचन सच्चा है, तो किसी ईसाई में एक राई के दाने के समान 'विश्वास' अर्थात् ईमान नहीं है। जो कोई कहे कि हम में पूरा वा थोड़ा विश्वास है, तो उससे कहना कि आप इस पहाड़ को मार्ग में से हटा[४] देवें। यदि उनके हटाने[५] से हट[६] जाय, तो भी पूरा विश्वास नहीं, किन्तु एक राई के दाने के बराबर है और जो न हटा[७] सके तो समझो एक छींटा भी विश्वास अर्थात् धर्म का 'ईमान' ईसाइयों में नहीं है। [८]यदि कोई कहे कि यहाँ अभिमान आदि दोषों का नाम पहाड़ है, तो भी ठीक नहीं; क्योंकि जो ऐसा हो तो मुर्दों, अन्धों, कोढ़ियों,

---

१. **भ्रष्ट पाठ**—दोनों हस्त० और द्विप्र० में "**विश्वास न जमाने**" भ्रष्ट पाठ है। अन्य सभी सं० में संशोधन कर लिया है।

२. **अपपाठ**—दोनों हस्त०, जग और तीनों संस्करणों में यहां '**विश्वासी और कल्याण न कर सका**' पाठ अशुद्ध है। यहां '**उनका कल्याण न कर सका**' पाठ उपयुक्त है। **विद्वानों द्वारा अपपरिवर्तन**—ग्रन्थकार का आशय है कि ईसा अपने शिष्यों का कल्याण न कर सका, यह नहीं कि उनको दूसरों का 'कल्याण करने वाला' न बना सकता। **स्वामी वेदानन्द जी, सिद्धान्ती जी, पं० भगवद्दत्त जी, पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक, स्वामी विद्यानन्द जी** ने ग्रन्थकार के आशय के विरुद्ध "**कल्याणकारी न कर सका**" पाठ बनाया है। उदयपुर सं० ने "**कल्याणमय न कर सका**" जटिल और नया पाठ बदला है, यद्यपि यह शुद्ध है।

३. **मूलह० में अपवर्तनी**—मूलह०, मूलप्रति सं० में यहां "**इन्जील**" अशुद्ध वर्तनी है।

४-७. **अव्यवस्थित वर्तनी और उचित संशोधन**—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र०, मूलप्रति सं० में इन चार प्रयोगों में अपवर्तनी '**हठा, हठाने, हठ, हठा**' का प्रयोग किया है जबकि अन्यत्र ग्रन्थ में इसी लिपिकर ने '**हटना**' धातु के शुद्ध प्रयोग भी किये हैं। हिन्दी-व्याकरणानुसार '**हटाने**' अर्थ में कोई '**हठ**' धातु नहीं है और न कहीं '**हठ**' का हटाना अर्थ ही है। द्वि०सं० में इसे शुद्ध कर दिया गया है। उदयपुर सं० ने "मूलस्वरूप" के भ्रम में अशुद्ध प्रयोगों को फिर से ग्रहण कर लिया है। यदि उक्त वर्तनी को ठीक माना जा रहा है तो पूर्व आयत में प्रयुक्त 'हठ' धातु से बने "**हठीले**" और "केवल हठ और मूर्खता की बातें हैं" (पृ० ७९९) "हठ छोड़के सत्य....ग्रहण करें" (पृ० ९९०), "हठ से मांगना" (पृ० ६४६) आदि का क्या अर्थ लेंगे? **स्वामी वेदानन्द जी, सिद्धान्ती जी** और **पं० भगवद्दत्त जी** ने इनको संशोधित कर लिया है किन्तु **पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक** यहां भी 'हठ' धातु पर आधारित प्रयोग स्वीकार करने के हठ को 'हठा' न सके। और भी देखिए, "**गाढ़ते, गाढ़ना, गाढ़**" (पृ० ७६५) को शुद्ध करके "गाड़ते, गाड़ना, गाड़" बना दिया, किन्तु इस इस अपवर्तनी के 'हठ' में अटक कर रह गये!

८. **मुद्रणलिपिकर द्वारा त्रुटित ऋषि-लिखित पांच पंक्तियां**—मुद्रणप्रति में मुद्रणलिपिकर ने "**यदि कोई.....प्रकट करता है**" ऋषि-लिखित पाठ त्रुटित छोड़ा है जिसे बाद में किनारे पर लिखकर पूर्ण किया है। अन्य सभी रेखांकित पाठ भी ऋषिलिखित हैं।

९. **अपपाठ**—दोनों हस्त० और तीनों ही संस्करणों में व्याकरण की दृष्टि से अशुद्ध पाठ मिलता है—"**मुर्दे, अन्धे, कोढ़ी, भूतग्रस्तों को चंगा करना।**" सभी पदों में द्वितीया बहुवचन का प्रयोग चाहिए। वेस, भद, जग, युमी, विस, उदयपुर सं० में अपपाठ है।

भूतग्रस्तों[९] को चंगा करना भी आलसी, अज्ञानी, विषयी और भ्रान्तों को बोध कराके सचेत, कुशल किया होगा। जो ऐसा मानें, तो भी ठीक नहीं; क्योंकि जो ऐसा होता, तो स्वशिष्यों को ऐसा क्यों न कर सका?[१] इसलिये ऐसी असम्भव बातें[२] कहना ईसा की अज्ञानता को प्रकट करता है।[३]

भला, जो कुछ भी विद्या ईसा में होती, तो ऐसी अटाटूट[४] जंगलीपन की बातें क्यों कहता?[५] तथापि—'**यत्र देशे द्रुमो नास्ति तत्रैरण्डोऽपि द्रुमायते**'=जिस देश में कोई भी वृक्ष न हो, तो उस देश में एरण्ड का ही वृक्ष सबसे बड़ा और अच्छा गिना जाता है, वैसे महाजंगली देश में ईसा का भी होना ठीक था।[६] आजकल ईसा की क्या गणना हो सकती है?॥ ८६ ॥

८७. ....मैं तुम्हें सच कहता हूँ, जो तुम मन न फिरावो और बालकों के समान न हो जावो, तो स्वर्ग के राज्य में प्रवेश न करने पाओगे। ३।[७] मत्ती इं०, प० १८। आ० ३॥

समीक्षक—जब अपनी ही इच्छा से मन का फिराना स्वर्ग का कारण और न फिराना नरक का कारण है, तो कोई[८] किसी का पाप-पुण्य कभी नहीं ले सकता, ऐसा सिद्ध होता है। और बालक के समान होने के लेख से यह विदित होता है कि ईसा की बहुत-सी बातें विद्या और सृष्टिक्रम से विरुद्ध

१-२. **श्रवणभ्रान्ति से अपपाठ**—दोनों हस्त० और सभी सं० में यह अपवाक्य है—''**जो ऐसा होता तो स्वशिष्यों को ऐसा क्यों न कर सकता।**'' भूतकालीन कथन के लिए भूतकालीन क्रिया का प्रयोग वांछनीय है। ''**बातें**'' बहुवचन-पद अपेक्षित है।

३. **मुद्रणलिपिकर द्वारा त्रुटित पद एवं व्यर्थ परिवर्तन**—मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं० में ''**इसलिये ऐसी**'' वाक्यांश में ''**ऐसी**'' पद त्रुटित है। मूलप्रति सं० में है और ग्राह्य है। इसी प्रकार यह अनुपयुक्त परिवर्तन किया है—''**ईसा की अज्ञानता का प्रकाश करता है।**'' निन्दा अर्थ में ''**प्रकाश करना**'' प्रयोग अनुपयुक्त है। मूलप्रति सं० का ''**प्रकट करना**'' महर्षिप्रोक्त पाठ उपयुक्त है, वही ग्राह्य है। वेस, उदयपुर सं० आदि में अनुपयुक्त पाठ को ग्रहण किया है।

४. **मुद्रणलिपिकर द्वारा अप-अनुवाद—अटाटूट**=पूरी तरह अथवा बिलकुल। द्वि०सं० में इस शब्द को हटाकर इसके स्थान पर ''**महाजंगली**'' पाठ रखा है। शायद, मुद्रण-लिपिकर को यह शब्द समझ में नहीं आया, अत: उसने प्रतिलिपि करते समय इसको जड़ से ही उड़ा दिया। ''**अटाटूट**'' का अर्थ ''**महा**'' नहीं है। उदयपुर सं० ने ठीक प्रयोग ग्रहण किया है।

५. **श्रवणभ्रान्ति से अपपाठ**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में ''**विद्या ईसा में होती तो ऐसी अटाटूट जंगलीपन की बात क्यों कह देता?**'' यह अपवाक्य है। भूतकालीन कथन में भूतकालीन क्रिया का प्रयोग ही व्याकरणसम्मत होता है। ऊपर शुद्ध पाठ रखा गया है। ''**बातें**'' बहुवचनान्त पद वांछित है। वेस, जग, भद, युमी, उदयपुर सं० में अपवाक्य है।

६. **मुद्रणलिपिकर की प्रमादलीला से भ्रष्ट ऋषि-पाठ**—मूलहस्त० की प्रतिलिपि करते समय प्रमादी मुद्रणलिपिकर ने शुद्ध महर्षिप्रोक्त पाठ को भ्रष्ट करके अपने आप पाठ बदलकर इस प्रकार लिखा है—''**अत्र देशे द्रुमो नास्ति तत्रैरण्डोऽपि द्रुमायते' इस देश में कोई भी वृक्ष न हो तो एरंड का ही कोई वृक्ष का भी होना ठीक था वृक्ष सबसे बड़ा और अच्छा गिना जाता है वैसे महाजंगली देश में आजकल ईसा की क्या गणना हो सकती है।**' द्विप्र० में शोधकों ने इसका यह भ्रष्ट रूप बनाया—''**यत्र देशे द्रुमो नास्ति तत्रैरण्डो द्रुमायते'' वृक्ष सबसे अच्छा और बड़ा गिना जाता है वैसे जिस देश में कोई भी वृक्ष न हो तो उस देश में एरण्ड का होना सा ईसा का भी होना महाजंगली देश में ठीक था। पर आजकल ईसा की क्या गणना हो सकती है?**' महर्षि के वेतनभोगी शोधकों द्वारा किया गया यह अशुद्ध परिवर्तन है। सभी सम्पादकों ने मूलह० के शुद्ध पाठ को ग्रहण करके पाठ को सुधार लिया है। **पं० मीमांसक जी** ने अनावश्यक रूप से यह पाठ बढ़ाया है—''वैसे महाजंगली [अविद्वानों के] देश में....''। जब महाजंगली कह दिया तो 'अविद्वान्' कहने की आवश्यकता कहां रह गई? कोई इसको शब्दार्थ कहे, तो वह भी नहीं बनता। वह भी 'महामूर्ख' ही बनेगा। ''**तथापि.....सकती है**'' पाठ मूलह० में ऋषि द्वारा परिवर्धित है।
अनावश्यक पाठभेद—स्वामी वेदानन्द जी और सिद्धान्ती जी ने उद्धरण के पाठ को इस प्रकार अनावश्यक रूप से बदला है—''**निरस्तपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते।**''

७. **मुद्रणलिपिकर द्वारा आयत का भ्रष्टपाठ**—मुद्रणह०, द्विप्र० में यहां यह भ्रष्ट आयत-पाठ लिखा मिलता है—''**स्वर्ग के राज्य में प्रवेश करने पाओगे।**'' इसका सभी सं० में संशोधन कर लिया गया है।

८. **उचित परिवर्धन**—मूलप्रति सं० में ''**कोई**'' पद त्रुटित है, द्विप्र०, द्वि०सं० में है और आवश्यक होने से ग्राह्य है।

थीं और यह भी उसके मन में था कि लोग मेरी बातों को बालक के समान मान लेवें, पूछें-गाछें[१] कुछ भी नहीं, आँख मीचके मान लेवें। बहुत-से ईसाइयों की बालबुद्धिवत् चेष्टा है, नहीं तो ऐसी युक्ति और विद्या से विरुद्ध बातों को क्यों मानते? और यह भी सिद्ध हुआ कि जो ईसा आप विद्याहीन, बालबुद्धि न होता, तो अन्य को बालवत् बनने का उपदेश क्यों करता? क्योंकि **जो जैसा होता है, वह दूसरे को भी अपने सदृश बनाना[२] चाहता ही है**॥ ८७॥

८८. ....मैं तुमसे सच कहता हूं कि धनवान् को स्वर्ग के राज्य में प्रवेश करना कठिन होगा। २३। फिर भी मैं तुमसे कहता हूं कि ईश्वर के राज्य में धनवान् के प्रवेश करने से 'ऊंट का सूई के नाके में से जाना' सहज है। २४। मत्ती इं०, प० १९। आ० २३। २४॥

समीक्षक—इससे यह सिद्ध होता है कि ईसा दरिद्र था। धनवान् लोग उसकी प्रतिष्ठा नहीं करते होंगे, इसलिये यह लिखा होगा। परन्तु यह बात सच नहीं, क्योंकि धनाढ्यों और दरिद्रों दोनों[३] में अच्छे-बुरे होते हैं। **जो कोई अच्छा काम करेगा, सुख पावेगा।**[४] और इससे यह भी सिद्ध होता है कि ईसा ईश्वर का राज्य किसी एक देश में मानता था, सर्वत्र नहीं। जब ऐसा है, तो वह ईश्वर ही नहीं, जो ईश्वर है उसका राज्य सर्वत्र है; पुनः उसमें प्रवेश करेगा वा न करेगा, यह कहना केवल अविद्या की बात है। और इससे यह भी आया कि जितने ईसाई धनाढ्य हैं, वे सब नरक में ही जायेंगे, और दरिद्र सब स्वर्ग में जायेंगे। भला, तनिक-सा विचार तो ईसा मसीह करते कि **जितनी सामग्री धनाढ्यों के पास होती है, उतनी दरिद्रों के पास नहीं। यदि धनाढ्य लोग विवेक से धर्ममार्ग में व्यय करें, तो दरिद्र नीच गति में पड़े रह सकते हैं[५] और धनाढ्य उत्तम गति को प्राप्त हो सकते हैं**॥ ८८॥

८९. यीशु[६] ने उनसे कहा—"मैं तुमसे सच कहता हूं कि नई सृष्टि में जब मनुष्य का पुत्र अपने ऐश्वर्य के सिंहासन पर बैठेगा, तब तुम भी जो मेरे पीछे हो लिये हो, बारह सिंहासनों पर बैठके इस्राएल के बारह कुलों का न्याय करोगे। २८। जिस किसी ने मेरे नाम के लिये घरों वा भाइयों वा

---

१. **पूछें-गाछें**=पूछना-ताछना (देशज प्रयोग)।

२. **उचित संशोधन**—मूलप्रति सं० में यह अपवाक्य है—"**वह दूसरे को भी अपने सदृश होना चाहता ही है**"। मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं० में संशोधित है, वही ग्राह्य है। "**होना**" के स्थान पर "**बनाना**" क्रिया शुद्ध है। रेखांकित पाठ ऋषिलेख में है।

३. **त्रुटित आवश्यक पद**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में "**दोनों**" पद त्रुटित है। वाक्यरचना की दृष्टि से आवश्यक है।

४. **मुद्रणलिपिकर की पाठत्रुटि से अप-परिवर्तन**—द्विप्र०, द्वि०सं० में इस वाक्य को इस प्रकार संशोधित किया है—"**जो कोई अच्छा काम करे वह अच्छा और बुरा करे वह बुरा फल पाता है**"। यह संशोधन अनावश्यक एवं असंगत है। यह मुद्रण-काल में अनुमान से किया गया है। मुद्रण-लिपिकर प्रतिलिपि करते समय "**जो कोई अच्छा काम करेगा**" इतना लिखकर अगला वाक्यांश "**सुख पावेगा**" छोड़ गया। मुद्रण-काल में शोधक ने त्रुटित वाक्य देखा तो अनुमान से द्विप्र० में इस समय प्रचलित वाक्य बना दिया। यह ठीक नहीं बन पाया, क्योंकि एक तो यहां आयत में केवल अच्छे अर्थात् स्वर्ग का ही प्रसंग है, बुरे अर्थात् नरक का नहीं। दूसरा, पूर्वापर में भूतकालीन क्रियाएं हैं अतः भूतकालीन क्रियायुक्त वाक्य ही उचित प्रयोग माना जायेगा। मूलप्रति सं० का पाठ ग्राह्य है। वेस, जग, भद, विस, युमी, उदयपुर सं० ने अपपाठ को ही ग्रहण किया है।

५. **अपपाठ**—दोनों हस्त०, तीनों सं० में यह अपपाठ है—"**दरिद्र नीच गति में पड़े रहें**"। यहां संभावनार्थक प्रयोग "**रह सकते हैं**" ही सही है। वाक्य के उत्तरार्ध में प्रयुक्त संभावनार्थक क्रिया "**हो सकते हैं**" के सम्बन्ध से भी यही सिद्ध होता है।
ऋषि-लेख—"**और दरिद्र......सकते हैं**" पाठ मूलहस्त० में ऋषि द्वारा परिवर्धित है।

६. **मुद्रणलिपिकर द्वारा अपवर्तनी**—मुद्रणह० में लिपिकर ने "**यीसू**" अपवर्तनी लिखी है। किसी मूर्ख शोधक ने उसका द्विप्र० में "**यीशू**" अपसंशोधन किया है। अब, अन्य सभी सं० में संशोधित कर लिया है।

बहिनों वा पिता वा माता वा स्त्री वा लड़कों वा भूमि को त्यागा है, सो सौ-गुणा पावेगा और अनन्त जीवन का अधिकारी होगा। २९। मत्ती इं०, प० १९। आ० २८।२९॥

समीक्षक—अब देखिये ईसा के भीतर की लीला! [यह इसलिये है][1] कि मेरे जाल से मरे पीछे भी लोग न निकल जायें! **और जिसने ३०) रुपयों[2] के लोभ में अपने गुरु को पकड़वाके[3] मरवाया, वैसे पापी भी उसके पास सिंहासन पर बैठेंगे।** और इस्राएल[4] के कुल का पक्षपात के कारण न्याय ही न किया जायगा,[5] किन्तु उनके सब गुनाह[6] माफ़ और अन्य कुलों का न्याय करेंगे। अनुमान होता है कि **इसी से ईसाई लोग ईसाइयों का बहुत पक्षपात कर किसी गोरे ने काले को मार दिया हो तो भी बहुधा पक्षपात से [उसको][7] निरपराधी कर छोड़ देते हैं,** ऐसा ही ईसा के स्वर्ग का भी न्याय होगा।

और इससे बड़ा दोष आता है, क्योंकि एक सृष्टि के आदि में मरा और एक 'क़यामत की[8] रात' के निकट मरा; एक तो आदि से अन्त तक आशा में ही पड़ा रहा कि कब न्याय होगा और दूसरे का उसी समय न्याय हो गया, यह कितना बड़ा अन्याय है! और जो नरक में जायगा, सो अनन्तकाल तक नरक भोगेगा और जो स्वर्ग में जायगा, वह सदा स्वर्ग भोगेगा, यह भी बड़ा अन्याय है; क्योंकि अन्तवाले साधनों[9] और कर्मों का फल भी अन्तवाला होना चाहिये। और तुल्य पाप वा पुण्य दो जीवों का भी नहीं हो सकता, इसलिये तारतम्य से अधिक-न्यून सुख-दु:खवाले अनेक स्वर्ग और नरक हों, तभी सुख-दु:ख भोग सकते हैं। सो ईसाइयों के पुस्तक में कहीं व्यवस्था नहीं, इसलिये यह पुस्तक ईश्वरकृत और[10] ईसा 'ईश्वर का बेटा' कभी नहीं हो सकता।

यह बड़े अनर्थ की बात है कि कदापि किसी के मा-बाप सौ-सौ नहीं हो सकते किंतु एक की एक मा और एक ही बाप होता है। अनुमान है कि मुसलमानों ने 'एक को ७२ स्त्रियाँ बहिश्त में मिलती

१-२. त्रुटित आवश्यक पाठ एवं अपप्रयोग—दोनों हस्त० और तीनों सं० में यह वाक्य अपूर्ण है, अत: बृहत् कोष्ठकान्तर्गत पद-परिवर्धन आवश्यक है। दोनों हस्त० और तीनों सं० में यहां वाक्यान्त में ''**जायें**'' क्रिया है, ''**पायें**'' क्रिया उचित है। आगे, दोनों हस्त० और तीनों संस्करणों में ''**रुपये**'' पद है, यह ''**रुपयों**'' होना चाहिए।

४. अपवर्तनी—मूलह०, मूलप्रति सं० में ''**ईस्रायेल**'' और मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं० में ''**इस्रायेल**'' अपवर्तनी है। द्रष्टव्य पृ० ८७२ पर टिप्पणी।

३,५. अपपाठ—दोनों हस्त० और तीनों संस्करणों में ये दो अपवाक्य हैं—''**अपने गुरु को पकड़ा मरवाया**'' यहां ''**पकड़वाके**'' क्रिया होगी। ''**ईस्रायेल के कुल का पक्षपात से न्याय ही न किया जायगा**'' में ''**पक्षपात से**'' का 'पक्षपात सहित न्याय न करना' अप-अभिप्राय प्रकट हो रहा है जबकि पक्षपात की भावना के कारण न्याय न किया जायेगा ग्रन्थकार का अभिप्राय है। अत: विस्पष्टार्थ के लिए ''**के कारण**'' पद आवश्यक हैं। यही अपपाठ वेस, जग, भद, युमी, विस, उदयपुर सं० में हैं।

६. मुद्रणलिपिकरकृत और मुद्रणकालीन भ्रष्ट पाठ—मूलह०, मूलप्रति सं० में ''**गुना:**'' अपवर्तनी है। यह फारसी में '**गुनाह**' शब्द होता है। मुद्रणलिपिकर ने ''**गुना:**'' को ''**गुन**'' और मुद्रणकाल में ''**गुण**'' बना दिया। मुद्रणह० और द्विप्र० में भ्रष्ट पाठ है—''**उनके सब गुण माफ.....करेंगे।**'' यह मुद्रणलिपिकर की भंग-लीला है। अब इस भ्रष्ट पाठ का अन्य सभी सं० में संशोधन कर लिया गया है।

७. त्रुटित आवश्यक पद—दोनों हस्त० और तीनों सं० में '**उसको**' पद त्रुटित है।

८-१०. मुद्रणलिपिकर कृत भ्रष्टपाठ एवं अपप्रयोग—(८) मूलह० में शुद्ध पाठ है—''**कयामत के रात के निकट मरा**''। शायद, मुद्रणलिपिकर भंग चढ़ाये हुए था। फिर उसने प्रमादलीला से कुछ-का-कुछ लिख डाला। इस पाठ के स्थान पर मुद्रणह०, द्विप्र० में ''**कयामत के रात के निकरा**'' अपपाठ है। (९) दोनों हस्त० और तीनों सं० में ''**साधन**'' एकवचन का अपप्रयोग है, (१०) दोनों सं० में ''**वा**'' पाठ अथवा का अप-अर्थ देता है, यहां ''**और**'' प्रयोग होना अपेक्षित है।

हैं' लिखा है, [सो यहीं से लिया होगा] ॥[१] ८९ ॥

९०. भोर को जब वह नगर को फिर जाता था[२] तब उसको भूख लगी। १८। और मार्ग में एक गूलर का वृक्ष देखके वह उस पास आया, परन्तु उसमें और कुछ न पाया, केवल पत्ते। और उसको कहा तुझमें फिर कभी फल न लगें, इस पर गूलर का वृक्ष तुरन्त सूख गया। १९।

मत्ती इं०, प० २१। आ० १८। १९ ॥

समीक्षक—सब ईसाई पादरी लोग कहते हैं[३] कि ईसा बड़ा शान्त, क्षमान्वित, क्रोधादि दोषरहित था, परन्तु इस बात को देख [ज्ञात होता है कि ईसा][४] क्रोधी और ऋतु के[५] ज्ञान से रहित था और वह जंगली मनुष्यपन के स्वभावयुक्त वर्तता था। भला, जो वृक्ष जड़ पदार्थ है, उसका क्या अपराध था कि उसको शाप[६] दिया और वह सूख गया! इसके शाप[७] से तो न सूखा होगा, किन्तु कोई औषधि डालने से सूख गया हो, तो आश्चर्य नहीं॥ ९० ॥

९१. उन दिनों के क्लेश के पीछे तुरन्त सूर्य अन्धियारा हो जायगा और चांद अपनी ज्योति न देगा, तारे आकाश से गिर पड़ेंगे और आकाश की सेना डिग जायगी। २९।

मत्ती इं०, प० २४। आ० २९ ॥

समीक्षक—वाह जी ईसा! तारों को किस विद्या से गिर पड़ना आपने जाना? और आकाश की सेना कौन-सी है, जो डिग जायगी? जो कभी ईसा थोड़ी भी विद्या पढ़ता, तो अवश्य जान लेता कि

---

१. **त्रुटित आवश्यक वाक्य**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में ''**सो यहीं से लिया होगा**'' वाक्य त्रुटित रह गया है। इसके बिना वाक्य पूर्ण नहीं होता। **ऋषिलेख**—''**यह बड़े.......लिखा है**'' पाठ मूलहस्त० में ऋषि द्वारा परिवर्धित है।

उदयपुर सं० द्वारा अनावश्यक परिवर्तन—सभी पाठों में यह वाक्य त्रुटित है। **स्वामी वेदानन्द जी, पं० भगवद्दत्त जी, पं० मीमांसक जी** आदि सभी ने इस वाक्य को स्वीकार किया हुआ है। परम्परा से स्वीकृत और उत्तम पाठ को छोड़कर उदयपुर सं० ने अपना यह नया पाठ बनाया है—''**मिलती हैं, यहां से लेकर लिखा है।**'' ऋषि का पाठ भी बदला और वाक्य भी उत्तम नहीं बना। ''अनुमान'' शब्द के प्रयोग के साथ संभावनार्थक क्रियाएं ही अधिक संगत होती हैं। पूर्व वाक्य में हस्तलेखों में ''**मा**'' वर्तनी है, उदयपुर सं० ने उसको नवीन वर्तनी ''**माँ**'' बना दिया है।

२. **महामूर्ख मुद्रणलिपिकर द्वारा कृत हास्यास्पद भ्रष्ट पाठ**—मूलहस्त में शुद्ध पाठ है—''**जब वह नगर को फिर जाता था....।**'' महामूर्ख मुद्रणलिपिकर शायद भांग चढ़ाये हुए था, उसने इसको लिखा—''**जब बहन गर को फिर जाता था**''। बाद में उसने दिमाग का थोड़ा प्रयोग किया और सोचा कि ''**गर**'' तो कुछ होता नहीं, तब उसने इसको ''**घर**'' बना दिया। उसके बाद यह भ्रष्ट इस प्रकार पाठ बन गया—''**जब वह बहन घर को फिर जाता था.....।**'' अब शोधकों की मक्कारी-लीला देखिए, यही हास्यास्पद भ्रष्टपाठ द्विप्र० में छपा है। किसी शोधक ने गम्भीरता से नहीं पढ़ा। ऐसे मूर्ख लिपिकरों और शोधकों को हमारे कुछ विद्वान् और पाठक ''श्रद्धेय और नमनीय'' कहते हैं!! अब सभी सं० में इसको संशोधित कर लिया है।

स्वामी वेदानन्द जी का भ्रष्टपाठ—स्वामी वेदानन्द जी ने भी अत्यन्त भ्रष्टपाठ बनाया है—''**जब वह घर को फिर जाता था.....।**'' सिद्धान्ती जी का भ्रष्ट पाठ है—''**जब वह ब्रह्म घर को जाता था।**'' यहां बाइबल में यीशु के नगर को लौटने का प्रसंग है, किसी के घर लौटने का नहीं। बाइबल से मिलान कर लेते तो पाठ भ्रष्ट नहीं होता।

३. **स्थानभ्रष्ट अपपाठ**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में इस वाक्य में पाठ का अपक्रम है—''**सब पादरी लोग ईसाई कहते हैं**''। ईसाई विशेषण पहले होना अपेक्षित है। उदयपुर सं० में भी अपपाठ है।

४. **त्रुटित आवश्यक पाठ**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में यहां पाठ त्रुटित है। बृहत् कोष्ठकान्तर्गत पदों के बिना यह वाक्य ही नहीं बनता, अत: परिवर्धन आवश्यक है।

५. **त्रुटित एवं अपपाठ**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में ''**ऋतु का ज्ञानरहित**'' अपपाठ है। उदयपुर सं० में भी अपपाठ एवं अस्त-व्यस्त है किन्तु वाक्य का आरम्भांश परिवर्धित कर लिया है—''**देख ज्ञात होता है कि क्रोधी**''। यह स्वतन्त्र परिवर्धन है।

६-७. **अपप्रयोग**—मूलह०, मूलप्रति सं०, मुद्रणहस्त० में '**स्राप**' अपप्रयोग है। द्विप्र०, द्वि०सं० और उदयपुर सं० में संशोधित है।

ये सब तारे भूगोल हैं, [और वे][१] क्योंकर गिरेंगे? इससे विदित होता है कि वह ईसा बढ़ई के कुल में उत्पन्न हुआ था[२], सदा लकड़े चीरना, छीलना, काटना और जोड़ना करता रहा होगा। जब तरंग उठी[३] कि मैं भी इस जंगली देश में पैगम्बर हो जाऊँ तो वैसी ही बातें करने लगा[४]। कितनी बातें उसके मुख से अच्छी भी निकलीं और बहुत-सी बुरी [भी][५]। वहां के लोग जंगली थे, [अतः सबको][६] मान बैठे।

जैसा आजकल यूरोप[७] उन्नतियुक्त है, वैसा पूर्व होता तो ईसा की सिद्धाई कुछ भी न चलती। अब कुछ विद्या हुए पश्चात् भी व्यवहार के पेच और हठ से इस पोकल मत[८] को न छोड़कर सर्वथा सत्य वेदमार्ग की ओर नहीं झुकते, यही इनमें कमी है॥ ९१ ॥

९२. आकाश और पृथिवी टल जायेंगे, परन्तु मेरी बातें कभी न टलेंगी। ३५।

मत्ती इं०, प० २४। आ० ३५ ॥

समीक्षक—यह भी बात अविद्या और मूर्खता की है। भला, आकाश हिलकर कहाँ जायगा? जब आकाश अतिसूक्ष्म होने से नेत्र से दीखता ही नहीं तो इसका हिलना कौन देख सकता है? और अपने मुख से अपनी बड़ाई करना अच्छे मनुष्यों का काम नहीं॥ ९२ ॥

९३. तब वह उनसे जो बाईं ओर हैं, कहेगा—"हे शापित[९] लोगो! मेरे पास से उस अनन्त आग में जाओ, जो शैतान और उसके दूतों के लिये तैयार की गई है। ४१।"

मत्ती इं०, प० २५। आ० ४१ ॥

समीक्षक—भला, यह कितनी बड़ी पक्षपात की बात है, जो अपने शिष्य हैं उनको स्वर्ग [देना][१०] और जो दूसरे हैं उनको 'अनन्त आग' में गिराना! परन्तु जब 'आकाश ही न रहेगा' लिखा, तो 'अनन्त

---

१. **त्रुटित आवश्यक पद**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में "**और वे**" पद त्रुटित हैं। इनका परिवर्धन आवश्यक है।

२. **ईसा का बढ़ई कुल**—बाइबल में अनेक स्थानों पर जानकारी दी है कि ईसा बढ़ई कुल का था। इसी ग्रन्थ में आयतखण्ड संख्या १०१ में भी यह वर्णन है।

३. **उचित संशोधन**—मूलह०, मुद्रणह०, मूलप्रति सं० में "**जब तरङ्ग उठा**" अपवाक्य है। द्वि० सं० में शुद्ध कर दिया है। उदयपुर सं० में अपपाठ ही है।

४. **अपवाक्य**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में यह त्रुटित अपवाक्य है—"**देश में पैगम्बर हो सकूंगा, बातें करने लगा।**"

५-६. **त्रुटित आवश्यक पद**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में कोष्ठकान्तर्गत पद परिवर्धन की अपेक्षा रखते हैं। इनके बिना वाक्य पूर्ण और स्पष्ट नहीं होते।

७. **मुद्रणकालीन अप-परिवर्धन**—दोनों हस्तलेखों में '**यूरोप**' पद उपयुक्त प्रयोग था। मुद्रणकाल में किसी शोधक ने उसको "**यूरोप देश**" अपप्रयोग बना दिया। यही अपपाठ सभी द्वि०सं० में छप रहा है। उदयपुर सं० ने भी हस्तलेखों के शुद्ध पाठ को छोड़कर अशुद्ध पाठ को ग्रहण किया है।

ऋषिलेख—"**जैसा......चलती**", आगे "**आकाश.......सकता है**" पाठ मूलहस्त० में ऋषि द्वारा परिवर्धित हैं।

८. **मुद्रणकालीन अपप्रयोग**—मूलह०, मुद्रणह० में शुद्ध प्रयोग है। मुद्रणसमय द्विप्र० में यह "**पोल मत**" अशुद्ध छप गया। वही अपप्रयोग द्वि०सं० में है, "**पोकल**" शुद्ध पद है। **पोकल** अर्थात् सारहीन या खोखला। यह गुजराती भाषा का शब्द है। ग्रन्थ में अन्यत्र भी कई स्थानों पर '**पोकल**' पद का प्रयोग है। मूलप्रति सं० में शुद्ध है। वेस, जग, भद, युमी, विस, उदयपुर सं० में अपप्रयोग को ग्रहण किया है। उसका कोई अर्थ नहीं है।

९. **अपवर्तनी**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में "**स्त्रापित**" अपवर्तनी है। द्र० आयत खण्डसंख्या १०, पृ० ८५६ पर टिप्पणी।

१०. **त्रुटित आवश्यक क्रिया**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में '**देना**' क्रिया त्रुटित रह गई है। इसके बिना वाक्य पूर्ण नहीं होता।

आग, नरक, बहिश्त कहां रहेंगे ?[1] जो शैतान और उसके दूतों को ईश्वर न बनाता, तो नरक की इतनी तैयारी क्यों करनी पड़ती ? और एक शैतान ही ईश्वर के भय से न डरा तो वह ईश्वर ही क्या है ? क्योंकि वह उसी का दूत होकर बागी हो गया और ईश्वर उसको प्रथम ही पकड़कर बन्दीगृह[2] में न डाल सका, न मार सका, पुनः उसकी ईश्वरता क्या ? जिसने ईसा को भी चालीस दिन दुःख दिया, ईसा भी उसका कुछ न कर सका, तो 'ईश्वर का बेटा' होना व्यर्थ हुआ। इसलिये ईसा ईश्वर का न बेटा और '**बाइबल**' का ईश्वर न ईश्वर हो सकता है॥ ९३ ॥

९४. तब बारह शिष्यों[3] में से एक यहूदा इस्करियोती[4] नामक एक शिष्य प्रधान याजकों के[5] पास गया और कहा। १४। जो मैं यीशु को आप लोगों के हाथ पकड़वाऊँ तो आप लोग मुझे क्या देंगे ? उन्होंने उसे तीस रुपये देने को ठहराया। १५।[6] मत्ती इं०, प० २६। आ० १४। १५॥

समीक्षक—अब देखिये, ईसा की सब करामात और ईश्वरता यहाँ खुल गई ! क्योंकि जो उसका प्रधान शिष्य था, वह भी उसके साक्षात् संग से पवित्रात्मा न हुआ, तो औरों को वह मरे पीछे पवित्रात्मा क्या कर सकेगा ?[7] और उसके विश्वासी लोग उसके भरोसे में कितने ठगाये जाते हैं, क्योंकि जिसने साक्षात् सम्बन्ध में शिष्य का कुछ कल्याण न किया, वह मरे पीछे किसी का कल्याण क्या कर सकेगा ?॥ ९४ ॥

९५. ....जब वे खाते थे तब यीशु ने रोटी लेके धन्यवाद किया और उसे तोड़के शिष्यों को दिया और कहा—''लेओ, खाओ यह मेरा देह है। २६।'' और उसने कटोरा लेके धन्य माना और उनको

---

१. **अपवाक्य**—दोनों सं० में यह अपवाक्य है—''**अनन्त आग, नरक, बहिश्त कहां रहेगी ?**'' उदयपुर सं० में अपवाक्य है।

२. **मुद्रणलिपिकर द्वारा अपवर्तनी**—मुद्रणह० में लिपिकर ने ''**बंदीग्रह**'' अपवर्तनी लिखी है। वही अशुद्ध द्विप्र० में छपी है।

३. **ईसा के बारह शिष्यों के नाम**—शमौन अर्थात् पतरस, इसी का भाई अन्द्रियास, जबदी के दो पुत्र याक़ूब और योहन्ना, फिलिप्स, बरतुल्मै, थोमा, मत्ती (ईसा के लिए अर्थसंग्रह करने वाला), हलफै के पुत्र याकूब तथा तद्दै, शमोन कनानी, यहूदा इस्करियोती (जिसने ईसा को पकड़वाया था) (मत्ती० १०.२)। **ऋषिलेख**—''**इसलिये......सकता है**'' मूलह० में ऋषिलेख में है।

४. **नाम की अपवर्तनी**—Judas Iscariot (यहूदा इस्करियोती)। द्रष्टव्य आयतखण्ड संख्या ९७ पर टिप्पणी सं० १, पृ० ९११ पर टि०सं० १। सभी सं० में यहां नाम की दो अपवर्तनियां पाई जाती हैं—
१. ''**यहूदाह**'', २. ''**यिहूदा**''। दोनों ही अशुद्ध हैं।''**यहूदा**'' शुद्ध है। मुद्रणह०, द्विप्र०, वेस, भद, युमी० में ''**यहूदाह**'' है, बाद में किसी ने इसको द्वि०सं० में ''यिहूदा'' कर दिया। उदयपुर सं० में भी यही भ्रष्ट वर्तनी गृहीत है। आगे आयतखण्ड ९७ में भी भ्रष्टवर्तनी है।'**यहूदाह**' (आयतखण्ड ३७ द्रष्टव्य) से यह 'यहूदा' नामक व्यक्ति भिन्न है। यह ईसा के बारह शिष्यों में है, जबकि वह पूर्वज है। द्रष्टव्य पृ० ९११ पर टिप्पणी संख्या १।

५. **Priests**=याजक, पुजारी, पुरोहित। उस समय पुरोहितों के पास धर्मविषयक दण्डाधिकार भी होता था।आज भी कुछ मतों में यह परम्परा है, जैसे—इस्लाम में '**क़ाज़ी**', सिखों में '**अकालतख्त**' के धर्माधिकारी अपने समुदाय के लोगों को दण्ड देते हैं।

६. **वर्तमान बाइबल में पाठान्तर**—वर्तमान बाइबल-अनुवाद में '**तीस चांदी के सिक्के उसको दे दिये**' ऐसा पाठ है।

७. **इतिहास बदला जाने लगा है**—ईसा मसीह में यदि लोगों को सचमुच निष्पाप और पवित्र करने की अलौकिक शक्ति थी तो वह अपने ही शिष्य को पवित्रात्मा क्यों न बना सका ? इस प्रकार के आरोपों से घबराकर नवीन ईसाई लेखक इतिहास को बदलने लगे हैं। बाइबल में प्राप्त स्पष्ट तथ्यों की, घटनाओं की उपेक्षा करके वे ईसा के शिष्य यहूदा इस्करियोती द्वारा ईसा को छल से पकड़वाने का उल्लेख ही नहीं करते अपितु ईसा के प्राणदण्ड को धर्मान्ध रोमन शासकों द्वारा दिया दण्ड लिखते हैं। यहूदा की घटना को उपेक्षित करके वे यह भी लिखते हैं कि ईसा के देहान्त के बाद बारहों शिष्यों ने ईसा के उपदेशों का प्रचार-प्रसार किया था (द्रष्टव्य, हिन्दी विश्वकोश-नागरी प्रचारिणी सभा, भाग दो, पृ० ४७, कालम दो) इस इतिहास में यहूदा द्वारा पकड़वाने की चर्चा ही नहीं है। यह इतिवृत्त ईसाई लेखकों पर आधारित पुस्तकों से लेकर लिखा गया है जबकि बाइबल की आयतों में इस विषयक स्पष्ट उल्लेख हैं। तो फिर, क्या बाइबल के लेख को झूठा मानेंगे ?

देके कहा—''तुम सब इससे पीओ। २७। क्योंकि यह मेरा लोहू अर्थात् नये नियम का लोहू[1] है''......। २८। मत्ती इं०, प० २६। आ० २६। २७। २८॥[2]

समीक्षक—भला, यह ऐसी बात कोई भी सभ्य करेगा विना अविद्वान् और जंगली मनुष्य के? शिष्यों से, खाने की चीज को अपना मांस[3] और पीने की चीजों को अपना लोहू [कोई] नहीं कह सकता।[4] और इसी बात को आजकल के ईसाई लोग '**प्रभु-भोजन**' कहते हैं, अर्थात् खाने-पीने की चीजों में ईसा के मांस और लोहू की भावना कर खाते-पीते हैं, यह कितनी बुरी बात है? जिन्होंने अपने गुरु के मांस और लोहू को भी खाने-पीने की भावना से न छोड़ा, तो और का कैसे छोड़ सकते हैं?॥ ९५ ॥

९६. और वह पितर[5] को और जब्दी[6] के दोनों पुत्रों को[7] अपने संग ले गया और शोक करने और बहुत उदास होने लगा। ३७। तब उसने उनसे कहा कि ''मेरा मन यहाँ लों अति उदास है कि मैं मरने पर हूं....''। ३८। और थोड़ा आगे बढ़के वह मुंह के बल गिरा और प्रार्थना की—''हे मेरे पिता! जो हो सके तो यह कटोरा मेरे पास से टल जाय''....। ३९।[8]

मत्ती इं०, प० २६। आ० ३७। ३८। ३९॥

समीक्षक—देखो, जो वह केवल मनुष्य न होता, 'ईश्वर का बेटा' और त्रिकालदर्शी और विद्वान् होता, तो ऐसी अयोग्य चेष्टा न करता। इससे स्पष्ट विदित होता है कि यह प्रपञ्च ईसा ने अथवा उनके चेलों ने झूठमूठ बनाया है कि 'वह ईश्वर का बेटा है, भूत-भविष्यत् का वेत्ता और पाप का क्षमा-कर्त्ता है।[9] इससे समझना चाहिये कि वह[10] केवल साधारण, सूधा-सच्चा अविद्वान् था;[11] न विद्वान्, न

---

१. **मुद्रणकालीन त्रुटि**—मुद्रणकाल में द्विप्र० में ''**लोहू**'' पद त्रुटित है। वेस, भद को छोड़ सभी ने इसको ग्रहण कर लिया है।

२. **अशुद्ध उद्धरण संख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र० में यहां २८ के स्थान पर ८३ आयतसंख्या अशुद्ध है।

३. **अपवर्तनी**—मूलप्रति सं० में इस अनुच्छेद में यहां ''**माँस**'' अपवर्तनी है। द्वि० सं० में संशोधित है। लिपिकर की विचित्र लीला देखिए कि दो पंक्ति नीचे पुनः दो बार प्रयुक्त ''**मांस**'' पद की वर्तनी शुद्ध है। ऐसे लिपिकर मिले थे महर्षि को!

४. **मुद्रणलिपिकर द्वारा भ्रष्टपाठ**—मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं० में सम्पूर्ण रूप से और मूलप्रति सं० में आंशिक रूप से यहां भ्रष्टपाठ है जो इस प्रकार है—''**कोई सभ्य भी करे विना अविद्वान् जंगली मनुष्य के शिष्यों से खाने की चीज को मांस और पीने की चीजों को लोहू नहीं कह सकता।**'' यह ''**करेगा**'' क्रिया का ''**गा**'' त्रुटित रहने से अपपाठ हुआ है। उदयपुर सं० में यह अर्धसंशोधित है। प्रश्नचिह्न अपस्थान पर है तथा ''**अपने**'' की जगह ''**अपना**'' प्रयोग शुद्ध होगा, ''**कोई**'' त्रुटित है।

५. Peter (पतरस) ईसा के बारह शिष्यों में से एक था। द्र० सूची पृष्ठ ९०९, टि० ३ में।

६. Zebedee (जबदी)। इसके दो पुत्र याकूब और योहन्ना थे जो ईसा के बारह शिष्यों में से थे। द्र०पृ० ९०९, टि० ३।

७. **मुद्रणलिपिकर और मुद्रणकाल का भ्रष्टपाठ**—मूलह० में शुद्ध पाठ है। मूर्ख मुद्रणलिपिकर ने '**पितर**' नाम को '**पिता**' लिखा, मुद्रणकाल में '**जबदी**' नाम का भी यह भ्रष्टपाठ बना दिया—''**और वह पिता को और जब दो के दोनों पुत्रों को....।**''
पं० मीमांसक जी का हास्यास्पद पाठ—मीमांसक जी ने '**जबदो**' अशुद्ध पाठ बनाया है। स्वामी विद्यानन्द जी ने उनका अन्धानुकरण किया। श्री जगदेवसिंह जी सिद्धान्ती ने द्विप्र० का भ्रष्टपाठ ग्रहण किया है। अब अन्य सभी ने संशोधन कर लिया है।

८. **कटोरा टलना**— बाइबल में '**कप**' शब्द है, जिसका आज की शब्दावली में '**प्याला**' अनुवाद भी किया जा सकता है। यह एक मुहावरा है जिसका अर्थ है—'**मृत्यु का अवसर टलना।**' उस समय वध दण्ड देने की एक विधि यह थी कि वध्य व्यक्ति को विष या पित्तमिश्रित सिरका आदि से भरा प्याला पीने को दिया जाता था। जैसे यूनानी दार्शनिक सुकरात को विष का प्याला पिलाकर मृत्युदण्ड दिया गया था। ईसा को भी पहले सिरके का प्याला पीने के लिए कहा गया था, जब उसने पीने से मना कर दिया, उसके बाद उसको क्रूस पर चढ़ाया गया (द्र० आयतखण्ड संख्या ९९)।

९. **अपपाठ**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में ''**पापक्षमा का कर्त्ता**'' अपपाठ है, यहां '**पाप का क्षमाकर्त्ता**' पाठ चाहिए।

१०. **अपप्रयोग**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में ''**यह**'' सर्वनाम का प्रयोग है, ''**वह**'' उपयुक्त है। ऊपर की पंक्तियों में ''**वह**'' है।

योगी, न सिद्ध था॥ ९६ ॥

९७. वह बोलता ही था कि देखो यहूदा,[१] जो बारह शिष्यों में से एक था, आ पहुंचा और लोगों के प्रधान याजकों और प्राचीनों[२] की ओर से बहुत लोग खड्ग और लाठियाँ लिये उसके संग। ४७। यीशु के पकड़वानेहारे ने उन्हें यह पता दिया था 'जिसको मैं चूमूं, उसको पकड़ो'। ४८। और वह तुरन्त यीशु पास आ बोला—''हे गुरु प्रणाम'' और उसको चूमा। ४९। ....तब उन्होंने यीशु पर हाथ डालके उसे पकड़ा। ५०। ....तब सब शिष्य उसे छोड़के भागे। ५६। ....अन्त में दो झूठे साक्षी आके बोले, इसने कहा कि ''मैं ईश्वर का मन्दिर ढा[३] सकता और उसे तीन दिन में फिर बना सकता हूं। ६१।'' तब महायाजक ने खड़ा हो यीशु से कहा[४]—''क्या तू कुछ उत्तर नहीं देता है, ये लोग तेरे विरुद्ध क्या साक्ष्य देते हैं।''[५] परन्तु यीशु चुप रहा। इसपर महायाजक ने उससे कहा—। ६२। ''मैं तुझे जीवते ईश्वर की क्रिया देता हूं,[६] हमसे कह तू 'ईश्वर का पुत्र' ख्रीष्ट है कि नहीं ?। ६३।'' यीशु उससे बोला—''तू तो कह चुका। ६४।'' ....तब महायाजक ने अपने वस्त्र फाड़के कहा—''यह ईश्वर की निन्दा कर चुका है, अब हमें साक्षियों का और क्या प्रयोजन ?''। ६५। ''देखो, तुमने अभी उसके मुख से ईश्वर की निन्दा सुनी है। अब क्या विचार करते हो ?'' तब उन्होंने उत्तर दिया—''यह वध के योग्य है। ६६।'' तब उन्होंने उसके मुंह पर थूका और उसे घूंसे मारे। औरों ने थपेड़े मारके कहा—। ६७। ''हे ख्रीष्ट! हमसे भविष्यद्वाणी बोल, किसने तुझे मारा ?। ६८।'' पितर बाहर अंगने में बैठा था और एक दासी उसके पास आके बोली—''तू भी यीशु गलीली[७] के संग था ?। ६९।'' उसने[८] सभों के सामने मुकरके कहा—''मैं नहीं जानता तू क्या कहती है। ७०।'' जब वह बाहर डेवढ़ी में गया तो दूसरी दासी ने उसे देखके, जो लोग वहां थे, उनसे कहा—''यह भी यीशु नासरी[९] के संग था''। ७१। वह क्रिया खाके[१०] फिर मुकरा कि मैं उस मनुष्य को नहीं जानता

---

११. **सूधा-सच्चा अविद्वान्**—यह मुहावरा है। इसका अर्थ है—''**भोला-भाला अशिक्षित।**'' सारे समुल्लास में ग्रन्थकार ने ईसा के लिए ऐसे ही विशेषणों का प्रयोग किया है। **ऋषिलेख**—''**इससे.......सिद्ध था**'' मूलह० में ऋषिलिखित है।

१. **अव्यवस्थित वर्तनी यहूदा नाम की**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में इस नाम की वर्तनी अव्यवस्थित है। इसकी तीन वर्तनियां मिलती हैं— १. **यहूदाह** (मूलसं० पृ० ५९१, द्वि०सं० पृ० ३३२). २. **यिहूदा** (मूलसं० पृ० ६१८, ६२५, ६२९; द्वि०सं० पृ० ३४६, ३४७, ३५०, ३५३)। ३. **यिहूदाह** (मूलसं० ६१९) दोनों ही नामों की अंग्रेजी वर्तनी क्रमश: Judah और Judas है। व्यक्ति भी ये दो हैं- १. यहूदाह, २. यहूदा इस्करियोती। पहले पर वर्तनी '**यहूदाह**' ग्राह्य है और दूसरे के नाम की यहाँ '**यहूदा**' ग्राह्य है। यही अव्यवस्था प्राय: सभी सं० और उदयपुर सं० में है। उदयपुर सं० में यहां सभी जगह ''**यिहूदा**'' अपवर्तनी है जबकि द्विप्र० में ''**यहूदाह**'' है। वर्तमान बाइबल में दोनों का एक उच्चारण 'यहूदा' दिया है।

२. **प्राचीन**—बुजुर्ग, वयोवृद्ध लोग।

३-५. **मुद्रणलिपिकर द्वारा प्रमाद से अशुद्ध पाठ**—मूलह० के पाठ को ध्यान से न देखकर मुद्रणलिपिकर ने यहां ''**ढा सकता**'' के स्थान पर ''**छा सकता**'' अशुद्ध पाठ लिख दिया। वही द्विप्र० में छपा। अब सभी सं० में संशोधित है। आगे, सभी में ये दो पाठ भी अशुद्ध हैं—''**तब महायाजक खड़ा हो यीशु से कहा**'', ''**साक्षी देते रहे**''।

६. **क्रिया देना**=शपथ दिलाना। मूलसं० में तद्भव रूप ''**किरिया देना**'' आदि बनाया है, जो अनावश्यक है। दोनों हस्त० में मूल ''**क्रिया**'' प्रयोग है, वही ग्राह्य है। आगे प्रयुक्त ''**क्रिया खाना**'' का अर्थ है—'शपथ खाना'।

७,९. **यीशु गलीली (Galilean) व नासरी (Nazareth)**—ईसा की माता मरियम का जन्मस्थान गलील देश का नासरत शहर था। इन देश-सम्बन्धों से ही यीशु को '**गलीली**' और '**नासरी**' कहा जाता है।

८. **मुद्रणलिपिकर द्वारा अशुद्ध परिवर्तन**—मूलह० के शुद्ध पाठ को, प्रतिलिपि करते समय मुद्रणलिपिकर ने ''**उन्होंने**'' बना दिया। यही अशुद्ध पाठ द्विप्र० में छपा है। सभी सं० में संशोधित है।

हूं। ७२। तब वह धिक्कार देने[११] और क्रिया खाने लगा कि ''मैं उस मनुष्य को नहीं जानता हूं....। ७४।''

मत्ती इं०, प० २६। आ० ४७-५०। ५६। ६१-७२। ७४॥[१]

समीक्षक—अब देख लीजिये कि उसका इतना भी सामर्थ्य वा प्रताप नहीं था कि अपने चेले को भी दृढ़ विश्वास करा सके और वे चेले भी चाहे प्राण भी क्यों न जाते, तो भी अपने गुरु को लोभ से न पकड़वाते, न मुकरते, न मिथ्याभाषण करते, न झूठी क्रिया खाते।[२]

और ईसा भी कुछ करामाती नहीं था। नहीं तो जैसा '**तौरेत**' में लिखा है कि—''लूत के घर पर पाहुनों को बहुत से मारने को चढ़ आये थे, वहाँ ईश्वर के दो दूत थे, उन्होंने उन्हीं को अन्धा कर दिया।'' [बाइबल उत्पत्ति, पर्व १९। आ० ११] यद्यपि वह भी बात असंभव है तथापि ईसा में तो इतना भी सामर्थ्य न था। और आजकल कितना भडम्बा[३] उसके नाम पर ईसाइयों ने बढ़ा रक्खा है। भला, **ऐसी दुर्दशा से मरने से आप स्वयं जूझ[४] वा समाधि चढ़ा[५] अथवा किसी प्रकार से प्राण छोड़ता, तो अच्छा था, परन्तु वह बुद्धि विना विद्या के कहाँ से उपस्थित हो?**॥ ९७॥

वह ईसा यह भी कहता है कि—

९८. मैं अभी अपने पिता से विनति नहीं करता हूँ, वह मेरे पास स्वर्गदूतों की बारह सेनाओं से अधिक पहुँचा देगा। ५३। मत्ती इं०, प० २६। आ० ५३॥

समीक्षक—धमकाता जाता, अपनी और अपने पिता की बड़ाई भी करता जाता, और उसका कुछ भी नहीं कर सका।[६] देखो, आश्चर्य की बात! जब महायाजक ने पूछा था कि 'ये लोग तेरे विरुद्ध साक्ष्य[७] देते हैं, इसका उत्तर दे' तो ईसा चुप रहा। यह भी ईसा ने अच्छा न किया; क्योंकि जो सच था, वह वहाँ अवश्य कह देता, तो भी अच्छा होता। बहुत-सी अपने घमण्ड की बातें करनी उचित न थीं।

१०-११. मुद्रणलिपिकर के प्रमाद से अपपाठ—संख्यांक १० पर ''**उसने किरिया खाके फिर मुकरा**'' दोनों हस्त० और तीनों सं० में अपपाठ है। संख्यांक ११ पर, मूलह०, मूलसं० में शुद्ध पाठ है। प्रतिलिपि करते समय मुद्रणलिपिकर ने प्रमादवश यह अपपाठ लिखा—''**वह धिक्कार देकर देने....लगा।**'' यही अशुद्ध पाठ द्विप्र० में छपा है। अन्य सभी सं० में संशोधित है।

१. **त्रुटित उद्धरण संख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं० भद में आयतसंख्या ५६ त्रुटित है। अन्य सभी सं० में परिवर्धित है।

२. **झूठा शिष्य**—यह झूठ बोलने और मिथ्या शपथ खाने वाला शिष्य '**पितर**' (पितरस) था।

३. **मुद्रणलिपिकर द्वारा भ्रष्ट प्रयोग**—**भडम्बा**=आडम्बर या ढोंग। **भ्रष्ट प्रयोग**—मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं० में यहां ''**भड़वा**'' भ्रष्ट प्रयोग है। यह शुद्ध शब्द होता है ''**भडम्बा**''। ऋषि ने यही बोला था। मूल लिपिकर ने ''**भडम्बा**'' ही लिखा था। मूलप्रति सं० में यही शुद्ध पाठ है। मुद्रण-लिपिकर शायद ''**भडम्बा**'' प्रयोग से परिचित नहीं था, अत: उसने प्रतिलिपि करते समय इसका हास्यास्पद रूप ''**भड़वा**'' बना दिया। वही द्विप्र०, द्वि०सं० में छपता आ रहा है।

सम्पादक विद्वान् भी बहके—महर्षि के लिपिकरों और वेतनभोगी शोधकों-सम्पादकों की बात छोड़ दीजिए, सवा-सौ से अधिक वर्षों से हमारे माननीय सभी विद्वान् सम्पादक ''**भड़वा**'' पद को सहेजे बैठे हैं!! पता नहीं क्यों, उन्होंने शब्दकोश देखने का यत्न भी नहीं किया। **पं० भगवद्दत्त जी, पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक** सदृश विद्वानों ने भी इसी अपप्रयोग को ग्रहण कर लिया। **स्वामी वेदानन्द जी** और **सिद्धान्ती जी** ने इसके स्थान पर '**बढ़ावा**' पाठ कल्पित करके सन्तोष कर लिया, जबकि 'बढ़ावा' कोई प्रयोग नहीं बनता। उदयपुर सं० ने शुद्ध प्रयोग ''**भडंबा**'' को ग्रहण कर लिया है।

४. **अपवर्तनी**—दोनों हस्त०, तीनों सं० में ''**झूझ**'' अपवर्तनी है। हिन्दी में '**जूझना**' क्रिया है। उससे '**जूझ**' बनेगा।

५. **समाधि चढ़ा** अर्थात् प्राणायाम, समाधि-योग से शरीर त्यागना। महर्षि दयानन्द ने अन्तिम समय योग द्वारा शरीर छोड़ा था।

६. **अपक्रिया**—दोनों हस्त० और तीनों संस्करणों में ''**कर सकता**'' अपक्रिया है। उदयपुर सं० में भी अशुद्ध है।

७. **अपप्रयोग**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में ''**साक्षी देते हैं**'' अपप्रयोग है। '**साक्षी**' का अर्थ है—'**साक्ष्य देने वाला**'।

८. **ऋषिलेख**—''**यदि ईसा.......लावें**'' पाठ मूलहस्त० में ऋषि द्वारा परिवर्धित है।

और **जिन्होंने ईसा पर झूठ-फरेब डालकर बुरे हाल कर मारा, उनको भी यह उचित न था; क्योंकि ईसा का उस प्रकार का अपराध नहीं था, जैसा उसके विषय में उन्होंने किया।** परन्तु वे भी तो जंगली थे। न्याय की बातों को क्या समझें? यदि ईसा झूठ-मूठ 'ईश्वर का बेटा' न बनता और वे उसके साथ ऐसी बुराई न वर्तते, तो दोनों के लिये उत्तम काम था। परन्तु इतनी विद्या, धर्मात्मता और न्यायशीलता कहाँ से लावें?॥ ९८ ॥

९९. यीशु, अध्यक्ष के आगे खड़ा हुआ और अध्यक्ष ने उससे पूछा—''क्या तू यहूदियों का राजा है?'' यीशु ने उससे कहा—''आप ही तो कहते हैं। ११।'' जब प्रधान याजक और प्राचीन लोग उसपर दोष लगाते थे, तब उसने कुछ उत्तर नहीं दिया। १२। तब पिलातुस ने उससे कहा—''क्या तू नहीं सुनता कि ये लोग तेरे विरुद्ध कितने साक्ष्य देते हैं। १३।'' परन्तु उसने एक वार भी उसको उत्तर न दिया, यहाँ लों कि अध्यक्ष ने बहुत अचम्भा किया। १४। पिलातुस ने उनसे कहा—''तो मैं यीशु से, जो 'ख्रीष्ट'[1] कहावता है, क्या करूँ?'', सभों ने उससे कहा—''वह क्रूस पर चढ़ाया जाय....। २२।'' और यीशु को कोड़े मारके क्रूस पर चढ़ाये जाने को सौंप दिया। २६। तब अध्यक्ष के योद्धाओं ने यीशु को अध्यक्ष-भवन में ले जाके सारी पलटन उस पास इकट्ठी की। २७। और उन्होंने उसका वस्त्र उतारके उसे लाल बागा[2] पहिराया। २८। और कांटों का मुकुट गूंथके उसके शिर पर रक्खा और उसके दाहिने हाथ में नरकट[3] दिया और उसके आगे घुटने टेकके यह कहके उससे ठट्ठा किया—''हे यहूदियों के राजा! प्रणाम। २९।'' और उन्होंने उसपर थूका और उस नरकट को ले उसके शिर पर मारा। ३०। जब वे उससे ठट्ठा कर चुके तब उससे वह बागा उतारके मसीह[4] का वस्त्र[5] पहिराके उसे क्रूस पर चढ़ाने को ले गये। ३१।

जब वे एक स्थान पर जो गलगथा[6] अर्थात् खोपड़ी का स्थान कहाता है,[7] पहुंचे। ३३। तब

---

१. **ख्रीष्ट**=Christ. (क्राइस्ट)।

२. **बागा**=चोगा। **अशुद्ध संशोधन**—बाइबल के अनुवाद में '**बागा**' ही पाठ है। मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र०, में पाठ ठीक है। द्वि०सं० का ''**बाना**'' परिवर्तन अशुद्ध है। ''**बागा**'' एक प्रकार का ''**चोगा**'' होता है, ''**बाना**'' का अर्थ ''**वेश-भूषा**'' है। उदयपुर सं० ने ठीक प्रयोग ग्रहण किया है किन्तु **पं० भगवद्दत्त जी** ने अपप्रयोग ''**बाना**'' ग्रहण किया है।

३. **नरकट**=नरकुल नामक बड़ी घास का डंडा।

४. **मसीह**=धर्मगुरु वा चमत्कारी गुरु या सन्त। इसी कारण ईसाई ईसा को 'मसीह' कहते हैं। उसी के वस्त्र उसको पुनः पहनाये।

५. **द्वितीय सं० में भ्रष्ट पाठ**—द्वि०सं० में यहां ''**मसी का वस्त्र**'' को भ्रान्ति से ''**उसी का वस्त्र**'' पाठ बना दिया है। मुद्रणप्रति व द्विप्र० में ठीक पाठ है। किसी ने बीच के ३३ वें सं० में पाठ बिगाड़ा है। वस्तुतः यह '**मसीह**' शुद्ध शब्द है। '**मसी**' अपभ्रंश पद है। जैसे पृ० ५३० पर '**मसी**' प्रयोग है और पृ० ९०५ पर शुद्ध प्रयोग है।

६. **गलगथा** (Golgotha)=गुलगुता=वधस्थल। बाइबल के वर्तमान हिन्दी अनुवादों में '**गुलगुता**' वर्तनी मिलती है।

७. **मुद्रणलिपिकर द्वारा महाभ्रष्ट पाठ**—एक और हास्यास्पद महाभ्रष्टपाठ का नमूना लीजिए। मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं० में ''**जो गल गया अर्थात् खोपड़ी का स्थान**'' महाभ्रष्ट पाठ है। मूल हस्तलेख में यह ''**गलगथा**'' शुद्ध था। मुद्रण-लिपिकर को यह समझ नहीं आया तो उसने ''**जो गल गया था**'' बना दिया। यह परोपकारिणी के ३३वें संस्करण तक छपता रहा। हमारे विद्वान् सम्पादक भी निश्चिन्त होकर सोते रहे कि ''चलो, खोपड़ी का स्थान गल तो गया है, अब क्या करना है गले हुए का!'' ३४वें सं० में किसी का इस भ्रष्ट वाक्य पर ध्यान गया तो यह सुधरा, किन्तु द्वि०सं० वाले अभी भी ''**गल गया था**'' पाठ में ही ग्रस्त हैं!!! और की तो छोड़िए, **पं० भगवद्दत्त जी** और सिद्धान्ती जी ने भी इस महाभ्रष्ट पाठ को ग्रहण किया है। पता नहीं, यह भ्रष्ट पाठ उनके ध्यान में क्यों नहीं आया? कभी-कभी विद्वान् भी विचार नहीं करते। उदयपुर सं० में संशोधित प्रयोग है।

उन्होंने सिरके में पित्त मिलाके उसे पीने को दिया परन्तु उसने चीखके पीना न चाहा। ३४। तब उन्होंने उसे क्रूस[१] पर चढ़ाया....। ३५। और उन्होंने उसका दोषपत्र उसके शिर के ऊपर लगाया....। ३६। तब दो डाकू, एक दाहिनी ओर और दूसरा बाईं ओर उसके संग क्रूसों पर चढ़ाये गये। ३८।

जो लोग उधर से आते-जाते थे, उन्होंने अपने सिर हिलाके और यह कहके उसकी निन्दा की। ३९। 'हे मन्दिर के ढानेहारे! अपने को बचा; जो तू ईश्वर का पुत्र है तो क्रूस पर से उतर आ। ४०।' इसी रीति से प्रधान याजकों ने भी अध्यापकों और प्राचीनों के संगियों ने ठट्ठा कर कहा—'उसने और को बचाया, अपने को बचा नहीं सकता है। ४१। जो वह इस्राएल का राजा है तो क्रूस पर से अब उतर आवे और हम उसका विश्वास करेंगे। ४२। वह ईश्वर पर भरोसा रखता है, यदि ईश्वर उसको चाहता है, तो उसको अब बचावे। क्योंकि उसने कहा—''मैं ईश्वर का पुत्र हूँ। ४३।'' जो डाकू उसके संग चढ़ाये गये, उन्होंने भी इसी रीति से उसकी निन्दा की। ४४।

दो पहर से तीसरे पहर लों सारे देश में अंधकार हो गया। ४५। तीसरे पहर के निकट यीशु ने बड़े शब्द से पुकारके कहा—''एली एली लमा शबक्तनी''[२] अर्थात् 'हे मेरे ईश्वर! हे मेरे ईश्वर! तूने क्यों मुझे त्यागा है। ४६।' जो लोग वहाँ खड़े थे उनमें से कितनों ने यह सुनके कहा, वह एलियाह[३] को बुलाता है। ४७। उनमें से एक ने तुरन्त दौड़के इस्पंज[४] लेके सिरके में भिगोया और नरकट पर रख के उसे पीने [=चूसने] को दिया। ४८। ....तब यीशु ने फिर बड़े शब्द से पुकार के प्राण त्यागा। ५०।

मत्ती इं०, प० २७। आ० ११-१४। २२। २६-३१। ३३-३५। ३७-४८। ५०॥[५]

समीक्षक—सर्वथा, यीशु के साथ उन दुष्टों ने बुरा काम किया, परन्तु यीशु का भी दोष है, क्योंकि ईश्वर का न कोई पुत्र, न वह किसी का बाप है; क्योंकि जो वह किसी का बाप होवे, तो किसी का श्वसुर, साला,[६] सम्बन्धी आदि भी होवे। और जब अध्यक्ष ने पूछा था, तब जैसा सच था, उत्तर देना था। और यह ठीक है कि जो-जो आश्चर्यकर्म प्रथम किये हुए सच्चे होते, तो अब भी क्रूस पर से उतर, आ,[७] सबको अपना शिष्य बना लेता। और जो वह 'ईश्वर का पुत्र' होता तो ईश्वर भी उसको

---

१. **अपवर्तनी**—दोनों हस्त० और तीनों संस्करणों में '**क्रूश**' अपवर्तनी है, आयत के अनुवाद में भी और समीक्षा भाग में भी। इस प्रसंग में आधा दर्जन से अधिक बार '**क्रूश**' अपवर्तनी प्रयुक्त हुई है। यही अपवर्तनी उदयपुर सं० में है। बाइबल में इसकी शुद्ध वर्तनी '**क्रूस**' (Cross) है। शुद्ध, मानकता और एकरूपता के लिए इस सं० में सर्वत्र यही गृहीत है।

२. **अंग्रेजी मूल**—"Eli, Eli La'ma sabach-tha'ni?"
भ्रष्टपाठ और पाठान्तर की कथा—दोनों हस्तलेखों में, पं० मीमांसक सं०, द्वि०सं०, सिद्धान्ती सं०, मूलसं०, उदयपुर सं० में ''**एली एली लामा सबक्तनी**'' पाठ है। द्विप्र० और पं० भगवद्दत्त सं० में भ्रष्टपाठ ''**सबक्तनीहू**'' है। स्वामी वेदानन्द सं० में ''**लमा**'' उच्चारण है। स्वामी जगदीश्वरानन्द सं० में ''**लामा शबक्तनी**'' उच्चारण दिया है। बाइबल में प्रयुक्त वर्तनी और उच्चारण ''**लमा शबक्तनी**'' है, अतः वही इस सं० में दिया गया है।

३. Eli'Jah (एलियाह)   ४. Sponge (स्पंज)।

५. **अशुद्ध उद्धरण संख्या**—इस उद्धरण संख्या में प्रायः सभी सं० में अन्तर है। मुद्रणह०, द्विप्र०, वेस, भद में २३, २४, ४९ अशुद्ध हैं, ३५ त्रुटित है। द्वि०सं०, युमी में २३ अशुद्ध है। मूलसं० में २१, २३ अशुद्ध हैं। उदयपुर सं० में ३५ त्रुटित है।

६. **मुद्रणलिपिकरकृत अपवर्तनी**—मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं० में ''**साला**'' के स्थान पर ''**श्याला**'' अपवर्तनी है। मूलह० मूलप्रति सं० में ''**साला**'' शुद्ध है, वही ग्राह्य है। ग्रन्थ में प्रायः सर्वत्र हिन्दी में स्वीकृत ''**साला**'' वर्तनी प्राप्त है।

७. **मुद्रणलिपिकर द्वारा क्रिया परिवर्तन**—मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं० में ''**आ**'' क्रिया त्रुटित है। मूलप्रति में है। वहां ''**उत्तर कर**'' व्यर्थ बदला है।

बचा लेता। **जो वह त्रिकालदर्शी होता, तो सिरके[१] में पित्त मिले हुये को चीखके क्यों छोड़ता? वह पहले से ही जानता होता। और जो वह करामाती होता,[२] तो पुकार-पुकार के प्राण क्यों त्यागता? अर्थात् चाहे कितनी ही कोई चतुराई करे,[३] परन्तु अन्त में सच, सच और झूठ, झूठ हो जाता है।** इससे यह सिद्ध हुआ कि यीशु एक उस समय के जंगली मनुष्यों में से कुछ अच्छा था। न वह करामाती, न 'ईश्वर का पुत्र' और न विद्वान् था, क्योंकि जो ऐसा होता, तो वह दुःख क्यों भोगता?॥ ९९॥

१००. और देखो, बड़ा भुईंडोल[४] हुआ कि परमेश्वर का एक दूत [स्वर्ग से] उतरा और आके कब्र[५] के द्वार पर से पत्थर लुढ़काके उसपर बैठा। २।....वह यहाँ नहीं है, जैसे उसने कहा वैसे जी उठा है। ६। जब वे उसके शिष्यों को सन्देश देने[६] जाती थीं,[७] देखो, यीशु उनसे आ मिला, कहा—''कल्याण हो'' और उन्होंने निकट आ उसके पांव पकड़के उसको प्रणाम किया। ९। तब यीशु ने कहा—मत डरो, जाके मेरे भाइयों से कह दो, कि वे गलील को जावें और वहाँ वे मुझे देखेंगे। १०।

ग्यारह शिष्य गलील में उस पर्वत पर[८] गये जो यीशु ने उन्हें बताया था। १६। और उन्होंने उसे देखके उसको प्रणाम किया, पर कितनों को सन्देह हुआ। १७। यीशु ने उनके पास[९] आ उनसे कहा—''स्वर्ग में और पृथिवी पर समस्त अधिकार मुझको दिया गया है। १८। ....और देखो मैं जगत् के अन्त लों सब दिन तुम्हारे संग हूँ। २०।''

मत्ती इं०, प० २८। आ० २। ६। ९। १०। १६। १७। १८। २०॥

समीक्षक—यह बात भी मानने योग्य नहीं, क्योंकि सृष्टिक्रम और विद्याविरुद्ध है। प्रथम, ईश्वर के पास दूतों का होना, उनको जहाँ-तहाँ भेजना, ऊपर से उतरना [आदि बातों ने] क्या तहसीलदार,

---

१. **अव्यवस्थित वर्तनी**—दोनों हस्त० और द्वि०सं०, मूलसं० में यहां एक ही आयतखण्ड में इस स्थान पर ''**सिर्का**'' अपवर्तनी है। गतपृष्ठ पर दो बार (आयत क्रमसंख्या ९९) में दोनों सं० में ''**सिरका**'' है। व्यवस्था, एकरूपता, मानकता की दृष्टि से ''**सिरका**'' ही ग्राह्य है। यही अव्यवस्था उदयपुर सं० सहित सभी में है। द्विप्र० में तीनों स्थलों पर ''**सिर्का**'' अपवर्तनी है।

२. **उचित संशोधन**—मूलप्रति सं० में यहां ''**हो**'' अपक्रिया है। द्वि० सं० में ''**होता**'' संशोधित है, यही ग्राह्य है।

३. **अपपाठ**—मूलप्रति सं० में ''**चाहे कितने ही कोई चतुराई करे**'' अपवाक्य है। द्वि०सं० में इस वाक्य में ''**कोई**'' पद त्रुटित है, शेष संशोधित है। यहां प्रदर्शित पाठ उपयुक्त है। उदयपुर सं० में भी ''**कोई**'' पद त्रुटित है।

४. **भुईंडोल**=भूकम्प। मुद्रणह० में ''**भूईंडोल**'' तथा द्विप्र० में ''**भूईंदोल**'' वर्तनी है। यह प्राचीन रूप है।

५. **अपवर्तनी**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में सर्वत्र ''**क़बर**'' अपवर्तनी है।

६. **मुद्रणलिपिकर द्वारा त्रुटित पद**—प्रतिलिपि करते समय मुद्रणलिपिकर ने ''**देने**'' पद छोड़ दिया। द्विप्र० में त्रुटित है।

७. **पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक की तथ्यविरुद्ध टिप्पणी**—''**शिष्यों को सन्देश देने जाती थीं**'' इस वाक्य पर पं० जी शीघ्रता में यह अविचारित टिप्पणी दे गये कि ''**सम्भवतः पहरा देने वाली स्त्रियां**''। पता नहीं पं० जी का ध्यान कैसे विचलित हो गया कि उन्होंने इस वाक्य को भी ध्यान से नहीं पढ़ा। इसमें स्पष्ट लिखा है कि वे स्त्रियां शिष्यों को संदेश (ईसा के पुनर्जीवित होने का) देने जा रही थीं। वे पहरा देने वाली नहीं थीं, वे ईसा की अनुयायी थीं। पं० जी ने बाइबल का प्रसंग भी नहीं देखा, नहीं तो यह भूल नहीं होती। पहरा देने वाले तो राजकर्मचारी थे (मत्ती० २८.११-१३)। वे स्त्रियां ईसा की अनुयायी थीं तथा उन्होंने क्रूस पर चढ़ाने का दृश्य दूर से देखा था, उनमें एक ईसा की माता भी थी। फिर वे ईसा की कब्र को देखती रहीं थीं (मत्ती० २७.५५, ५६, ६०, ६१)। छह दिन बाद ये फिर कब्र को देखने आईं तो स्वर्गदूत ने उनको बताया कि ईसा मसीह पुनर्जीवित होकर गलील देश पहुंचेगा। वे स्त्रियां खुशी में भरकर ईसा के अनुयायियों को यह समाचार देने वहां से निकल पड़ी थीं (मत्ती० २८.१-८)। अतः पं० जी की टिप्पणी बाइबल के तथ्यों के विपरीत होने से अस्वीकार्य है।

८. **अपपाठ**—दोनों हस्त०, द्विप्र० और मूलसं० में ''**पर्वत में गये**'' अपपाठ है। अन्य सभी सं० में संशोधित है।

९. **अपप्रयोग**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में ''**उन पास आ**'' अपप्रयोग है।

कलेक्टर के समान ईश्वर को बना दिया?[१] क्या उसी शरीर से स्वर्ग को गया और जी उठा? क्योंकि उन स्त्रियों ने उसके पग पकड़के प्रणाम किया तो क्या वही शरीर था? और वह तीन दिन लों सड़ क्यों न गया? और अपने मुख से सबका अधिकारी बनना केवल दम्भ की बात है। शिष्यों से मिलना और उनसे सब बातें करना असंभव है; क्योंकि जो ये बातें सच हों, तो आजकल भी कोई क्यों नहीं जी उठते? और उसी शरीर से स्वर्ग को क्यों नहीं जाते॥[२] १००॥

यह '**मत्ती-रचित्त इंजील**' का विषय हो चुका। अब[३] '**मार्क-रचित इंजील**' के विषय में लिखा जाता है।

''मार्क[४] रचित इंजील''

१०१. यह क्या बढ़ई नहीं[५]......।३। मार्क इं०, प० ६। आ० ३॥

समीक्षक—असल में यूसुफ[६] बढ़ई था, इसलिये ईसा भी बढ़ई था। कितने ही वर्ष तक बढ़ई का काम करता था। पश्चात् पैगम्बर बनता-बनता 'ईश्वर का बेटा' ही बन गया और जंगली लोगों ने बना लिया। तभी बड़ी कारीगरी चलाई। काट-कूट, फूट-फाट करना[७] उसका काम है॥ १०१॥

---

१. **अपवाक्य**—दोनों हस्त०, तीनों सं० में यह अपवाक्य है—''**क्या तहसीलदारी, कलेक्टरी के समान ईश्वर को बना दिया**''। इसमें '**तहसीलदार**' और '**क्लेक्टर**' संज्ञा वांछनीय है, भाववाचक संज्ञा नहीं। उदयपुर सं० आदि में अशुद्ध है।

२. **स्वामी वेदानन्द जी की टिप्पणी चिन्त्य**—स्वामी वेदानन्द जी ने इस समीक्षा पर, 'Crucifixion' नामक पुस्तक को उद्धृत करते हुए, उसमें लिखी इस किंवदन्ती की संभावना पर सहमति व्यक्त की है कि क्रूस पर चढ़ाये जाने के बाद ईसा मरे नहीं थे। मरने से पूर्व ईसा के मठ के श्वेत वस्त्रधारी साधुओं ने राज्याधिकारियों से उसका शरीर ले लिया था और चिकित्सा करके उसको स्वस्थ कर दिया था। स्वस्थ होकर ईसा गलील में प्रचार करता रहा (पृ० ४९७)। पुस्तक में तर्क दिया गया है कि बाइबल में वर्णित श्वेतवस्त्रधारी देवदूत ईसा के मठ का कोई साधु था। पुस्तक में व्यक्त विचारों का न तो बाइबल के तथ्यों में मेल है और न परस्पर मेल है। यदि साधु मृत्यु से पूर्व ईसा के जीवित शरीर को मांग ही ले गये थे तो कब्र खुदवाने की, छठे दिन आकर कब्र का पत्थर हटाने की, कब्र के मुख पर छठे दिन देवदूत साधु के बैठने की चर्चा ही व्यर्थ है। बाइबल (मत्ती० पर्व० २७, २८) में स्पष्ट लिखा है कि '**ईसा ने चिल्ला-चिल्लाकर बड़े कष्ट से प्राण छोड़े, उसके लिए कब्र बनाई गई, उसमें दफनाया गया**', आदि। छठे दिन जब शव गायब पाया गया तो पहरेदारों में घबराहट फैल गई। उच्च राज्याधिकारी को क्रोधित होने से रोकने के लिए पहरुओं ने अधिकारी के सिपाहियों को रिश्वत दी। राज्याधिकारी को शरीर दिये जाने का ज्ञान होता तो इस विषयक वर्णन बाइबल में वर्णित न होते। सत्य तो यह है कि जैसे ईसा के, स्पर्श से रोगमुक्त करना, भूत निकालना, गूलर वृक्ष को सुखा देना, पत्थर की रोटियाँ बनाना आदि चमत्कार जोड़े गये हैं, ऐसे ही पुनर्जीवित होने का चमत्कार जोड़ा गया है। उक्त पुस्तक इस चमत्कार को यथार्थ में रूपान्तरित करना चाहती है, जिससे बुद्धिजीवी जगत् में पुनर्जीवित होने की ऐतिहासिक संगति लगाई जा सके। इसके लिए बाइबल को मिथ्या मानना पड़ेगा। अत: उक्त संभावना व्यक्त करना कपोल-कल्पना है।

३. **स्थानभ्रष्ट पद**—द्विप्र० में ''**अब**'' पद वाक्यान्त में ''**जाता है**'' के बाद छप गया है। सभी सं० में यथास्थान पर रख दिया है।

४. '**मार्करचित**' इंजील का बाइबलवर्णित नाम—'Mark' यह मरकुस रचित है।

५. **अनावश्यक परिवर्धन**—मूलह०, मूलसं०, पं० भगवद्दत्त सं०, द्वि०सं० में वाक्यान्त में ''**है**'' क्रिया प्रयुक्त है। इनके अनुकरण पर उदयपुर सं० ने भी परिवर्धित कर ली है। वस्तुत: यह बाइबल के मूलपाठ में नहीं है। मुद्रणह०, द्विप्र० स्वामी वेदानन्द सं० का क्रिया रहित पाठ ठीक है क्योंकि यहां आधी आयत उद्धृत है। यदि इस आयत का अग्रिम कुछ भाग भी उद्धृत किया जाता तो अधिक सटीक होता क्योंकि उसमें स्पष्टत: नाम का उल्लेख है। वह पाठ है—''**क्या वह बढ़ई नहीं, जो मरियम का पुत्र, और याक़ूब और योसेस और यहूदा और शमोन का भाई है?**'' इस प्रकार क्रिया युक्त पाठ अग्राह्य है।

६. **अपवर्तनी**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में ''**यूसफ़**'' अपवर्तनी है, ''**यूसुफ**'' प्रचलित है।

७. **फूट-फाट करना ईसा का काम**—ग्रन्थकार ने यहां बढ़ई के काम के साथ व्यंजना शब्दशक्ति का प्रयोग करते हुए व्यंग्य किया है कि जैसे पेशे से कार्य में वह लकड़ी काटता-फाड़ता था उसी प्रकार समाज-व्यवहार में उसने फूट डालने का कार्य किया। बाइबल में ईसा के ने कहा है कि ''**मैं पिता-पुत्र में, मां-बेटी में, सास-पतोहू आदि में मेल कराने नहीं अपितु फूट डालने**

''लूक रचित इंजील''[१]

१०२. यीशु ने उससे कहा—''तू मुझे उत्तम क्यों कहता है, कोई उत्तम नहीं, [केवल] एक अर्थात् ईश्वर के। १९।'' लूक इं०, प० १८। आ० १९॥

समीक्षक—जब ईसा ही एक अद्वितीय ईश्वर कहता[२] है, तो ईसाइयों ने 'पवित्रात्मा', 'पिता' और 'पुत्र' तीन कहाँ से बना लिये?॥ १०२॥

१०३. .....तब उसे हेरोद[३] के पास भेजा....। ७। हेरोद यीशु को देखके अति आनन्दित हुआ, क्योंकि वह उसको बहुत दिनों से देखना चाहता था,[४] इसलिये कि उसके विषय में बहुत-सी बातें सुनी थीं और उसका कुछ 'आश्चर्य-कर्म' देखने की उसको आशा हुई। ८। उसने उससे बहुत बातें पूछीं, परन्तु उसने उसे कुछ उत्तर न दिया। ९। लूक इं०, प० २३। आ० ७। ८। ९॥[५]

समीक्षक—यह बात '**मत्ती-रचित**' में नहीं है। [ईसा ने किसी भी प्रश्न का उत्तर नहीं दिया] इसलिये वे साक्षी बिगड़ गये।[६] और जो ईसा चतुर और करामाती होता तो हेरोद को उत्तर देता और करामात भी दिखलाता, इससे विदित होता है कि ईसा में विद्या और करामात कुछ भी न थे॥ १०३॥

''योहन (योहन्ना) रचित सुसमाचार''[७]

१०४. आदि में वचन था और वचन ईश्वर के संग था और वचन ईश्वर था....। १। वह आदि में ईश्वर के संग था। २। सब कुछ उसके द्वारा सृजा गया, और जो सृजा गया है कुछ भी उस विना नहीं सृजा गया। ३। उसमें जीवन था और वह जीवन मनुष्यों का उजियाला था। ४।

[योहनरचित सु०], प० १। आ० १। २। ३। ४॥

समीक्षक—आदि में वचन विना वक्ता के नहीं हो सकता, और जो वचन ईश्वर के संग था, तो ''आदि में वचन था''[८] यह कहना व्यर्थ हुआ। और वचन ईश्वर कभी नहीं हो सकता, क्योंकि जब

आया हूँ।'' (द्रष्टव्य आयतसंख्या ८२) यह अपवित्र लक्ष्य था ईसा मसीह का।

१. **उचित संशोधन**—Luke (लूक)। मूलप्रति सं० में ''**लूत-रचित**'' अपपाठ है। यह ''**लूक**'' नाम है। द्वि०सं० में संशोधित है '**लूकरचित इंजील**' का बाइबल वर्णित नाम—'LUKE' है। बाइबल के हिन्दी अनुवाद में '**लूका**' नाम है।

२. **द्वि०सं० में अपसंशोधन**—द्वितीय सं० में ''**अद्वितीय ईश्वर कहाता है**'' अपपाठ है। मूलह०, मूलसं०, मुद्रणह०, द्विप्र० और उदयपुर सं० में शुद्ध पाठ है। **पाठ-पुष्टि**—आयतखण्ड १०८ में भी ईश्वर को ''**अद्वैत=एक**'' कहा है।
स्वामी वेदानन्द जी का अपपाठ—यही अशुद्ध पाठ स्वामी वेदानन्द जी के सं० में भी है। पता नहीं भ्रान्ति कैसे हुई जब आयत में स्पष्ट है कि 'ईसा स्वयं ईश्वर के सिवाय किसी को उत्तम नहीं कहता और ईश्वर को अद्वितीय मानता है।'

३. **Herod** (हेरोद)

४. **अपपाठ**—दोनों हस्त० और तीनों संस्करणों में ''**बहुत दिन से देखने चाहता था**'' अपपाठ है। उदयपुर सं० में संशोधित है, किन्तु बिना टिप्पणी दिये।

५. **त्रुटित उद्धरण संख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र०, वेस, भद में आयत संख्या ७ त्रुटित है। अन्य सभी में परिवर्धित है।

६. **त्रुटित समीक्षा**—सभी सं० में यहां यह समीक्षा मिलती है—''**इसलिये ये साक्षी बिगड़ गये क्योंकि साक्षी एक-से होने चाहियें।**'' समीक्षा त्रुटित है क्योंकि ''**इसलिये**'' के साथ कारण लिखना रह गया और अन्तिम वाक्यांश का यहां कोई सम्बन्ध नहीं है। बृ० कोष्ठक में पाठ बढ़ाया है। जो संगति के लिए आवश्यक है।

७. **John** (यूहन्ना, योहन्ना)। द्रष्टव्य पृ० ९३३ पर 'योहन्ना' प्रयोग। आज के अनुवादों में 'यूहन्ना' वर्तनी मिलती है। '**योहन रचित इंजील**' का बाइबल वर्णित नाम—'JOHN' यह योहन्ना रचित है।

८. **मुद्रणलिपिकर द्वारा त्रुटित एवं अपपाठ**—मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं० में ''**आदि में वचन था**'' यह पाठ त्रुटित रह गया है।

वह आदि में ईश्वर के संग था, तो पूर्व वचन वा ईश्वर था, यह नहीं घट सकता। वचन के द्वारा सृष्टि कभी नहीं हो सकती, जब तक उसका कारण न हो। और वचन के विना भी चुपचाप रहकर कर्त्ता सृष्टि कर सकता है। जीवन किसमें वा क्या था, इस वचन से जीव अनादि मानोगे। जो अनादि है, तो आदम के नथुनों में श्वास फूंकना झूठा हुआ और क्या जीवन मनुष्यों का ही उजियाला है, पशु-आदि का नहीं ?॥ १०४॥

१०५. और बियारी[१] के समय में जब शैतान शिमोन[२] के पुत्र यहूदा इस्करियोती के मन में उसे पकड़वाने का मत डाल चुका था। २। [योहन० सु०], प० १३। आ० २॥

समीक्षक—यह बात सच नहीं, क्योंकि जब कोई ईसाइयों से पूछेगा कि शैतान सबको बहकाता है, तो शैतान को कौन बहकाता है? जो कहो शैतान आप से आप बहकता है, तो मनुष्य भी आप से आप बहक सकते हैं, पुनः शैतान का क्या काम? और यदि शैतान का बनाने और बहकानेवाला परमेश्वर है, तो वही '**शैतान का शैतान**' ईसाइयों का '**ईश्वर**' ठहरा। परमेश्वर ने ही सबको उसके द्वारा बहकाया। भला, ऐसे काम ईश्वर के हो सकते हैं? सच तो यही है कि यह पुस्तक ईसाइयों का और ईसा को 'ईश्वर का बेटा' जिन्होंने बनाया, वे शैतान हों तो हों, किन्तु न यह ईश्वरकृत पुस्तक, न इसमें कहा ईश्वर और न ईसा 'ईश्वर का बेटा' हो सकता है॥ १०५॥

१०६. तुम्हारा मन व्याकुल न होवे, ईश्वर पर विश्वास करो और मुझपर विश्वास करो। १। मेरे पिता के घर में बहुत से रहने के स्थान हैं, नहीं तो मैं तुमसे कहता हूं, मैं तुम्हारे लिये स्थान तैयार करने जाता हूं। २। और जो मैं जाके तुम्हारे लिये स्थान तैयार करूं, तो फिर आके तुम्हें अपने यहां ले जाऊंगा कि जहां मैं रहूं वहां तुम भी रहो। ३। यीशु ने उससे कहा—''मैं ही मार्ग और सत्य और जीवन हूं, विना मेरे द्वारा कोई पिता के पास नहीं पहुंचता है। ६। जो तुम मुझे जानते, तो मेरे पिता को भी जानते....। ७।'' [योहन० सु०], प० १४। आ० १। २। ३। ६। ७॥[३]

समीक्षक—अब देखिये, ये[४] ईसा के वचन क्या पोपलीला से कमती हैं? जो ऐसा प्रपञ्च न रचता, तो उसके मत में कौन फसता? क्या ईसा ने अपने पिता को ठेके में ले लिया है? और जो वह ईसा के वश्य है, तो पराधीन होने से वह ईश्वर ही नहीं, क्योंकि ईश्वर किसी की सिफारिश नहीं सुनता। क्या ईसा के पहले कोई भी ईश्वर को प्राप्त न हुआ होगा? जो ऐसा[५] स्थान आदि का प्रलोभन देता और जो अपने मुख से आप मार्ग, सत्य और जीवन बनता है, वह सब प्रकार से दम्भी कहाता है, इससे यह बात सत्य कभी नहीं हो सकती॥ १०६॥[६]

मूलप्रति सं० में इसके स्थान पर ''**आदि में वचन ईश्वर के संग था**'' अपपाठ हो गया है। यहां ''**ईश्वर के संग**'' पद अनावश्यक हैं क्योंकि दूसरी ही पंक्ति में यही वाक्य है। बाइबल में भी उपर्युक्त पाठ है। उदयपुर सं० में भी त्रुटित है।

१. **बियारी**=रात के भोजन का समय। २. **Simon** (शिमोन)।

३. **अशुद्ध उद्धरण संख्या**—मूलह०, मुद्रणह०, द्विप्र० में आयतसंख्या ४, स्वामी वेदानन्द सं० में ४, ५ संख्याएं अशुद्ध हैं।

४. **उचित संशोधन**—मूलह०, मूलसं० में यहां ''**यह**'' एक वचनात्मक है, मुद्रणह०, द्विप्र० में '**ये**' बहुवचन है।

५. **उचित संशोधन**—मूलह०, मूलसं० में यहां ''**कैसा**'' अपप्रयोग है, ''**जो ऐसा**'' पाठ द्विप्र० संगत है।

६. **ऋषिलेख**—''**और यदि........सकता है**'', ''**जो ऐसा........सकती**'' पाठ मूलहस्त० में ऋषिलिखित हैं।

१०७. मैं तुमसे सच-सच कहता हूं जो मुझपर विश्वास करे, जो काम मैं करता हूं उन्हें वह भी करेगा और इनसे बड़े काम भी करेगा तो वह सब आश्चर्यकर्म करेगा[१] । १२ ।

[योहन० सु०], प० १४ । आ० १२ ॥

समीक्षक—अब देखिये, जो ईसाई लोग ईसा पर पूरा विश्वास रखते हैं, वैसे ही मुर्दे जिलाने आदि का काम क्यों नहीं कर सकते? और जो विश्वास से भी '**आश्चर्य-कर्म**' नहीं कर सकते, तो ईसा ने भी '**आश्चर्य-कर्म**' नहीं किये थे, ऐसा निश्चित जानना चाहिये। क्योंकि स्वयं ईसा ही कहता है कि तुम भी '**आश्चर्य-कार्य**' करोगे, तो भी इस समय ईसाई कोई एक भी नहीं कर सकता, तो किसकी '**हिये की आँख फूट गई है**' कि वह ईसा को मुर्दे जिलाना आदि काम का कर्त्ता मान लेवे?[२] ॥ १०७ ॥

१०८. ....जो अद्वैत सत्य ईश्वर है.... । ३ । [योहन सु०], प० १७ । आ० ३ ॥

समीक्षक—जब अद्वैत=एक ईश्वर है, तो ईसाइयों का '**तीन कहना**' सर्वथा मिथ्या है ॥ १०८ ॥[३]

इसी प्रकार बहुत ठिकाने '**इंजील**'[४] में अन्यथा बातें भरी हैं ॥

''योहन [योहन्ना] के प्रकाशित वाक्य''[५]

अब योहन की अद्‌भुत बातें सुनो—

१०९. ....और अपने-अपने शिर पर सोने के मुकुट दिये हुए थे[६] । ४ । ....और सात अग्निदीपक सिंहासन के आगे जलते हैं, जो ईश्वर के सातों आत्मा हैं। ५ । और सिंहासन के आगे कांच का समुद्र है ....और सिंहासन के आस-पास चार प्राणी हैं जो आगे और पीछे नेत्रों से भरे हैं। ६ ।

यो० प्र०, प० ४ । आ० ४ । ५ । ६ ॥

---

१. **मुद्रणकाल में पाठ निष्कासन अनुचित**—द्विप्र० और फिर द्वि०सं० में ''**तो वह सब आश्चर्य कर्म करेगा**'' यह वाक्यांश मुद्रणकाल में हटाया है। यह वाक्यांश मूलह०, मुद्रणह०, मूलसं० में है। इस वाक्य को रखा जाना इस कारण अनिवार्य है क्योंकि सारी समीक्षा इसी वाक्य के शब्दों पर आधारित है। मुद्रणकाल में इसको अनुचित रूप से हटाया है।

२. **मुद्रणलिपिकर कृत भ्रष्टपाठ**—मुद्रणलिपिकर ने मुद्रणप्रति बनाते समय यह भ्रष्ट पाठ बना दिया—''**ईसा को मुर्दे जलाने आदि का कामकर्त्ता मान लेवे।**'' शोधक ने भी इसको न शोधा, न मुद्रणसमय ठीक किया, अत: यही द्विप्र० में छपा है। द्वि०सं० में यह भ्रष्टवाक्य इस प्रकार है—''**ईसा को मुर्दे जिलाने आदि का काम कर्त्ता मान लेवे।**'' मूलह०, मूलप्रति सं० में यह वाक्य अर्धशुद्ध है—''**मुर्दे जिलाने आदि का कर्त्ता मान लेवे।**'' उदयपुर सं० में अर्धशुद्ध है। युमी, विस में संशोधित है।
ऋषिलेख—''**ऐसा निश्चित........मान लेवे**'' पाठ मूलहस्त० में ऋषि द्वारा परिवर्धित है।

३. **ईसाइयों के तीन मूल विश्वास**—ईसाई तीन बातों में विश्वास रखते हैं—(१) पवित्रात्मा, (२) पिता अर्थात् ईसा का पिता ईश्वर (३) उसका पुत्र ईसामसीह पैगम्बर (द्रष्टव्य आयतखण्ड संख्या १०२ की समीक्षा तथा पृ० ९१७। कुरान में भी इन तीन पर विश्वास मिलता है। द्रष्टव्य समु० १४ में आयतखण्ड संख्या-१७२।

४. **अपवर्तनी**—दोनों हस्तलेखों तथा द्विप्र० में यहां ''**अञ्जील**'' अपवर्तनी है। अन्य सभी सं० में संशोधित है (टि० ८८९ पर)।

५. '**योहन के प्रकाशित वाक्य**' पुस्तक का बाइबल-वर्णित नाम—THE REVELATION TO JOHN'.—यह योहन (योहन्ना) रचित है। ग्रन्थकार ने आयतखण्ड १४० की समीक्षा में ''**योहन्ना**'' नाम का प्रयोग किया है।

६. **भारतीय पौराणिक परम्परा की प्रतिच्छाया**— भारत के पौराणिक साहित्य में २४ अवतार माने गये हैं। उन्हीं की तुलना में जैनियों ने २४ तीर्थंकर माने हैं। ये सब स्वर्ग-निवासी हैं। प्रतीत होता है कि इसी परम्परा का अनुकरण करके बाइबल में भी स्वर्ग-निवासी २४ पैगम्बरों अथवा पूर्वजों की कल्पना की गई है। देखिए बाइबल का वर्णन—''क्या देखता हूँ कि एक सिंहासन स्वर्ग में धरा है और उस सिंहासन पर कोई बैठा है..... और उस सिंहासन के चारों और चौबीस सिंहासन हैं, और उन सिंहासनों पर चौबीस प्राचीन श्वेत वस्त्र पहिने हुए बैठे हैं और उनके सिरों पर सोने के मुकुट हैं।'' (योहन का प्रकाशित वाक्य, पर्व ४। आयत २,४॥) ऐसे ही जैन-साहित्य में वर्णन है कि प्रमुख सिद्धशिला के चारों ओर तीर्थंकरों के बैठने के लिए २४ सिंहासन हैं।

समीक्षक—अब देखिये, एक नगर के तुल्य ईसाइयों का स्वर्ग है। और इनका ईश्वर भी दीपक के समान अग्नि है। और [उसके द्वारा] सोने का मुकुटादि आभूषण धारण करना और आगे-पीछे नेत्रों का होना असम्भावित है। इन बातों को कौन मान सकता है? और वहां सिंहादि चार पशु भी लिखे हैं॥ १०९ ॥[१]

११०. और मैंने सिंहासन पर बैठनेहारे के दाहिने हाथ में एक पुस्तक देखा जो भीतर और पीठ पर लिखा हुआ था और सात छापों से उस पर छाप दी हुई थी। १। ....यह पुस्तक खोलने और उसकी[२] छापें तोड़ने के योग्य कौन है। २। और न स्वर्ग में और न पृथिवी पर, न पृथिवी के नीचे[३] कोई वह पुस्तक खोलने अथवा उसे देखने सकता था। ३। और मैं बहुत रोने लगा, इसलिये कि पुस्तक खोलने और पढ़ने अथवा उसे देखने के योग्य कोई नहीं मिला। ४।

यो० प्र०, पर्व ५। आ० १। २। ३। ४॥

समीक्षक—अब देखिये, ईसाइयों के स्वर्ग में सिंहासनों और मनुष्यों के ठाठ! और पुस्तक कई छापों से बंद किया हुआ जिसको खोलने आदि कर्म करनेवाला स्वर्ग और पृथिवी पर कोई नहीं मिला। योहन का रोना और पश्चात् एक प्राचीन ने कहा कि वही ईसा खोलनेवाला है। प्रयोजन यह है कि **'जिसका विवाह उसके गीत'**। देखो, ईसा के ही ऊपर सब माहात्म्य झुकाते जाते हैं; परन्तु ये बातें केवल कथन-मात्र हैं॥ ११० ॥

१११. और मैंने दृष्टि की, और देखो सिंहासन के और चारों प्राणियों के बीच में और प्राचीनों के बीच में एक मेम्ना जैसा वध किया हुआ खड़ा है, जिसके सात सींग और सात नेत्र हैं, जो सारी पृथिवी में भेजे हुए ईश्वर के सातों आत्मा हैं। ६। यो० प्र०, प० ५। आ० ६॥

समीक्षक—अब देखिये, इस योहन के स्वप्न का मनोव्यापार! उस स्वर्ग के बीच में सब ईसाई और चार पशु तथा ईसा भी है और कोई नहीं! यह बड़ी अद्भुत बात हुई कि यहां तो ईसा के दो नेत्र थे और सींग का नाम-निशान भी न था और स्वर्ग में जाके सात सींग और सात आंखवाला हुआ! और वे सातों ईश्वर के आत्मा ईसा के सींग और नेत्र बन गये! **हाय! ऐसी बातों को ईसाइयों ने क्यों मान लिया? भला, कुछ तो बुद्धि काम में लाते!**[४] ॥ १११ ॥

११२. और जब उसने पुस्तक लिया तब चारों प्राणी और चौबीसों प्राचीन उस मेम्ने के आगे गिर पड़े और हर एक के पास बीण[५] थी और धूप से भरे हुए सोने के प्याले;[६] ये पवित्र लोगों की

१. **सिंहासन के चार प्राणी**—सिंहासन के आस पास रहनेवाले चार प्राणी बाइबल की अगली आयत में इस प्रकार वर्णित हैं—''पहिला प्राणी सिंह के समान है, और दूसरा प्राणी बछड़े के समान है, तीसरे प्राणी का मुंह मनुष्य का-सा है, और चौथा प्राणी उड़ते हुए उकाब के समान है। चारों प्राणी के छः-छः पंख हैं और चारों ओर भीतर आंखें ही आंखें हैं। और वे रात-दिन बिना विश्राम लिये यह कहते रहते हैं कि पवित्र, पवित्र प्रभु परमेश्वर सर्वशक्तिमान् जो था, और जो है, और जो अपने वाला है।'' (योहन्ना प्रकाशित वाक्य, पर्व ४। आ० ७, ८)। देखिए, बाइबल में ऐसी-ऐसी असंभव गप्पें भरी हैं।

२-३. **उचित परिवर्धन**—मूलह०, मूलप्रति सं० में यहां ''**उसकी**'' पद त्रुटित है। मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं० में है और ग्राह्य है। इसी प्रकार ''**पृथिवी के नीचे**'' आयत का अंश भी त्रुटित है। मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं० और बाइबल में है, अतः ग्राह्य है।

४. **मुद्रणलिपिकर के प्रमाद से त्रुटित पाठ**—मूलह० के शुद्ध पाठ को प्रतिलिपि करते समय मुद्रणलिपिकर त्रुटित छोड़ गया और यह पाठ लिखा—''**कुछ तो बुद्धि लाते।**'' यही अशुद्ध पाठ द्विप्र० में छपा है। **स्वामी वेदानन्द सं०, सिद्धान्ती सं०, पं० मीमांसक सं०** में भी अशुद्ध है। मूलसं० में शुद्ध है। पं० भगवद्दत्त सं०, उदयपुर सं०, द्वि०सं० में संशोधित है।

प्रार्थनाएँ हैं॥ यो० प्र०, म० ५। आ० ८॥

समीक्षक—भला, जब ईसा स्वर्ग में न होगा तब ये बेचारे धूप, दीप, नैवेद्य, आर्त्ती (आरती)[१] आदि पूजा किसकी करते होंगे? और यहां प्रोटस्टेंट[२] ईसाई लोग बुतपरस्ती[३] (मूर्त्तिपूजा) का तो खण्डन करते हैं किन्तु[४] इनका स्वर्ग बुतपरस्ती का घर बन रहा है॥ ११२॥

११३. और जब मेम्ने ने छापों में से एक को खोला तब मैंने दृष्टि की, चारों प्राणियों में से एक को जैसे, मेघ के गर्जन के शब्द को यह कहते सुना कि आ और देख। १। और मैंने दृष्टि की, और देखो, एक श्वेत घोड़ा है, और जो उसपर बैठा है उसके पास धनुष और उसे मुकुट दिया गया और वह जय करता हुआ और जय करने को निकला। २।

और जब उसने दूसरी छाप खोली....। ३। ....दूसरा घोड़ा जो लाल था, निकला; उसको यह दिया गया कि पृथिवी पर से मेल उठा देवे....। ४।

और जब उसने तीसरी छाप खोली ....देखो काला घोड़ा है....। ५।

और जब उसने चौथी छाप खोली....। ७। ....और देखो एक पीला-सा घोड़ा और जो उस पर बैठा है उसका नाम मृत्यु है, इत्यादि। ८। यो० प्र०, प० ६। आ० १।२।३।४।५।७।८॥

समीक्षक—अब देखिये, यह पुराणों से भी अधिक मिथ्या लीला है, वा नहीं? भला, पुस्तकों के बन्धनों के छापे के भीतर घोड़ा-सवार क्योंकर रह सके होंगे? यह स्वप्ने का बरड़ाना, जिन्होंने इसको भी सत्य माना है, उनमें अविद्या जितनी कहें, उतनी ही थोड़ी है॥[५] ११३॥

११४. और वे बड़े शब्द से पुकारते थे कि "हे स्वामी, पवित्र और सत्य! कब लों तू न्याय नहीं करता है और पृथिवी के निवासियों से हमारे लोहू का पलटा नहीं लेता है। १०।" और हर एक को उजला वस्त्र दिया गया और उनसे कहा गया कि जब लों तुम्हारे संगी दास भी और तुम्हारे भाई तुम्हारे नाईं वध किये जाने पर हैं, पूरे न हों, तब लों और थोड़ी देर विश्राम करो। ११।

यो० प्र०, प० ६। आ० १०।११॥

समीक्षक—जो कोई ईसाई होंगे, वे दौरासुपुर्द[६] होकर ऐसे न्याय कराने के लिये रोया करेंगे। **जो**

५-६. **अव्यवस्थित वर्तनी**—सभी संस्करणों में "**बीण**" वर्तनी मिलती है। संस्कृत और गुजराती में "**वीणा**" शुद्ध है। हिन्दी में उसका "**बीन**" तद्भवरूप शुद्ध है। आगे, मूलह० में "**पिआला**" अपवर्तनी है, मुद्रणह० में इसको "**पियाला**" लिखा है जिसका तद्भव उच्चारण हिन्दी में '**प्याला**' किया जाता है। "**पियाला**" फ़ारसी का शब्द है।

१-३. **अपवर्तनी**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में इस समीक्षा-अनुच्छेद में हिन्दी की दृष्टि से ये अपवर्तनियां हैं—**आर्ति, प्रोटष्टेंट, बुत्परस्ती**। द्वि० सं० में "**प्रोटस्टेंट**" (Protestant) शुद्ध वर्तनी है। "**आर्त्ती**" गुजराती प्रयोग इसी अर्थ में है। उदयपुर सं० में "**आर्ति**" और "**बुत्परस्ती**" अशुद्ध हैं।

४. **अपप्रयोग**—दोनों सं० में यहां "**और**" प्रयोग है। यहां '**किन्तु**' प्रयोग शुद्ध है।

५. **उचित संशोधन**—मूलप्रति सं० में यह अपवाक्य है—"**उनमें अविद्या जितनी थोड़ी कहें, उतनी ही थोड़ी है।**" द्विप्र०, द्वि०सं० में यह संशोधित है, वही ऊपर गृहीत है। **ऋषिलेख**—रेखांकित वाक्य मूलह० में ऋषिलिखित है।

६. **वर्तनी में घोर अव्यवस्था**—'**दौरासुपुर्द**' शब्द के लेखन में लिपिकरों ने घोर अव्यवस्था मचाई है और आदिशोधक शर्माद्वय चद्दर तानकर सोते रहे। जैसे, यहां सभी संस्करणों में "**दौड़े सुपुर्द**" अपभ्रंश पाठ है, जबकि स्वामी वेदानन्द जी ने "**दौरे सुपुर्द**" स्वीकार किया है। सम्पूर्ण ग्रन्थ में और सभी संस्करणों में यह शब्द स्थूलत: चार प्रकार से लिखा मिलता है—(१) **दौरे सुपुर्द** (मूलसं०पृ० ७२०; द्वि०सं० ४००)। (२) **दौड़े सुपुर्द** (मूलसं०पृ० ६२८; द्वि०सं० ३५३)।

वेदमार्ग का स्वीकार करेगा, उसके न्याय होने में कुछ भी देर न होगी। ईसाइयों से पूछना चाहिये—'क्या ईश्वर की कचहरी आजकल बन्द[1] है, और न्याय का काम भी नहीं होता? न्यायाधीश निकम्मे बैठे हैं?' तो कुछ भी ठीक-ठीक उत्तर न दे सकेंगे।

और ईश्वर को भी बहकाते हैं, और इनका ईश्वर बहक भी जाता है,[2] क्योंकि इनके कहने से झट इनके शत्रुओं से पलटा लेने लगता है। और **दंशिले स्वभाववाले हैं कि मरे पीछे स्व-वैर लिया करते हैं, शान्ति कुछ भी नहीं** और जहां शान्ति नहीं, वहां दुःख का क्या पारावार होगा?॥ ११४॥

११५. और जैसे बड़ी बयार से हिलाये जाने पर गूलर के वृक्ष से उसके कच्चे गूलर झड़ते हैं, तैसे आकाश के तारे पृथिवी पर पड़े। १३। और आकाश पत्र की नाईं जो लपेटा जाता है, अलग हो गया....। १४। यो० प्र०, प० ६। आ० १३। १४॥

समीक्षक—अब देखिये, **योहन** भविष्यद्वक्ता ने[3], जब विद्या नहीं है तभी तो, ऐसी अण्ड-बण्ड कथा गाई [है]। भला, तारे सब भूगोल हैं, एक पृथिवी पर कैसे गिर सकते हैं? और सूर्यादि का आकर्षण उनको इधर-उधर क्यों आने-जाने देगा? और क्या आकाश को चटाई के समान समझता है? यह आकाश साकार पदार्थ नहीं है, जिसको कोई लपेटे वा इकट्ठा कर सके। इसलिये योहन आदि सब जंगली मनुष्य थे, उनको इन बातों की क्या समझ?[4]॥ ११५॥

११६. ....मैंने उनकी संख्या सुनी, इस्राएल[5] के संतानों के समस्त कुलों[6] में से एक लाख

---

(३) **दौरा सुपुर्द** (मूलसं०पृ० ७१०, ७११; द्वि०सं० ३९५ दो बार)

(४) **दौड़ा सुपुर्द** (मूलसं० पृ० ६५२, ६८५, ६९१; द्वि०सं० ३६६, ३८२, ३८५)

यह अव्यवस्था **स्वामी वेदानन्द जी सरस्वती, पं० जगदेवसिंह जी सिद्धान्ती, पं० भगवद्दत्त जी, पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक** के संस्करणों में तथा 'दश विद्वानों' द्वारा सम्पादित उदयपुर सं० में यथावत् विद्यमान है। इनमें से "**दौरासुपुर्द**" प्रयोग सही है और सर्वत्र यही ग्राह्य है। भाषात्मक व्यवस्था, एकरूपता, प्रामाणिकता, मानकता और व्याकरण की दृष्टि से इनमें से एक वर्तनी ही सर्वत्र ग्राह्य है। दुःख का विषय यह है कि आदि-लिपिकरों और वेतनभोगी शोधकों ने जो प्रमाद किया वह तो किया ही, पिछले सवा-सौ वर्षों से हमारे विद्वान् सम्पादक-प्रकाशक भी चद्दर तानकर सोते रहे! अपने धर्मग्रन्थ को लिपिकरों की प्रमादलीला और शोधकों की मक्कारी-लीला से मुक्त भी नहीं कर सके।

१. **अव्यवस्थित वर्तनी**—दोनों हस्त० में यहां "**बन्ध**" वर्तनी है। मुद्रणकाल में द्विप्र० में इसका संशोधित रूप "**बन्द**" कर दिया गया। वही सभी द्वि०सं० में छप रहा है। उदयपुर सं० ने भी इसी को ग्रहण किया है। द्वि०सं० में बहुत्र "**बन्ध**" वर्तनी भी पाई जाती है। मूलसं० ने यहां "**बन्ध**" वर्तनी ग्रहण की है जबकि उसमें भी बहुत्र "**बन्द**" वर्तनी है। सभी सं० में इस वर्तनी-विषयक अव्यवस्था है। इस सं० में सर्वत्र '**बन्द**' वर्तनी ग्रहण की है। पं० मीमांसक जी ने यहां लिखी शुद्ध वर्तनी "**बन्द**" को बदलकर '**बन्ध**' अपपाठ कर दिया है।

२. **अपपाठ**—दोनों हस्त०, तीनों सं० में यह अपवाक्य है—"**और ईश्वर को भी बहकाकर और उनका ईश्वर बहक भी जाता है।**" वेस, जग, भद, युमी, विस, उदयपुर सं० में अशुद्ध है। आगे रेखांकित पाठ मूलह० में **ऋषिलिखित** है।

३. **उचित संशोधन**—मूलह०, मूलप्रति सं० में यह वाक्य है—"**अब देखिये योहन भविष्यदवक्ता। जब विद्या नहीं है तभी तो ऐसी अण्ड-बण्ड कथा गाई।**" मुद्रणह०, द्वि०सं० में "**योहन भविष्यद्वक्ता ने**" संशोधन किया है जो उचित और ग्राह्य है। दोनों सं० में वाक्यान्त में "**है**" क्रिया आवश्यक है।

४. **अपपाठ**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में "**क्या खबर**" उपयुक्त प्रयोग नहीं है। उपयुक्त प्रयोग "**क्या समझ**" होना उचित है।

५,७. **अपवर्तनियां**—मूलह०, मूलप्रति सं० में "**इस्राऐल**" अपवर्तनी है जबकि समीक्षा में "**इस्राएल**" है। यही अव्यवस्था उदयपुर सं० में है। दोनों सं० में "**यिहूदा**" अपवर्तनी है। यही अपवर्तनी उदयपुर सं० में है। द्र० क्रमशः पृ० ९०९ पर टि० ४ तथा पृ० ९११ की टिप्पणी।

६. **कुल का अर्थ**—वर्तमान बाइबल के अनुवाद में यहां सर्वत्र "**गोत्र**" शब्द मिलता है। यहां कुल का 'गोत्र' अर्थ ही ग्राह्य है।

चवालीस सहस्र पर छाप दी गई। ४। यहूदा[7] के कुल में से बारह सहस्र पर छाप दी गई....। ५।

यो० प्र०, प० ७। आ० ४।५॥

समीक्षक—क्या जो '**बाइबल**' में ईश्वर लिखा है, वह इस्राएल आदि कुलों का स्वामी है, वा सब संसार का? जो ऐसा न होता तो उन्हीं जंगलियों का साथ क्यों देता? और उन्हीं का साहाय्य करता था, दूसरे का नाम-निशान भी नहीं लेता, इससे वह ईश्वर नहीं। और इस्राएल कुलादि के मनुष्यों पर छाप लगाना अल्पज्ञता अथवा योहन की मिथ्या कल्पना है॥ ११६॥

११७. इस कारण वे ईश्वर के सिंहासन के आगे हैं और उस मन्दिर में रात-दिन उसकी सेवा करते हैं....। १५। यो० प्र०, प० ७। आ० १५॥

समीक्षक—क्या यह महाबुतपरस्ती[1] नहीं है? अथवा उनका ईश्वर देहधारी मनुष्य के तुल्य एकदेशी नहीं है? और ईसाइयों का ईश्वर रात में सोता भी नहीं है। यदि सोता है, तो रात में पूजा क्योंकर करते होंगे? तथा उसकी नींद भी उड़ जाती होगी? और जो रात-दिन जागता होगा तो विक्षिप्त वा अति-रोगी होगा॥ ११७॥

११८. और दूसरा दूत आके वेदी के निकट खड़ा हुआ जिसके पास सोने की धूपदानी थी और उसको बहुत धूप दिया गया....। ३। और धूप का धुंआ[2] पवित्र लोगों की प्रार्थनाओं के संग दूत के हाथ में से ईश्वर के आगे चढ़ गया। ४। और दूत ने वह धूपदानी लेके उसमें वेदी की आग भरके उसे पृथिवी पर डाला और शब्द और गर्जन और बिजलियाँ और भुईंडोल हुए। ५।

यो० प्र०, प० ८। आ० ३।४।५॥

समीक्षक—अब देखिये, स्वर्ग तक वेदी, धूप, दीप, नैवेद्य, तुरही के शब्द होते हैं! क्या वैरागियों के मन्दिर से ईसाइयों का स्वर्ग कम[3] है? कुछ धूम-धाम अधिक ही है॥ ११८॥

११९. पहले दूत ने तुरही फूंकी और लोहू से मिले हुए ओले और आग हुए, वे पृथिवी पर डाले और पृथिवी की एक तिहाई जल गई....। ७। यो० प्र०, प० ८। आ० ७॥

समीक्षक—वाह रे ईसाइयों के भविष्यद्वक्ता ईश्वर! ईश्वर के दूत! तुरही का शब्द और प्रलय की लीला केवल लड़कों का ही खेल दीखता है॥ ११९॥

१२०. और पाँचवें दूत ने तुरही फूंकी और मैंने एक तारे को देखा जो स्वर्ग में से पृथिवी पर गिरा हुआ था और अथाह कुंड के कूप की कुंजी उसको दी गई। १। और उसने अथाह कुंड का कूप खोला और कूप में से बड़ी भट्ठी के धुएँ की नाईं धुआँ उठा....। २। और उस धुएं[4] में से टिड्डियां

---

[7] ''**कुल**'' के स्थान पर ''**कुलों**'' अभीष्ट है। समीक्षा में शुद्ध प्रयोग है।

१. **अपवर्तनी**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में ''**महाबुत्परस्ती**'' अपवर्तनी है। यही अपवर्तनी वेस, भद, जग, युमी, विस, उदयपुर सं० में है। द्र० विशेष टिप्पणी पृ० ९६२ पर।

२. **अव्यवस्थित वर्तनी**—इस ग्रन्थ में, सभी सं० में, '**धुआं**' और '**धूआं**' दो वर्तनियां हैं। दोनों शुद्ध हैं किन्तु भाषा के मानक स्वरूप के लिए एक ही वर्तनी '**धुआं**' ग्राह्य है। **ऋषि-लेख**—''**और ईसाइयों........होगा**'' पाठ मूलह० में ऋषिलिखित है।

३. **उचित संशोधन**—मूलह०, मूलप्रति सं० में यहां '**कमती**' पाठ है। द्वि० सं० में शोधन करके ''**कम**'' पाठ रखा है। यही ग्राह्य है।

४. **उचित संशोधन**—मूलह०, मुद्रणह०, मूलप्रति सं० में ''**कुएं में से टिड्डियां निकली**'' अपपाठ है। द्विप्र० और द्वि०सं० में संशोधित ''**धुएं में से**'' है। यही बाइबल में है। यही ग्राह्य है। सभी अन्य सं० में शुद्ध पाठ है।

पृथिवी पर निकल गईं और जैसा पृथिवी के बिच्छुओं[१] को अधिकार होता है तैसा उन्हें दिया गया। ३। और उनसे कहा गया कि ....'उन मनुष्यों को जिनके माथे पर ईश्वर की छाप नहीं है। ४। ....पाँच मास उन्हें पीड़ा दी जाय। ५।' यो० प्र०, प० ९। आ० १।२।३।४।५॥

समीक्षक—तुरही का शब्द सुनकर तारे क्या उन्हीं दूतों पर और उसी स्वर्ग में गिरे होंगे? यहाँ तो नहीं गिरे। भला, वह कूप और टिड्डियां भी प्रलय के लिये ईश्वर ने पाली होंगी। और छाप को देख बांच भी लेती होंगी कि छापवालों को मत काटो! यह केवल भोले मनुष्यों को डराके ईसाई बना लेने का धोखा देना है कि जो तुम ईसाई न होगे, तो तुमको टिड्डियां काटेंगी। परन्तु **ऐसी बातें विद्याहीन देश में चल सकती हैं, आर्यावर्त में नहीं।** और क्या वह प्रलय की बात हो सकती है?[२] ॥ १२०॥

१२१. और घुड़चढ़ों की सेनाओं की संख्या बीस करोड़ थी....। १६।

यो० प्र०, प० ९। आ० १६॥

समीक्षक—भला, इतने घोड़े स्वर्ग में कहां ठहरते, कहाँ चरते और कहाँ रहते और कितनी लीद करते थे? उसका दुर्गन्ध भी स्वर्ग में कितना हुआ होगा?

बस ऐसे स्वर्ग, ऐसे ईश्वर और ऐसे मत के लिये हम सब आर्यों ने [उत्तम वैदिक मत को][३] तिलाञ्जलि[४] दे दी है। ऐसा बखेड़ा ईसाइयों के शिर पर से भी सर्वशक्तिमान् की कृपा से दूर हो जाय, तो बहुत अच्छा हो॥ १२१॥

१२२. और मैंने दूसरे पराक्रमी दूत को स्वर्ग से उतरते देखा जो मेघ को ओढ़े था और उसके शिर पर मेघधनुष[५] था और उसका मुख सूर्य की नाईं और उसके पांव आग के खम्भे ऐसे थे। १। ....और उसने अपना दाहिना पांव समुद्र पर और बायां पृथिवी पर रक्खा। २।

यो० प्र०, प० १०। आ० १।२॥[६]

---

१. **अपवर्तनी**—सभी सं० में "**बीछुओं**" अपवर्तनी है। ग्रन्थ में प्रयुक्त अन्यत्र वर्तनी से एकरूपता की दृष्टि और मानकता के लिए उपर्युक्त शुद्ध वर्तनी ग्राह्य है।

२. **पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक द्वारा पाठक्रम परिवर्तन अवांछनीय**—पं० मीमांसक जी ने इस वाक्य "**और क्या वह प्रलय की बात हो सकती है?**" को यहां से उठाकर पहले वाले आयतखण्ड ११९ की समीक्षा के अन्त में जोड़ दिया। पं० जी ने, शायद, वहां "**प्रलय**" शब्द पठित देखकर और इस वाक्य में भी "**प्रलय**" शब्द देखकर यह समझा कि ये दोनों संदर्भ एक प्रसंग के हैं। पं० जी ने शीघ्रता में यह निर्णय लिया है। वे यह विचार करना भूल गये कि इस वाक्य का यही स्थान प्रसंगानुकूल है, उपर्युक्त समीक्षा में नहीं। क्यों? क्योंकि उपर्युक्त समीक्षा में तो 'पृथिवी का जल जाना' वास्तव में प्रलय है, अत: वह तो प्रलय की ही बात है। अत: उस पर प्रश्न ही नहीं उठता। प्रस्तुत आयतखण्ड (१२०) में टिड्डियों द्वारा काटना आदि वर्णित किया है। इस पर ग्रन्थकार प्रश्न उठाते हैं कि 'ये प्रलय की बातें हो सकती हैं क्या?' अर्थात् जो प्रलय की बात ही नहीं है, उसको बाइबल में प्रलय की बात कहकर वर्णित किया है, अत: उस पर प्रश्न उठाया है कि वे प्रलय की बातें नहीं हैं। इस प्रकार इस वाक्य का यही स्थल प्रासंगिक है। पं० जी की टिप्पणी और स्थानपरिवर्तन अग्राह्य हैं।

३. **त्रुटित आवश्यक पाठ**—दोनों सं० में बृ० कोष्ठक का पाठ नहीं है। इसके बिना वाक्य नहीं बनता, अत: यह आवश्यक है।

४. **मुद्रणलिपिकर द्वारा अपवर्तनी**—मूलह० में शुद्ध वर्तनी है। मूर्ख मुद्रणलिपिकर ने "**तिलाञ्जली**" अपवर्तनी बना दी। मूर्खाधिराज शोधकों ने उसे द्विप्र० में अशुद्ध छाप दिया। अन्य सभी सं० में संशोधित है।

५. **मेघधनुष**=इन्द्रधनुष।

६. **उदयपुर सं० में पुन: अशुद्ध संख्या को ग्रहण करना**—मुद्रणह०, द्विप्र० में यहां "**३**" आयत संख्या मिलती है, जो अशुद्ध है; क्योंकि यहां दो ही आयतें उद्धृत हैं, तीसरी आयत यहां उद्धृत ही नहीं है। **स्वामी वेदानन्द सं०** में यह अशुद्धि विद्यमान

समीक्षक—अब देखिये इन दूतों की कथा! जो पुराणों वा भाटों की कथाओं से भी बढ़कर है॥ १२२ ॥

१२३. और लग्गी[१] के समान एक नरकट[२] मुझे दिया गया और कहा गया कि उठ! ईश्वर के मन्दिर को और वेदी को और उसमें के भजन करनेहारों को नाप। १।

यो० प्र०, प० ११। आ० १॥

समीक्षक—यहां तो क्या, परन्तु ईसाइयों के तो स्वर्ग में भी मन्दिर बनाये और नापे जाते हैं। अच्छा है, उनका जैसा स्वर्ग है, वैसी ही बातें हैं। इसीलिये यहां '**प्रभुभोजन**' में ईसा के शरीरावयव मांस, लोहू की भावना करके खाते-पीते हैं, और गिरजा[३] में भी क्रूस[४] आदि का आकार बनाना आदि भी बुतपरस्ती[५] है॥ १२३ ॥

१२४. और स्वर्ग में ईश्वर का मन्दिर खोला गया और उसके नियम का सन्दूक उसके मन्दिर में दिखाई दिया....। १९। यो० प्र०, प० ११। आ० १९॥

समीक्षक—स्वर्ग में जो मन्दिर है सो हर समय बन्द रहता होगा, कभी-कभी खोला जाता होगा। क्या परमेश्वर का भी कोई मन्दिर हो सकता है? जो वेदोक्त परमात्मा सर्वव्यापक है, उसका कोई भी मन्दिर नहीं हो सकता। हां, ईसाइयों का जो परमेश्वर 'आकारवाला' है, उसका [मन्दिर] चाहे स्वर्ग में हो चाहे भूमि पर होता [होगा][६]। और जैसी लीला '**टं टन् पूँ पूँ**' की यहां होती है, वैसी ही ईसाइयों के स्वर्ग में भी [होती होगी][७]। और नियम का संदूक भी कभी-कभी ईसाई लोग देखते होंगे, उससे न जाने क्या प्रयोजन सिद्ध करते हैं? सच तो यह है कि ये सब बातें मनुष्यों को भुलाने[८] की हैं॥ १२४ ॥

१२५. एक बड़ा आश्चर्य स्वर्ग में दिखाई दिया अर्थात् एक स्त्री जो सूर्य पहने है और चाँद उसके पांवों तले है और उसके शिर[९] पर बारह तारों का मुकुट है। १। और वह गर्भवती होके चिल्लाती है, क्योंकि प्रसव की पीड़ा उसे लगी है और वह जनने[१०] को पीड़ित है। २। और दूसरा आश्चर्य स्वर्ग में दिखाई दिया है; देखो, एक बड़ा लाल अजगर है, जिसके सात शिर[११] और दश सींग हैं और उसके शिरों[१२] पर सात राजमुकुट हैं। ३। और उसकी पूंछ ने आकाश के तारों की एक तिहाई को

है। **पं० भगवद्दत्त सं०** में महा-अशुद्धि है, क्योंकि उसमें इसके स्थान पर "५" संख्या लिख दी है। मुद्रणह०, द्वि०सं०, मूलसं०, युमी में संशोधित करके इसको हटा दिया है। उदयपुर सं० ने इस व्यर्थ संख्या को फिर ग्रहण कर लिया है। दो के स्थान पर तीन आयतसंख्याएं रखने से समीक्षित आयतसंख्या के कुल जोड़ में अशुद्धि हो जायेगी, अत: इस संख्या को हटाना आवश्यक है।

१. **लग्गी**=लम्बा-पतला बांस, जिससे पेड़ से फल तोड़ते हैं।

२. **अपवर्तनी**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में "**नर्कट**" अशुद्ध वर्तनी है। अन्य सभी सं० तथा उदयपुर सं० में भी अशुद्ध है।

३-५. **अपवर्तनियां**—क्रमश: तीनों अपवर्तनियां दोनों हस्त० और तीनों सं० में हैं—'**गिर्जा, क्रूश, बुत्परस्ती**'। इनका शुद्ध रूप ऊपर अंकित है। सभी अन्य सं० तथा उदयपुर सं० में भी ये अशुद्धियां हैं। '**गिरजा**' शब्द पुर्तगाली भाषा के 'इग्रिजिया' का अपभ्रंश है।

ऋषिपाठ—"**इसीलिये........बुतपरस्ती है**" पाठ मूलहस्त० में ऋषि-लिखित है।

६-७. **त्रुटित आवश्यक पाठ**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में बृहत् कोष्ठकान्तर्गत पाठ त्रुटित रह गये हैं। इनका परिवर्धन आवश्यक है।

८. **भुलाने की**=भुलावे में डालने की, बहकाने की।

९,११,१२. **अव्यवस्थित वर्तनी**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में एक ही अनुच्छेद में तीन प्रयोगों में दो वर्तनियां है—'**सिर, शिर**'। दोनों ठीक होते हुए भी भिन्न-भिन्न वर्तनी, और वह भी एक ही स्थान पर लिखना लिपिकरों की स्तरहीन भाषा का परिचायक है। भाषा की एकरूपता, शुद्धता और मानकता की दृष्टि से तत्कालीन प्रचलित '**शिर**' वर्तनी को ग्राह्य माना है।

खींचके उन्हें पृथिवी पर डाला....। ४। यो० प्र०, प० १२। आ० १। २। ३। ४॥

समीक्षक—अब देखिये लम्बे-चौड़े गपोड़े!! इनके स्वर्ग में भी बेचारी स्त्री चिल्लाती है, उसका दु:ख कोई नहीं सुनता, न मिटा सकता है। और उस अजगर की पूंछ इतनी बड़ी थी कि जिसने तारों के एक तिहाई पृथिवी पर डाले!![१३] भला, पृथिवी तो छोटी है और तारे बड़े-बड़े भी लोक हैं, इस पृथिवी पर एक भी नहीं समा सकता। किन्तु यहाँ यही अनुमान करना चाहिये कि ये तारों की तिहाई इस बात के लिखनेवाले के घर पर गिरे होगें, और जिस अजगर की पूंछ इतनी बड़ी थी कि जिससे सब तारों की तिहाई लपेटकर भूमि पर गिरा दी, वह अजगर भी उसी के घर में रहता होगा!॥ १२५ ॥

१२६. और स्वर्ग में युद्ध हुआ, मीकाईल[१] और उसके दूत अजगर से लड़े और अजगर और उसके दूत उससे लड़े। ७। यो० प्र०, प० १२। आ० ७॥

समीक्षक—जो कोई ईसाइयों के स्वर्ग में जाता होगा, वह भी लड़ाई में दु:ख पाता होगा। ऐसे स्वर्ग की यहीं से आशा छोड़, हाथ जोड़ बैठ रहो। जहां शान्तिभंग और उपद्रव मचा रहे, वह [स्वर्ग][२] ईसाइयों के ही योग्य है॥ १२६ ॥

१२७. और वह बड़ा अजगर गिराया गया; हां, वह प्राचीन सांप जो दियाबल[३] और शैतान कहाता है, जो सारे संसार का भरमानेहारा[४] है....। ९। यो० प्र०, प० १२। आ० ९॥

समीक्षक—क्या जब वह शैतान स्वर्ग में था तब लोगों को नहीं भरमाता[५] था? और उसको जन्मभर बंदीगृह[६] में अथवा मार क्यों न डाला? उसको पृथिवी पर क्यों डाल दिया? जो सब संसार को भरमानेवाला[७] शैतान है, तो शैतान को भरमानेवाला[८] कौन है? यदि शैतान स्वयं भरमा है, तो शैतान के विना भरमानेहारे[९] भरमेंगे[१०] और जो उसको भरमानेहारा[११] परमेश्वर है, तो वह 'ईश्वर' ही नहीं

---

१०. **उचित संशोधन**—मूलह०, मूलसं० में यहां '**जन्मे को**' अपप्रयोग है, ''**जनने**'' को मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं० में संशोधित है।

१३. **अपवाक्य**—मूलह०, मूलप्रति सं० में यह व्याकरणिक अपवाक्य है, जो इस प्रकार है—''**उस अजगर का पूंछ कितना बड़ा था, जिसने तारों के एक तिहाई पृथिवी पर डाले।**'' द्विप्र०, द्वि०सं० में इसको अर्ध-शुद्ध कर दिया है। मुद्रणह०, द्विप्र० व द्वि०सं० में भी ''**कितनी**'' अपप्रयोग है, यहां ''**इतनी**'' अपेक्षित है। इसी प्रकार वहां ''**एक तिहाई पृथिवी पर डाला**'' अपपाठ है। उदयपुर सं० ने संशोधन कर लिया है।

१. **मिकाईल (Michael)**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में ''**मीखायेल**'' अशुद्ध वर्तनी है। **संशोधन-पुष्टि**—आगे पृ० ९५८ पर ''**मिकाईल**'' शुद्ध प्रयोग है। जो संशोधन की पुष्टि करता है। **ऋषिलेख**—पृष्ठ के सभी रेखांकित पाठ ऋषिलिखित हैं।

२. **त्रुटित आवश्यक पद**—सभी सं० में ''**स्वर्ग**'' पद त्रुटित है। वाक्यरचना की दृष्टि से यह आवश्यक है। अत: ग्राह्य है।

३. **दियाबल**—अंग्रेजी डेविल (Devil)का हिन्दी रूप है, अर्थात् शैतान।

४,५,७-११. **अव्यवस्थित वर्तनियां**—इस अनुच्छेद और समीक्षा में '**भरमाना**' धातु के क्रियापदों का आठ बार प्रयोग हुआ है। एक ही स्थान पर, ग्रन्थ में एक ही धातु की दो प्रकार की वर्तनियां लिपिकरों ने लिखी हैं—**भरमाना, भर्माना, भर्मेगें, भर्मा, भरमना।** पूरे ग्रन्थ में तीन वर्तनियां हैं। ''भ्रम'' का सर्वत्र प्रयोग है। महर्षि ने एक ही क्रिया के अनेक रूपों को एक ही प्रकार से बोला होगा, किन्तु भाषा ज्ञान से रहित लिपिकरों ने उसको विभिन्न प्रकार की अपवर्तनी के रूप में लिखा। ऐसे ही अयोग्य लिपिकर थे और ऐसे ही वेतनभोगी शोधक थे जिन्होंने लापरवाही से भाषा देखी है। सत्यार्थप्रकाश की भाषा में अशुद्धियां रहने का यही कारण है। द्विप्र० एवं सभी सं० में यहां मिलता जुलता भ्रष्ट पाठ इस प्रकार है—''**जो सारे संसार को भरमानेहारा है ॥....भरमाने वाला शैतान है,......शैतान स्वयं भर्मा है तो शैतान के विना भरमनेहारे भर्मेंगे और उसको भर्मानेहारा परमेश्वर है।**'' (पृ० ५१२) ''**भ्रमाये हुए जन**'' (पृष्ठ ५८५) आदि। हमारे कुछ विद्वान् और पाठक जो स्वयं को 'ऋषिभक्त' कहते हैं और अशुद्धि-संशोधकों को 'गैर ऋषिभक्त' मानते हैं, वे कहते हैं कि 'सश्रद्ध नमन करने योग्य लिपिकरों-शोधकों' द्वारा लिखित भाषा में एक शब्द का परिवर्तन करना भी 'ऋषिद्रोह' है और कोमा, विराम तक बदलना अनैतिक अपराध है।'' तो हमने सोचा कि यहां हम

ठहरा।

विदित तो यह होता है कि ईसाइयों का ईश्वर भी शैतान से डरता होगा? क्योंकि जो शैतान से प्रबल होता[१] तो ईश्वर ने उसको अपराध करते[२] समय ही दण्ड क्यों न दिया? **जगत् में शैतान का जितना राज है उसके सामने सहस्त्रांश भी ईसाइयों के ईश्वर का राज्य नहीं।**[३] **इसीलिये ईसाइयों का ईश्वर**

लिपिकर द्वारा प्रयुक्त शब्दों को बिना बदले अपनी बात कह देते हैं। एक जगह के अनैतिक अपराध से तो बच जायेंगे। तब ऐसी भाषा बनेगी—

पं० भगवद्दत्त जी और **स्वामी जगदीश्वरानन्द जी** 'भ्रम-माया' में ऐसे "**भर्मे**" कि इस अनुच्छेद में आठ बार अनेक रूपों में प्रयुक्त "भर्म","भरम" शब्द के मूलस्वरूपों को बदल करके सबकी एक वर्तनी "भरम" बना दी। अन्य भी इसी शुद्धता "भ्रम-माया" के "भर्म" में भरम गये।

शेष **द्विप्र० द्वि०सं०, मूलप्रति सं०, स्वामी वेदानन्द जी, पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक** का तथा उदयपुर संस्करण "भ्रम-माया" में नहीं "भर्मे"। इसलिए उन्होंने "भर्म", "भरम" मूलस्वरूपों को भक्तिवश नहीं बदला। उसके अनेकरूपों "भर्म, भरम, भर्मानेवाला, भरमानेवाला, भरमेंगे, भर्मेंगे, भर्मा, भरमा, भ्रम" आदि की शोभा को बनाये रखा है। "ऋषिभक्त" कैसे "भ्रम" सकते हैं, उनको "भर्मानेहारा" कौन है? "भरमनेहारे ही भर्मेंगे"। सवा-सौ वर्ष तक जब नहीं भर्मे तो अब कौन है जो उन्हें अशुद्धि की कथित भ्रम-माया में भरमाकर भर्मा सकता है?

६. **मुद्रणलिपिकर कृत अपपाठ एवं अनावश्यक संशोधन की रोचक कहानी**—पाठ कैसे-कैसे विकृत होता जाता है, यह स्थल उसका एक ज्वलन्त उदाहरण है। मूलह०, मूलसं० में शुद्धपाठ है—"**बंदीगृह में......क्यों न डाला**"। प्रमादी मुद्रणलिपिकर ने लिपि करते हुए प्रमाद से लिख दिया—"**बंदीगृहे**"। शोधक भी शायद भंग चढ़ाये था, उसने '**बंदी**' और '**गृहे**' के ऊपर बीच में "**में**" लिख दिया और यह अद्भुत पाठ बन गया—"**बंदी में गृहे**"। मुद्रणकाल में भी शायद शोधक ठीक हालत में नहीं था, उसने छपवाया—"**बंदी में घिरा**"। परोपकारिणी के ३३वें सं० तक यह पाठ गर्व के साथ छपता रहा। फिर किसी सम्पादक को इस पर तरस आई तो ३४वें में उसने इसको बना दिया—"**बंदीगृह में घिरा.....क्यों न डाला?**" इतने दीर्घकालीन श्रम के बाद द्वि०सं० में यहां "**गृह**" पद और "**घिरा**" क्रिया परिवर्धित की गई है। यह क्रियावर्धन भी अपप्रयोग होने के साथ-साथ अनावश्यक परिवर्धन है क्योंकि "**क्यों न डाला**" पदों का सम्बन्ध "**बंदीगृह में**" और "**मार**" दोनों पदों से है। "**घिरा**" परिवर्धन नितान्त व्यर्थ है।

विद्वानों की सम्पादन-लीला की कहानी—द्वितीय संस्करण और पं० भगवद्दत्त सं० में "**बंदीगृह में घिरा.... क्यों न डाला?**" इस विचित्र-से वाक्य को सहर्ष स्वीकार कर पाठ परिवर्तन कर डाला गया। उदयपुर सं० ने भी उसको अनुकरणकर्त्ता ने समान ग्रहण कर लिया। **स्वामी वेदानन्द जी, सिद्धान्ती जी** और **पं० युधिष्ठिर जी मीमांसक** ने नहीं बदला, "**बंदी में घिरा**" अशुद्ध पाठ ही रखा। पं० मीमांसक जी ने इसके मूल या मध्य स्वरूप को अक्षुण्ण रखते हुए टिप्पणी दे दी—"**बंदीगृह में गिरा**"। पं० जी ने टिप्पणी में लिखा है, तो हिन्दी में "**घिरा**" का "**गिरा**" अर्थ भी होता होगा, हमारा तो इतना ज्ञान है नहीं। पं० जी के अनुकरणकर्त्ता **स्वामी विद्यानन्द जी** ने टिप्पणी के झंझट में पड़ने के बजाय सीधा मूलपाठ में ही यह पाठ मिश्रित कर लिया—"**बंदीगृह में गिरा**"। विद्वान् बेकार ही शब्दजाल में उलझ रहे थे, स्वामी विद्यानन्द जी ने एक पल में सारा झंझट ही मिटा दिया! **स्वामी जगदीश्वरानन्द जी** सम्पूर्ण प्रभुतासम्पन्न राष्ट्र के समान सर्वतन्त्र स्वतन्त्र परमहंस व्यक्तित्व जो ठहरे। सो उन्होंने सारी माथापच्ची को एक ओर हटाकर यह 'सर्वतन्त्र स्वतन्त्र' पाठ बनाया—"**उसे जन्म भर बन्दीगृह में क़ैद क्यों नहीं रक्खा अथवा मार क्यों न डाला?**" बन गया न आधुनिक हिन्दी रूपान्तरण का नया सत्यार्थप्रकाश? सवा-सौ वर्ष तक आर्यसमाजी बेकार मूलस्वरूप-मूलस्वरूप करके आपस में उलझे रहे हैं। **स्वामी जगदीश्वरानन्द जी** का फार्मूला अपना लेते तो कुछ भी पुराना न होता, सबकुछ नया-नया होता!!

१. **अपपरिवर्तन**—द्वि०सं० में यहां "**प्रबल है तो**" अपपाठ है, भूतकाल से सम्बन्धित क्रिया अपेक्षित है। मूलप्रति सं० में "**होता**" पाठ ठीक है। **ऋषिलेख**—"**जो शैतान........शैतान का**" पाठ मूलह० में ऋषि द्वारा लिखित है।

२. **उचित संशोधन**—मूलप्रति सं० में "**करने समय**" अपप्रयोग है। द्विप्र०, द्वि०सं० आदि में संशोधित है।

३. **द्वितीय संस्करण में भ्रष्ट परिवर्तन**—मूलह०, मूलप्रति सं० के इस पाठ को द्वि०सं० में इस प्रकार भ्रष्ट कर दिया—"**जगत् में शैतान का जितना राज है उसके सामने सहस्त्रांश भी ईसाइयों का राज नहीं।**" यहां पूर्वापर प्रसंग में शैतान और ईश्वर की तुलना हो रही है, ईसाइयों के राज्य की नहीं। यहां उनके ईश्वर के राज्य की चर्चा है, अंग्रेज़ों के राजनीतिक उपनिवेश की नहीं। मुद्रणह०, द्विप्र० और सभी विद्वानों के संस्करणों में यह पाठ ठीक है, केवल द्वितीय संस्करण में अशुद्ध है।

उसको हटा नहीं सकता होगा। इससे यह सिद्ध हुआ कि जैसा इस समय के ईसाई राज्याधिकारी, डाकू-चोर आदि को शीघ्र दण्ड देते हैं, वैसा [दण्ड] भी ईसाइयों के ईश्वर का नहीं। पुनः कौन ऐसा निर्बुद्धि मनुष्य है कि जो वैदिकमत को छोड़ पोकल[1] ईसाईमत का स्वीकार करे?॥ १२७॥

१२८. ......हाय, पृथिवी और समुद्र के निवासियो! क्योंकि शैतान तुम पास उतरा है....। १२।

यो० प्र०, प० १२। आ० १२॥

समीक्षक—क्या वह ईश्वर वहाँ का रक्षक और स्वामी है? पृथिवी के[2] मनुष्यादि प्राणियों का रक्षक और स्वामी नहीं है? यदि भूमि का भी राजा है, तो शैतान को क्यों न मार सका? ईश्वर देखता रहता है और शैतान बहकाता फिरता है, तो भी उसको वर्जता नहीं। विदित तो यह होता है कि एक अच्छा ईश्वर है, और एक समर्थ दुष्ट दूसरा ईश्वर [शैतान] हो रहा है॥ १२८॥

१२९. ....और बयालीस मास लों युद्ध करने का अधिकार उसे दिया गया। ५। और उसने ईश्वर के विरुद्ध निन्दा करने को अपना मुंह खोला कि उसके नाम की और उसके तम्बू की और स्वर्ग में वास करनेहारों की निन्दा करे। ६। और उसको यह दिया गया कि पवित्र लोगों से युद्ध करे और उन पर जय करे और हर एक कुल और भाषा और देश पर उसको अधिकार दिया गया। ७।

यो० प्र०, प० १३। आ० ५। ६। ७॥

समीक्षक—भला, जो पृथिवी के लोगों को बहकाने के लिये शैतान और पशु आदि को भेजे और पवित्र मनुष्यों से युद्ध करावे, वह काम डाकुओं के सरदार[3] के समान नहीं है? ऐसा काम ईश्वर वा ईश्वर के भक्तों का नहीं हो सकता॥ १२९॥

१३०. और मैंने दृष्टि की, और देखो मेम्ना सियोन[4] पर्वत पर खड़ा है। और उसके संग एक

---

१. **पोकल**=निस्सार, खोखला। यह गुजराती का प्रयोग है। **ऋषिलेख**—''**सकता होगा........स्वीकार करे**'' पाठ मूलह० में ऋषि द्वारा लिखित है।

२. **मुद्रणलिपिकर द्वारा त्रुटित और पं० मीमांसक जी द्वारा स्वीकृत पाठ अग्राह्य**—ज्ञात होता है कि मुद्रणलिपिकर के प्रमाद से, जैसा कि सैकड़ों स्थानों पर उसका प्रमाद स्पष्ट और सिद्ध हो रहा है, ''**के**'' कारकचिह्न लिखना छूट गया, और यह पाठ द्विप्र० से लेकर परोपकारिणी के ३३वें संस्करण तक छपता रहा—''**पृथिवी, मनुष्यादि प्राणियों का रक्षक और स्वामी नहीं है?**'' ३४वें सं० में संशोधन करके ''**पृथिवी के मनुष्यादि**'' पाठ बना दिया गया, जो उचित था। द्वि०सं०, मूलसं० में संशोधित पाठ प्रचलित है। पं० मीमांसक जी ने पुनः आरम्भिक ''**के**'' रहित पाठ को ग्रहण कर लिया और उसके समर्थन में टिप्पणी दी कि '**के**' बढ़ाना अनावश्यक है। पं० जी का यह कथन स्वीकार्य नहीं है क्योंकि सम्बद्ध आयत-पाठ में पृथिवी और स्वर्ग की रक्षा का विषय नहीं है अपितु वहां के निवासियों की रक्षा का विषय है। देखिए, उद्धृत आयतांश में भी '**पृथिवी के निवासियों**' सम्बोधन है। इस प्रकार बाइबल पृथिवी के मनुष्यों का वर्णन कर रहा है। बाइबल के अग्रिम वर्णन में बताया गया है कि उसने पृथिवी की निवासी स्त्री को मारने की कोशिश की जबकि पृथिवी ने स्त्री की रक्षा की और शैतान के प्रयासों को निष्फल कर दिया। इस आधार पर समीक्षा में ग्रन्थकार ने यह प्रश्न उठाया है कि जब उनके ईश्वर ने शैतान से स्वर्गवासियों की रक्षा की तो पृथिवी के निवासियों की रक्षा क्यों नहीं की? क्या वह स्वर्ग का ही ईश्वर या राजा है, भूमि का नहीं है? सम्पूर्ण प्रसंग के आलोक में संशोधित पाठ ग्राह्य है, पं०जी द्वारा प्रस्तावित और मुद्रणलिपिकर द्वारा त्रुटित अशुद्ध पाठ नहीं।

उदयपुर सं० ने, शायद, पं०जी की टिप्पणी से प्रभावित होकर, द्वि०सं० के संशोधन को नकार कर, पुनः मुद्रणलिपिकर द्वारा त्रुटित अशुद्ध पाठ ग्रहण कर लिया है। यह सम्पादकीय असावधानी है।

३. **मुद्रणलिपिकरकृत अपवर्तनी**—मुद्रणह०, द्विप्र० में ''**सर्दार**'' अपर्वनी है। द्वि०सं० और पं० भगवद्दत्त जी के सं० में संशोधित है किन्तु **स्वामी वेदानन्द जी, पं० मीमांसक जी** और **उदयपुर सं०** में अशुद्ध वर्तनी है।

४. **सियोन पर्वत**—इस विषयक टिप्पणी पृ० ८४९ पर द्रष्टव्य है।

लाख, चवालीस सहस्र जन[१] थे जिनके माथे पर उनका नाम और उनके पिता का नाम लिखा है। १।

यो० प्र०, प० १४। आ० १॥

समीक्षक—अब देखिये, जहाँ ईसा का बाप रहता था, वहीं उसी **'सियोन'** पहाड़ पर उसका लड़का भी रहता है। परन्तु एक लाख चवालीस सहस्र मनुष्यों की गणना क्योंकर की? एक लाख चवालीस सहस्र ही स्वर्गवासी हुए, शेष करोड़ों ईसाइयों के शिर पर मोहर न लगी, क्या ये सब नरक में गये? ईसाइयों को चाहिये कि **'सियोन'** पर्वत पर जाके देखें कि ईसा का उक्त बाप और उनकी सेना वहां है वा नहीं? जो हों तो यह लेख ठीक है, नहीं तो मिथ्या। यदि कहीं से वहां आया, तो कहां से आया? जो कहो स्वर्ग से, तो क्या वे पक्षी हैं कि इतनी बड़ी सेना और आप ऊपर-नीचे उड़कर आया-जाया करते [हैं]? यदि वह आया- जाया करता है, तो एक जिले के न्यायाधीश के समान हुआ। और वह एक, दो वा तीन हो, तो नहीं बन सकेगा, किन्तु न्यून से न्यून एक-एक भूगोल में एक-एक ईश्वर चाहिये; क्योंकि वे एक, दो, तीन अनेक ब्रह्माण्डों का न्याय करने और सर्वत्र युगपत् घूमने में समर्थ कभी नहीं हो सकते॥ १३०॥

१३१. ....आत्मा कहता है, ''हां, कि वे अपने परिश्रम से विश्राम करेंगे परन्तु उनके कार्य उनके संग हो लेते हैं। १॥''

यो० प्र०, प० १४। आ० १३॥

समीक्षक—देखिये, ईसाइयों का ईश्वर तो कहता है **'उनके कर्म उनके संग रहेंगे' अर्थात् कर्मानुसार फल सबको दिये जायेंगे, और ये लोग कहते हैं कि ईसा पापों को ले लेगा और क्षमा भी किये जायेंगे।** यहां बुद्धिमान् विचारें कि ईश्वर का वचन सच्चा है वा ईसाइयों का? एक बात में दोनों तो सच्चे हो ही नहीं सकते।[२] इनमें से एक झूठा अवश्य होगा। हमको क्या, चाहे ईसाइयों का ईश्वर झूठा हो, वा ईसाई लोग!!॥ १३१॥

१३२. ....और उसे ईश्वर के कोप के बड़े रस के कुण्ड में डाला। १९। और रस के कुण्ड का रौंदन नगर के बाहर किया गया और रस के कुण्ड में से घोड़ों की लगाम तक लोहू एक-सौ कोश तक बह निकला। २०।

यो० प्र०, प० १४। आ० १९। २०॥

समीक्षक—अब देखिये, इनके गपोड़े पुराणों से भी बढ़कर हैं, वा नहीं? ईसाइयों का ईश्वर कोप करते समय बहुत दु:खित हो जाता होगा, और जो उसके कोप के कुण्ड भरे हैं, क्या उसका कोप जल है वा अन्य द्रवित पदार्थ है कि जिससे कुण्ड भरे हैं? और सौ कोश तक रुधिर का बहना असम्भव है, क्योंकि रुधिर वायु लगने से झट जम जाता है, पुन: क्योंकर बह सकता है? इसलिये ऐसी बातें मिथ्या होती हैं॥ १३२॥

१३३. ....और देखो, स्वर्ग में साक्षी के तम्बू का मन्दिर[३] खोला गया। ५।

यो० प्र०, प० १५। आ० ५॥

१. **मुद्रणलिपिकर द्वारा त्रुटित पद**—मुद्रणहस्त०, द्विप्र० में ''**जन**'' पद त्रुटित है। सभी द्वि०सं० ने ग्रहण कर लिया है। **ऋषिलेख**—इस पृष्ठ के सभी रेखांकित पाठ मूलह० में ऋषि द्वारा लिखित हैं।

२. **मुद्रणकालीन उचित संशोधन**—मूलह०, मुद्रणह०, मूलप्रति सं० में यहां अपपाठ है—''**एक बात में दोनों तो सच्चा हो ही नहीं सकते।**'' दो के लिए बहुवचन ''**सच्चे**'' अपेक्षित है। द्विप्र०, द्वि०सं० में संशोधित है।

समीक्षक—जो ईसाइयों का ईश्वर सर्वज्ञ होता तो साक्षियों का क्या काम? क्योंकि वह स्वयं सब कुछ जानता होता। इससे सर्वथा यही निश्चय होता है कि इनका ईश्वर सर्वज्ञ नहीं, किन्तु मनुष्यवत् अल्पज्ञ है। क्या वह ईश्वरता कर सकता है?[१] नहीं, नहीं, नहीं!![२] और इसी प्रकरण में दूतों की बड़ी-बड़ी असम्भव बातें लिखी हैं, उनको सत्य कोई नहीं मान सकता। कहाँ तक लिखें, इस प्रकरण में सर्वथा ऐसी ही बातें भरी हैं॥ १३३॥

१३४. ....और ईश्वर ने उसके कुकर्मों को स्मरण[३] किया है। ५। जैसा तुम्हें उसने दिया है तैसा उसको भर देओ और उसके कर्मों के अनुसार दूना उसे दे देओ....। ६।

यो० प्र० प० १८। आ० ५। ६॥

समीक्षक—देखो, प्रत्यक्षतः ईसाइयों का ईश्वर अन्यायकारी है।[४] क्योंकि **न्याय उसी को कहते हैं कि जिसने जैसा वा जितना कर्म किया उसको वैसा और उतना ही फल देना। उससे अधिक-न्यून देना अन्याय है। जो अन्यायकारी की उपासना करते हैं, वे अन्यायकारी क्यों न हों?**॥ १३४॥

१३५. ....क्योंकि मेम्ने का विवाह आ पहुँचा है और उसकी स्त्री ने अपने को तैयार किया है। ७।

यो० प्र०, प० १९। आ० ७॥

समीक्षक—अब सुनिये, ईसाइयों के स्वर्ग में विवाह भी होते हैं! क्योंकि ईसा का विवाह ईश्वर ने वहीं किया। पूछना चाहिये कि उसका श्वसुर, सास,[५] साला[६] आदि कौन थे और लड़के-बाले कितने हुए? **और वीर्य के नाश होने से बल, बुद्धि, पराक्रम, आयु आदि भी घटके अब तक ईसा ने वहां**

---

३. **मुद्रणकालीन उचित संशोधन**—मूलह०, मुद्रणह०, मूलप्रति सं० में ''**साक्षी के मन्दिर का तम्बू**'' यह अपपाठ है। बाइबल में यह पाठ नहीं है। यहां कहा गया है कि तम्बू का बना मन्दिर खोला गया है। आगे बाइबल में कहा है कि उस खोले गये मन्दिर से सात स्वर्गदूत निकलकर बाहर आये फिर उस मन्दिर में कोई प्रवेश नहीं कर सका। '**मन्दिर का तम्बू**' असंगत पाठ है। द्विप्र० और द्वि०सं० में यह पाठ संशोधित कर दिया है। उदयपुर सं० में भी संशोधित है।

१-२. **मुद्रणलिपिकर कृत अपपाठ**—मूलह०, मुलसं० में यह वाक्य शुद्ध है। मुद्रणलिपिकर प्रमाद से यह लिख गया—''**वह ईश्वरता का क्या कर सकता है**'' इस त्रुटि को न समझकर द्विप्र० में इस वाक्य को ग्रन्थकार के आशय के विपरीत परिवर्तित करके यह पाठ बनाया है—''**वह ईश्वरता का क्या काम कर सकता है?**'' महर्षि यहां यह कहना चाहते हैं कि ईसाइयों का ईश्वर सर्वज्ञ नहीं, मनुष्यवत् अल्पज्ञ है, वह ईश्वरता नहीं कर सकता अर्थात् वह ईश्वर हो ही नहीं सकता, जबकि संशोधित वाक्य का भाव यह है कि ईश्वर जो काम करता है उनमें से वह कोई काम नहीं कर सकता? संशोधित वाक्य का अर्थ यह भी हो गया कि वह ईश्वर तो है किन्तु ईश्वरता के काम नहीं कर सकता। आगे संख्यांक २ पर मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं० में ''**नहिं, नहिं, नहिं**'' प्रयोग है। हिन्दी व्याकरणानुसार ''**नहीं नहीं नहीं**'' ठीक है, '**नहिं**' प्रयोग नहीं होता। ग्रन्थ में अन्यत्र सैंकड़ों स्थलों पर शुद्ध '**नहीं**' प्रयुक्त है। मूलह०, मूलसं० में संस्कृत प्रयोग ''**नहि, नहि**'' भी शुद्ध है। उदयपुर सं० में दोनों पाठ अशुद्ध है।
ऋषिलेख—इस पृष्ठ के सभी रेखांकित पाठ मूलह० में ऋषि द्वारा लिखित हैं।

३. **मुद्रणप्रति में अपवर्तनी**—मुद्रणह०, द्विप्र० में ''**स्मर्ण**'' अपवर्तनी है। अन्य सभी में संशोधित है।

४. **अपपाठ**—दोनों हस्त० और तीनों संस्करणों में यह अपवाक्य है—''**प्रत्यक्ष ईसाइयों का ईश्वर अन्यायकारी है।**'' यह अप वाक्य वक्ता के अभिप्राय को स्पष्ट नहीं करता, अत: ''**प्रत्यक्षतः**'' होना उपयुक्त है। इससे अर्थ स्पष्ट हो जाता है कि स्पष्ट दीख रहा है कि ईसाइयों का ईश्वर अन्यायकारी है। प्रत्यक्ष पद रखने से वह ईसाइयों का विशेषण बन जाता है जिसका अर्थ बनेगा—'**जो प्रकट या सामने ईसाई हैं उनका ईश्वर अन्यायकारी है।**' फिर प्रश्न उठेगा कि ये प्रत्यक्ष ईसाई कौन होते हैं? यह ग्रन्थकार के अभिप्राय के विरुद्ध है, अत: संशोधन अपेक्षित है। वेस, भद, जग, युमी, विस, उदयपुर सं० में अपपाठ है।

५-६. **अपवर्तनी**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में ''**सास**'' ''**शाला**'' अशुद्ध वर्तनियां हैं। हिन्दी में ''**सासु या सास**'' शुद्ध है तथा '**शाला**' का अर्थ घर होता है, जैसे—धर्मशाला, अतिथिशाला आदि। उदयपुर सं० में दोनों पद अशुद्ध हैं।

शरीर त्याग कर दिया होगा,[१] क्योंकि संयोगजन्य पदार्थ का वियोग अवश्य होता है। अब तक ईसाइयों ने उसके विश्वास में धोखा खाया और न जाने कब तक धोखे में रहेंगे॥ १३५॥

१३६. ....और उसने अजगर को अर्थात् प्राचीन सांप को जो दियाबल[२] और शयतान[३] (शैतान) है, पकड़के उसे सहस्र वर्ष लों बाँध रक्खा। २। और उसको अथाह कुण्ड में डाला और बन्द करके ऊपर उसके छाप दी,[४] जिसतें वह जब लों सहस्र वर्ष पूरे न हों, तब लों फिर देशों के लोगों को न भरमावे.....। ३। यो० प्र०, प० २०। आ० २। ३॥

समीक्षक—देखो, मरूँ-मरूँ करके शयतान (शैतान) को पकड़ा और सहस्र वर्ष तक बन्द[५] किया; फिर भी छूटेगा। क्या फिर न भरमावेगा? ऐसे दुष्ट को तो बन्दीगृह में सदा रखना वा मारे विना छोड़ना ही नहीं [चाहिये]।[६] परन्तु यह शयतान (शैतान) का होना ईसाइयों का भ्रममात्र है, वास्तव में कुछ भी नहीं। केवल लोगों को डराके अपने जाल में लाने का उपाय रचा है।

जैसे किसी धूर्त्त[७] ने किन्हीं भोले मनुष्यों से कहा कि 'चलो, तुमको देवता का दर्शन कराऊँ,' किसी एकान्त देश में ले जाके एक मनुष्य को चतुर्भुज बनाकर रक्खा। झाड़ी में खड़ा करके कहा कि 'आँख मीच लो। जब मैं कहूँ तब खोलना और फिर जब कहूँ तभी मीच लेना।[८] जो न मीचेगा वह

---

१. **अपपाठ**—दोनों हस्त०, तीनों संस्करणों में ''**आयु आदि भी कटके.......''शरीर त्याग किया होगा**'' पाठ है। उपयुक्त पाठ ''**शरीर त्याग कर दिया होगा**'' संभावनार्थक होना अपेक्षित है। मूलप्रति सं० में '**घटके**' के स्थान पर '**कटके**' अपपाठ है। द्वि० सं० में ''**न्यून होने से**'' संशोधन है। भाव एक ही है। **ऋषिलेख**—सभी रेखांकित पाठ ऋषिलिखित हैं।

२. **दियाबल**=डेविल (Devil)। यह अंग्रेजी शब्द का हिन्दीकरण है। इसका अर्थ भी '**शैतान**' ही है। बाइबल के अनुवाद में इसका नाम '**इब्लीस**' दिया है।

३. '**शयतान' वर्तनी लिखने का कारण**—दोनों हस्तलेखों में कहीं इस शब्द की ''**सहितान**'' अपवर्तनी है, तो कहीं ''**शैतान**''। महर्षि ने अपने हाथ से ''**सहितान**'' को काटकर ''**शैतान**'' संशोधित भी किया है और स्वहस्तलेख के पाठ में लिखा भी है। मुद्रणकाल में द्विप्र० में एक नयी वर्तनी प्रयुक्त हुई है—''**शयतान**''। इस आयतखण्ड और इसकी समीक्षा में यह शब्द चार बार प्रयुक्त हुआ है और चारों बार यही वर्तनी है। इसका अर्थ यह हुआ कि मुद्रणकाल में यह वर्तनी (शायद प्रूफ पर) लिखी गई थी। सभी सम्पादकों ने इसको अशुद्ध मानकर ''**शैतान**'' संशोधन कर दिया। वस्तुतः यह गुजराती प्रयोग है। गुजराती में '**शयतान**' लिखा जाता है। इस प्रकार गुजराती भाषा के अनुसार '**शयतान**' प्रयोग शुद्ध है। ज्ञात होता है कि इस वर्तनी का परिवर्तन महर्षि ने गुजराती प्रभाव से स्वयं अपने हाथ से किया होगा क्योंकि अन्य कोई लेखक गुजराती प्रयोग नहीं कर सकता था। इस कारण इस सं० में द्विप्र० के मूलपद को यथावत् रखते हुए ''**शैतान**'' मुद्रणहस्त० के हिन्दी रूप को कोष्ठक में रखा गया है। यह प्रयोग हिन्दी पर महर्षि के गुजराती प्रभाव को प्रदर्शित करता है। अन्यत्र भी कई स्थलों पर गुजराती प्रयोग मिलते हैं। द्र० पृष्ठ ९४७ पर टि० संख्या १।

४. **अपपाठ**—मूलह०, मूलप्रति सं० में ''**बन्द ऊपर करके उसके छाप दी**'' अपपाठ है। मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं० में भी अशुद्ध है। उदयपुर सं० में द्वि०सं० का अशुद्ध पाठ है। बाइबल में ''**उस पर छाप दी**'' प्रयोग है, यही ग्राह्य है। आगे मुद्रणलिपिकर ने ''**जिसतें**'' को ''**जिसने**'' अशुद्ध लिखा, यही द्विप्र० में छपा है। अन्य सभी द्वि०सं० में संशोधित हैं।

५. **अपवर्तनी**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में ''**बन्ध**'' अपवर्तनी है। देखिए, आगे दूसरी पंक्ति में ''**बन्दीगृह**'' प्रयोग है जो '**बन्द**' से बना है। आयत के मूल पाठ में ''**बन्द करके**'' शुद्ध पाठ है। उदयपुर सं० में भी अपवर्तनी है।

६. **त्रुटित आवश्यक क्रिया**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में ''**चाहिये**'' क्रिया त्रुटित है।

७. **ठगी की कथा**—यह ठगी की कथा ''**स्वामीनारायण**'' मत के संस्थापक सहजानन्द नामक व्यक्ति की है। इसका विवरण विस्तार से एकादश समु० में वर्णित है। (द्र० पृष्ठ ६८८ पर)

८. **अपपाठ**—तीनों संस्करणों में यह अपवाक्य है—''**जब मैं कहूं तब खोलना और फिर जब कहूं तभी मीच लो।**'' वाक्यान्त में भी '**मीचलेना**' भविष्यत्-क्रिया अभीष्ट है। मूलह०, मूलप्रति सं० में इस संदर्भ में चार बार '**बींचना**' क्रिया का अपप्रयोग है,

अन्धा हो जायगा।' जब वह सामने आया तब कहा—'देखो'। पुन: शीघ्र कहा कि 'मीच लो।' जब फिर झाड़ी में छिप गया, तब कहा—'खोलो, देखा, नारायण का सबने दर्शन किया'।[१]

वैसी लीला इन मज़हबियों की है कि 'जो हमारे मज़हब को न मानेगा, वह शयतान (शैतान) का बहकाया हुआ है', ऐसे उसको फसा लेते हैं।[२] इसलिये इनकी माया में किसी को न फसना चाहिये॥ १३६॥

१३७. ....जिसके सम्मुख से पृथिवी और आकाश भाग गये और उनके लिये जगह न मिली। ११। और मैंने क्या छोटे, क्या बड़े, सब मृतकों को ईश्वर के आगे खड़े देखा और पुस्तक खोले गये और दूसरा पुस्तक अर्थात् जीवन का पुस्तक खोला गया और पुस्तकों में लिखी हुई बातों से मृतकों का विचार उनके कर्मों के अनुसार किया गया। १२। यो० प्र०, प० २०। आ० ११। १२॥

समीक्षक—यह देखो लड़केपन की बात! भला, पृथिवी और आकाश कैसे भाग सकेंगे? और वे किस पर ठहरेंगे, जिनके सामने से भागें।[३] और उसका सिंहासन और वह कहाँ ठहरे थे?[४] और मुर्दे परमेश्वर के सामने खड़े किये गये तो परमेश्वर भी बैठा वा खड़ा होगा? क्या यहां की कचहरी और दूकान के समान ईश्वर का व्यवहार है जो कि पुस्तक लेखानुसार होता है? और सब जीवों का हाल ईश्वर ने लिखा वा उसके गुमाश्तों[५] ने? ऐसी-ऐसी बातों से अनीश्वर को ईश्वर और ईश्वर को अनीश्वर ईसाई आदि मत-वालों ने बना दिया॥ १३७॥

१३८. ....उनमें से एक मेरे पास आया और मेरे संग बोला कि आ मैं दुलहिन[६] को अर्थात् मेम्ने की स्त्री को तुझे दिखाऊँगा। ९। यो० प्र०, प० २१। आ० ९॥

समीक्षक—भला, ईसा ने स्वर्ग में 'दुलहिन'[७] अर्थात् अच्छी स्त्री पाई! मौज करता होगा! जो-जो ईसाई वहाँ जाते होंगे, उनको भी स्त्रियाँ मिलती होंगी, लड़के-बाले होते होंगे और बहुत भीड़ के हो जाने से रोगोत्पत्ति होकर मरते भी होंगे। ऐसे स्वर्ग को दूर से ही हाथ जोड़ना अच्छा है॥ १३८॥

इस प्रयोग को मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं० में शुद्ध कर दिया है। **संशोधन-पुष्टि**—ग्रन्थ में अन्यत्र ''**मीचना**'' शुद्ध क्रिया का प्रयोग है—''**आँख मीचना**'', ''**आँख मीच के**'' (द्र० पृ० ३४७, ६८९ आदि)।

१. **अपपाठ**—दोनों सं० में ''**देखा नारायण को? सबने दर्शन किया**'' अपपाठ है। उपर्युक्त संशोधन सही है।

२. **मुद्रणलिपिकर द्वारा त्रुटित ऋषि-पाठ**—मुद्रणह०, द्विप्र०, द्वि०सं० में ''**कि जो हमारे...... फसा लेते हैं**'' पाठ त्रुटित है। ऊपर शैतान सम्बन्धी आयत है और समीक्षा में शैतान के भय का वर्णन है। मजहबी लोग इसी प्रकार डराकर अपने मजहब में मिलाते रहे हैं। महर्षिप्रोक्त मूलह० की यह समीक्षा ग्राह्य है। वेस, जग, भद, युमी, विस, जस, उदयपुर सं० में यह पाठ त्रुटित है।
ऋषिलेख—रेखांकित सभी पाठ मूलहस्त० में ऋषि द्वारा लिखित हैं।

३. **मूललिपिकरकृत अपप्रयोग**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में ''**भगें**'' अपप्रयोग है। वाक्य के पूर्वार्ध में स्पष्टत: '**भागना**' क्रिया का प्रयोग है। यहां भी उसी से निर्मित '**भागें**' प्रयोग चाहिए।

४. **अपवाक्य**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में ''**उसका सिंहासन और वह कहां ठहरा**'' अपवाक्य है। दो वस्तुओं के लिए बहुवचन-प्रयोग अपेक्षित है। वेस, जग, भद, युमी, विस, उदयपुर सं० में भी अपवाक्य है।

५. **गुमाश्ते**=ईश्वर के प्रतिनिधि या दूत। मुद्रणह०, द्विप्र० में ''**गुमास्ते**'' मुद्रणलिपिकरकृत अपवर्तनी है।

६-७. **अव्यवस्थित एवं अपवर्तनी**—मूलप्रति संस्करण में एक ही प्रसंग में दोनों स्थानों पर क्रमश: ''**दुल्हिन**'' और ''**दुल्हीन**'' अपवर्तनी है। मूलह० में दोनों स्थानों पर ''**दूल्हीन**'', मुद्रणह० में ''**दुल्हीन**'' और द्विप्र० में ''**दुल्हिन**'' वर्तनियां है। एक ही स्थान पर दो प्रयोग हैं और दोनों स्थानों पर दो पृथक्-पृथक् वर्तनियां हैं। है ना लिपिकर की लेखन-योग्यता का कमाल!! द्वि० सं० में संशोधित ''**दुलहिन**'' रूप है। यही अव्यवस्था वेस, जग, जद, युमी, विस आदि प्राय: सभी संस्करणों में है। उदयपुर सं० के कथित दस सम्पादकों ने भी वर्तनियों की अव्यवस्था को ठीक नहीं किया।

१३९. ....और उसने उस नल[1] से नगर को नापा कि साढ़े[2] सात-सौ कोश का है, उसकी लंबाई और चौड़ाई और ऊंचाई एक समान हैं। १६। और उसने उसकी भीत को मनुष्य के अर्थात् दूत के नाप से नापा कि एक सौ चवालीस हाथ की है। १७। और उसकी भीत की जोड़ाई सूर्यकान्त की थी और नगर निर्मल सोने का था, जो निर्मल कांच के समान था। १८। और नगर की भीत की नेवें[3] हर एक बहुमूल्य पत्थर से सँवारी हुई थीं; पहली नेव सूर्यकान्त की थी, दूसरी नीलमणि की, तीसरी लालड़ी की, चौथी मरकत की। १९। पांचवीं गोमेदक की, छठवीं माणिक्य की, सातवीं पीतमणि की, आठवीं पेरोज की, नवीं पुखराज की, दशवीं लहसनिये की, ग्यारहवीं[4] धूम्रकान्त की, बारहवीं मर्तीष[5] की। २०। और बारह फाटक बारह मोतियों के थे, एक-एक मोती से एक-एक फाटक बना था और नगर की सड़क स्वच्छ कांच के ऐसे निर्मल सोने की थी। २१।

यो० प्र०, प० २१। आ० १६। १७। १८। १९। २०। २१॥

समीक्षक—सुनो ईसाइयों के स्वर्ग का वर्णन! यदि ईसाई मरते जाते और [वहां][6] जन्मते जाते हैं तो इतने बड़े शहर में [भी][7] कैसे समा सकेंगे? क्योंकि उसमें मनुष्यों का आगम तो होता है और उससे निकलते नहीं। और जो यह बहुमूल्य रत्नों की बनी हुई नगरी मानी है, और सर्व सोने की है, इत्यादि लेख केवल भोले-भाले मनुष्यों को बहकाकर फसाने की लीला है। भला, लंबाई-चौड़ाई तो जो उस नगर की लिखी, सो हो सकती है; परन्तु ऊंचाई साढ़े सात-सौ कोश क्योंकर हो सकती है?[8] यह सर्वथा मिथ्या, कपोलकल्पना की बात है। और इतने बड़े मोती कहाँ से आये होंगे? इस लेख के लिखनेवाले के घर के घड़े में से? यह गपोड़ा पुराण का भी बाप है॥ १३९॥

१४०. और कोई अपवित्र वस्तु अथवा घिनित कर्म करनेहारा अथवा झूठ पर चलनेहारा उसमें किसी रीति से प्रवेश न करेगा....। २७। यो० प्र० प० २१। आ० २७॥

समीक्षक—जो ऐसी बात है, तो ईसाई लोग क्यों कहते हैं कि "पापी लोग भी ईसाई होने से स्वर्ग में जा सकते हैं", यह झूठ बात है।[9] यदि ऐसा है, तो **योहन्ना**[10] स्वप्ने की मिथ्या बातों का कहनेहारा

---

१. **नल**—नरकट या सरकंडे के बनाये हुए नाप से।

२. **मुद्रणकालीन अपवर्तनी**—द्विप्र० में "**साड़े**" अपवर्तनी है। **पुष्टि**—इस आयत की समीक्षा में "**साढ़े**" शुद्ध वर्तनी है।

३. **मुद्रणलिपिकरकृत अपपाठ**—मुद्रणह०, द्विप्र० में "**नगर के भीत की नेवें**" अपपाठ है। अन्य सभी सं० में संशोधित है।

४. **अपवर्तनी**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में "**एग्यारहवीं**" अपवर्तनी है। **संशोधन-पुष्टि**—अन्यत्र "**ग्यारह/ ग्यारहवीं**" वर्तनी है जो शुद्ध है। द्र० १६९, ७५३, ७८९, ९१५ आदि। एकरूपता और मानकता के लिए एक ही वर्तनी ग्राह्य है।

५. **मर्तीष**=याकूत, एक रत्न जो अनार के दानों के समान लाल रंग का होता है। इसे संस्कृत में '**पुलक**' कहा जाता है।

६,७. **त्रुटित आवश्यक पद**—**पं० मीमांसक जी** द्वारा प्रस्तावित दोनों बृ० कोष्ठकान्तर्गत पद सार्थकता की दृष्टि से ग्राह्य हैं। सभी सं० में त्रुटित हैं किन्तु उदयपुर सं० ने पं० जी द्वारा प्रस्तावित इन पदों को ग्रहण कर लिया है।

८. **ईसाइयों का असम्भव नगर**—उक्त वर्णन में १५०० मील लम्बा, इतना ही चौड़ा और इतना ही ऊंचा स्वर्गस्थान बताया है। ऐसा स्थान ब्रह्माण्ड में कहीं नहीं है, अतः यह कोरा गपोड़ा है।

९. **मुद्रणकालीन अपपरिवर्तन**—मूलह०, मुद्रणह०, मूलप्रति सं० के "**यह झूठ बात है**" पाठ को बदलकर मुद्रणकाल में द्विप्र० में शिथिल पाठ बनाया है "**यह ठीक बात नहीं है**" समीक्षा का सच और झूठ से तो सम्बन्ध है, ठीक—न ठीक से नहीं। पाठक महर्षि की गंभीर दृष्टि पर ध्यान दें कि आयत में "**झूठ**" पर का ही प्रयोग है। वही ऋषि ने ग्रहण करके वाक्य बनाया है। सभी द्वितीय संस्करणों तथा उदयपुर संस्करण में मुद्रणकाल में बदला गया यही शिथिल एवं असंगत पाठ है।

स्वर्ग में प्रवेश कभी न कर सका होगा, और **ईसा भी स्वर्ग में न गया होगा, क्योंकि जब अकेला पापी स्वर्ग को प्राप्त नहीं हो सकता, तो जो अनेक पापियों के पाप के भार से युक्त है वह[१] क्योंकर स्वर्गवासी हो सकता है?** ॥ १४० ॥

१४१. और अब कोई शाप[२] न होगा और ईश्वर का और मेम्ने का सिंहासन उसमें होगा और उसके दास उसकी सेवा करेंगे। ३। और उसका मुंह देखेंगे और उसका नाम उनके माथे पर होगा। ४। और वहां रात न होगी और उन्हें दीपक का अथवा सूर्य की ज्योति[३] का प्रयोजन नहीं, क्योंकि परमेश्वर ईश्वर उन्हें ज्योति देगा वे सदा-सर्वदा राज्य करेंगे। ५।

यो० प्र०, प० २२। आ० ३।४।५॥

समीक्षक—देखिये, यही ईसाइयों का स्वर्ग-वास! क्या ईश्वर और ईसा सिंहासन पर निरन्तर बैठे रहेंगे? और उनके दास उनके सामने सदा मुंह देखा करेंगे? अब यह तो कहिये कि तुम्हारे ईश्वर का मुंह यूरोपियन के सदृश गोरा है वा अफ्रीका[४]वालों के सदृश काला अथवा अन्य देशवालों के समान है? यह तुम्हारा स्वर्ग भी बन्धन है, क्योंकि जहाँ छोटाई-बड़ाई है और उसी एक नगर में रहना अवश्य है, तो वहाँ दु:ख क्यों न होता होगा? जो मुखवाला है, वह ईश्वर सर्वज्ञ, सर्वेश्वर कभी नहीं हो सकता॥ १४१ ॥

१४२. देख, मैं शीघ्र आता हूँ और मेरा प्रतिफल मेरे साथ है जिसतें हर एक को जैसा उसका कार्य ठहरेगा, वैसा फल देऊं। १२। यो० प्र०, प० २२। आ० १२॥

समीक्षक—जब यही बात है कि **कर्मानुसार फल पाते हैं तो पापों की क्षमा कभी नहीं होती, और जो क्षमा होती है तो 'इंजील' की बातें झूठी [हैं]।**[५] यदि कोई कहे कि क्षमा करना भी **'इंजील'** में लिखा है तो **'पूर्वापरविरुद्ध'** अर्थात् 'हल्फ़दरोगी'[६] हुई तो वह झूठ है, इसका मानना छोड़ दो[७] ॥ १४२ ॥

अब कहाँ तक लिखें। **इनकी 'बाइबल' में लाखों बातें खण्डनीय हैं। यह तो थोड़ा-सा चिह्नमात्र ईसाइयों की 'बाइबल' पुस्तक का दिखलाया है,** इतने से ही बुद्धिमान् लोग बहुत-सा समझ लेंगे। थोड़ी-सी बातों को छोड़ शेष सब झूठ भरा है। **जैसे झूठ के संग से सत्य भी शुद्ध नहीं रहता, वैसे**[८]

---

१०. भिन्न वर्तनी 'योहन्ना'—इसी समु० में इस नाम की यह दूसरी वर्तनी है। बाइबल में यही स्वीकृत है।

१. **उचित संशोधन**—मूलह०, मूलसं० में "**है वह**" पाठ त्रुटित है। द्वि० सं० में "**पाप के भार से युक्त है वह**" उचित पाठ है। **ऋषिलेख**—इस पृष्ठ पर सभी रेखांकित पाठ मूलह० में ऋषि द्वारा लिखित हैं।

२. **अपवर्तनी**—दोनों हस्त० और तीनों सं० में "**श्राप**" अपवर्तनी है, शुद्ध वर्तनी '**शाप**' होती है। द्रष्टव्य आयतखण्ड संख्या १०, पृ० ८५६ पर विस्तृत टिप्पणी।

३. **अपवर्तनी**—दोनों हस्त० और द्विप्र० में "**जोति**" अपवर्तनी है। सभी सं० में संशोधित है। अगली ही पंक्ति में शुद्ध है।

४. **अपवर्तनी**—दोनों हस्त० और द्विप्र० में "**अफरिका**" अपनाम है। अपितु मूलह० में तो भ्रष्ट "**अफिरीका**" वर्तनी है। अन्य सभी सं० में अब संशोधित है।

५. **त्रुटित आवश्यक पाठ**—तीनों संस्करणों में '**हैं**' क्रिया त्रुटित है।

६. **हल्फ़दरोगी**—मिथ्या कथन करना, मिथ्या शपथ खाना। एक बात को कहकर उससे पुन: पलट जाना।

७. **अपक्रिया**—दोनों हस्त० और तीनों संस्करणों "**देओ**" क्रिया-पाठ है। '**दो**' क्रिया अपेक्षित है, क्योंकि सर्वत्र इसी क्रिया का प्रयोग है। एकरूपता व मानकता के लिए एक क्रिया वर्तनी आवश्यक है।

ही 'बाइबल' पुस्तक भी माननीय नहीं हो सकता, किन्तु वह सत्य तो वेदों के स्वीकार में गृहीत होता ही है॥

[यह कृश्चीन मत के विषय में लिखा, इसके आगे मुसलमानों के मत के विषय में लिखा जायगा]।[१]

इति श्रीमद्दयानन्दसरस्वतीस्वामिनिर्मिते सत्यार्थप्रकाशे
सुभाषाविभूषिते कृश्चीनाख्यमतविषये
त्रयोदशः समुल्लासः सम्पूर्णः॥ १३ ॥[२]

---

८. **अपप्रयोग**—दोनों हस्त० और तीनों संस्करणों में ''**वैसा**'' अपपाठ है। '**जैसे**' के साथ '**वैसे**' प्रयोग अभीष्ट होता है।

१. **त्रुटित आवश्यक पाठ**—सत्यार्थप्रकाश में आर्ष शास्त्रीय सांगोपांग शैली के अनुसार और समुल्लास के प्रारम्भ में विषय के आरम्भ का उल्लेख और समाप्ति पर विषय की समाप्ति और अग्रिम समुल्लास के विषय का उल्लेख होता है। जहां नहीं है, वहां लिपिकर और आदिसम्पादकों के प्रमाद से पाठ त्रुटित रह गया है। यहां भी वह त्रुटित है, अतः शैली के अनुसार बृहत् कोष्ठकान्तर्गत पाठ अपेक्षित है।

२. **पाठग्रहण**—मूल हस्त० और मुद्रण हस्त० दोनों में समाप्तिसूचक यह वाक्य लिखित नहीं है। इसे मुद्रणकाल में पूर्ण किया गया है। शैलीगत एकरूपता और मानकता के लिए यह आवश्यक था, अतः दोनों सं० में यह ग्राह्य है।